CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अा·६६
GR.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्ना· 2036 R.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत-निबन्ध-नवनीतम्

डा. पारसनाथ द्विवेदी
एम्. ए., पीएच्. डी., व्याकरण-साहित्याचार्य
आगरा कॉलेज, आगरा
एवं
वंशीधर चतुर्वेदी
एम्. ए., सांख्ययोग-साहित्याचार्य
गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन

पूर्णतः संशोधित एवं परिवर्द्धित तृतीय संस्करण

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा–३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीय संस्करण : १९७५

R
891.24
Dwi

मूल्य : रु० ७·५०

मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा–३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्ना. 2036R.   नं० ५८४३

तृतीयं संस्करणम्

संस्कृतनिबन्धनवनीतस्य तृतीयं संस्करणं विद्यार्थिनां विदुषां च समक्षं समुपस्थापयन्नहं महत्प्रमोदमनुभवामि । द्वितीयसंस्करणस्य शीघ्रतया समाप्ति-रेवास्योपयोगितां वदति । संस्करणेऽस्मिन् पुस्तकस्यास्योपयोगितामाकलय्य 'भारतस्य खाद्य-समस्या, भारतीयं प्रजातन्त्रम्, वीरभोग्या वसुन्धरा' इत्यादयः सप्त नवीन-निबन्धाः संयोजिताः सन्ति । आशासे नवीनं संस्करणमिदं सर्वे सहर्षं स्वागतं करिष्यन्तीति ।

पारसनाथ द्विवेदी

द्वितीय संस्करणम्

संस्कृतनिबन्धनवनीतस्य प्रथमसंस्करणं वर्षेकाभ्यन्तर एव समाप्तिमगादिति महान् प्रमोदस्य विषयः । देशस्य विभिन्नभागेभ्यः समागता विदुषां सम्मतीः समनुसृत्य पुस्तकस्यास्योपयोगिताञ्चाकलय्य यथास्थानमपेक्षितं संशोधनं परिवर्तनं परिवर्धनं च कृतम् । संस्करणेऽस्मिन् पुस्तकस्याधिकोपयोगितायै प्रयागवर्णनम्, विज्ञानस्य प्रगतिः, भारत-पाक-शिखर-सम्मेलनमित्यादयः षोडश निबन्धा अधिकाः सन्निवेशिताः सन्ति । तत्र द्वितीयावृत्तावपि क्वचनाशुद्धिः स्थिता जाता वा तां संशोध्यानुग्रहीष्यन्ति सहृदयहृदया विद्वांसः । आशासे सर्वे नवीनतमं प्रयासमिमं सहर्षं स्वागतं करिष्यन्तीति ।

पारसनाथ द्विवेदी
वंशीधर चतुर्वेदश्च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

इदं तावन्नाविदितचरं यत्समृद्धतमेयं गीर्वाणभारती सर्वास्वन्यासु भाषासु। नानाविधसत्साहित्यविभूषिते संस्कृतसाहित्ये सन्ति बहुविधानि तस्तैर्पण्डितवर्यैर्विरचितानि नूतनानि प्रत्नानि च श्लाघ्यानि निबन्धग्रन्थरत्नानि, किन्तु तान्यधीत्यापि न सन्तोषमावहति परीक्षार्थिविद्यार्थिमण्डली। अद्यत्वे तु न तादृशी पठन-पाठन-परिपाटी प्रचलति, यादृशी पुराऽऽसीदध्ययनसरणिः। अद्यतु परीक्षार्थिनश्छात्राः परिश्रमं विधातुं न चेष्टन्ते, न च किमपि विषयमवलम्ब्य निबन्धं लेखितुं क्षमन्ते। अत एव तेषां परीक्षाब्धिसमुत्तितीर्षूणां परीक्षार्थिनामध्येतॄणां चोपकारकमिदं स्यादिति समीहयैष संरम्भः।

रचनायामस्यां सन्निवेशिताः निबन्धाः नवनीतकल्पाः नातिदीर्घाः न चातिलघवः मृदुललितपदावलिसंवलिता मधुरभाषाभासिताश्च विलसन्ति। तत्र केचन निबन्धाः विचारात्मकाः केचन वर्णनात्मकाः केचन साहित्यिकाः केचनाख्यानात्मकाश्च सन्ति। निबन्धबन्धान्ते छात्रोपयोगितामाकलय्य सुभाषितानि लोकोक्तयश्च सन्दृब्धाः। येषां महानुभावानां विपश्चितां ग्रन्थेभ्यः साहाय्यमालम्बिता, तान् प्रति कृतज्ञतामावहामः सविनयं सप्रश्रयञ्च।

श्रीमान्याः बहुविधग्रन्थरत्नप्रकाशनलब्धयशस्काः श्री श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी प्रकाशनाध्यक्षमहोदयाः भूरिशो धन्यवादार्हाः सन्ति, यैः पुस्तकमिदं प्राकाश्यं नीतम्।

यथाशक्ति संशोधितेऽपि भ्रमप्रमाददिवशादिका अनभिमता अशुद्धयः संक्षम्यामार्ज्य चावश्यं सूचयिष्यन्ति गुणैकपक्षपातिनो दयोदवन्त मनीषिण इति भूयोभूयः प्रार्थ्यते। आशास्यते च यन्नवीनेनानेन प्रयासेन यदि कस्यचिदपि स्यादुपकारः लेशतोऽपि, तदा श्रमोऽयं सफलतामेष्यतीति निश्चप्रचम्।

पारसनाथ द्विवेदी
वंशीधर चतुर्वेदश्च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सा. 2036 R.

भूमिका

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के द्वारा भारतीय विद्वानों ने गद्य की महत्ता को वहुत पहले ही स्वीकृत कर लिया था और आधुनिक युग में तो सर्वत्र गद्य का ही वोलवाला है। यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निवन्ध गद्य-लेखकों की कसौटी है। किसी भी विषय पर अपने भावों या विचारों को विशिष्ट रूप में ग्रथित करना 'निवन्ध' कहलाता है। इस प्रकार सुसम्वद्ध रूप से भावों अथवा विचारों की तथ्यपूर्ण एवं कलात्मक अभिव्यक्ति को हम निवन्ध कह सकते हैं। निवन्ध के अर्थ में 'प्रवन्ध' और 'प्रस्ताव' शब्द भी व्यवहृत होता है। व्युत्पत्ति के आधार पर **"निःशेषेण बध्यन्ते विचाराः अस्मिन्निति निबन्धः"** अर्थात् जहाँ पर विचारों को निःशेष रूप में बांधा जाय उसे 'निवन्ध' कहते हैं और **"प्रकर्षेण बध्यन्ते विचाराः अस्मिन्निति प्रबन्धः"** अर्थात् जहाँ पर विचारों को प्रकृष्ट रूप में बांधा जाय, उसे 'प्रवन्ध' कहते हैं तथा **"प्रस्तूयते विशिष्टो विचारोऽस्मिन्निति प्रस्तावः"** अर्थात् जहाँ पर विचारों को विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाता है उसे 'प्रस्ताव' कहते हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर इनमें किञ्चिदर्थभेद होने पर भी व्यवहार में ये तीनों शब्द समान अर्थ को प्रकट करते हैं। इस प्रकार किसी भी प्रतिपाद्य विषय का उसके स्वरूप, उपयोग, महत्त्व आदि के विवेचन के साथ-साथ उपपत्तिपूर्वक मनोहर, सरल एवं सुबोध भाषा में विवेचन करना निबन्ध कहलाता है। मेरे विचार से लघुप्रबन्ध को 'निवन्ध' और वृहद् प्रवन्ध को 'प्रवन्ध' कहना चाहिए, क्योंकि प्रबन्ध विषय के महद्‌भाव को अभिव्यक्त करता है। वैसे सामान्यतः ये तीनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

निवन्ध की विविध शैलियाँ एवं विविध विधाएँ होने के कारण उसके विविध भेद हो सकते हैं; किन्तु यहाँ हम उसे पांच विभागों में विभाजित करना ही उपयुक्त समझते हैं—(१) विचारात्मक, (२) वर्णनात्मक, (३) आलोचनात्मक या साहित्यिक, (४) आख्यानात्मक और (५) भावात्मक।

१. विचारात्मक—सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, उपदेशात्मक आदि विषयों के किसी एक पक्ष को लेकर उसके स्वरूप,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुण, दोष, महत्त्व आदि पर विचार करना 'विचारात्मक' निबन्ध कहलाता है। विचारात्मक निबन्धों में पहले विषय की स्थापना करनी चाहिए। पश्चात् उपपत्तिपूर्वक उसके गुण-दोषों का विवेचन करते हुए अन्त में उपसंहार के साथ निबन्ध को समाप्त करना चाहिए।

२. वर्णनात्मक—पशु, पक्षी, नदी, पर्वत, समुद्र, ऋतु, प्रकृति, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्व, महोत्सव, नगर, संस्था आदि वर्ण्य विषयों के स्वरूप, गुण, दोष, महत्त्व आदि का वर्णन करना 'वर्णनात्मक' निबन्ध कहलाता है। वर्णनात्मक निबन्धों में दृष्ट, श्रुत या पठित विषयों का संक्षेप में रोचक शैली में वर्णन किया जाता है। इसमें दृष्टान्त आवश्यक नहीं हैं। अन्त में उपसंहार करना चाहिए।

३. आलोचनात्मक या साहित्यिक—किसी कवि या लेखक के विचारों एवं ग्रन्थों या किसी प्राचीन साहित्य पर आलोचनात्मक ढंग से विवेचन करना 'आलोचनात्मक निबन्ध' कहलाता है। आलोचनात्मक निबन्धों में कवि के सम्बन्ध में या उनके काव्य के सम्बन्ध में प्रचलित सूक्तियों पर भी विवेचन किया जाता है।

४. आख्यानात्मक—किसी ऐतिहासिक महापुरुष, विद्वान्, कवि, धर्म-प्रचारक, समाजसुधारक आदि के चरित, कथानक, घटना आदि पर विवेचन करना 'आख्यानात्मक' निबन्ध कहलाता है। आख्यानात्मक निबन्धों के अन्तर्गत आत्मकथा का भी परिगणन किया जाता है।

५. भावात्मक—किसी वस्तु, दृश्य या भाव का भावुकतामय शैली में वर्णन करने को ही इस कोटि के निबन्धों में परिगणित किया जा सकता है। इस कोटि के निबन्धों में भावों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति, लेखक का निजीपन, काव्यात्मकता, सजीवता आदि गुण विशेष रूप से देखे जा सकते हैं।

कुछ विद्वान् निबन्ध की तीन विधाएँ ही स्वीकार करते हैं—विचारात्मक, वर्णनात्मक और आख्यानात्मक। वे प्रत्येक आलोच्य तथा विवेच्य विषय को विचारात्मक निबन्ध के अन्तर्गत ही स्वीकार करते हैं। कुछ विद्वान् विचारात्मक, वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक (विवेचनात्मक) भेद से तीन प्रकार के निबन्ध स्वीकार करते हैं। वे कवि, लेखक या महापुरुष के जीवनवृत्त, कृतियों एवं आलोच्य विषयों को विवेचनात्मक के अन्तर्गत मानते हैं। वस्तुतः किसी विषय पर अपने विचारों का निबन्धन करना ही निबन्ध कहलाता है। इस दृष्टि से निबन्ध की एक ही विधा (विचारात्मक) हो सकती है। उसी के अन्तर्गत सभी प्रकार के निबन्धों का समावेश हो सकता है। क्योंकि सभी प्रकार के निबन्धों में कुछ न कुछ विचार अवश्य करना पड़ता है।

निबन्ध-रचना के नियम

निबन्ध को सुन्दर बनाने के लिए सुन्दर विचार (भाव), प्रसादमयी भाषा, रमणीय शब्दचयन एवं मनोरम शैली आदि सभी आवश्यक तत्त्व हैं। विचार (भाव) निबन्ध की आत्मा है और भाषा-शैली उसका शरीर। यदि सुन्दर विचारों को भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सा. 2036 R.

दोषपूर्ण भाषा या शैली में प्रस्तुत किया जाता है तो निवन्ध का शरीर दूषित हो जाता है और वह निवन्ध पाठकों या श्रोताओं के मन को आकृष्ट नहीं कर सकता। जिस प्रकार सद्गुणों एवं सुन्दर विचारों के होने पर विकृताङ्ग पुरुष या कुरूपा स्त्री पुरुषों को आकृष्ट नहीं कर सकती; वल्कि कुछ समय पश्चात् उनके वे सद्विचार ऊसर भूमि में वोये गये बीज के समान नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार सुन्दर, सुवोध, सरल भाषा एवं मनोहर एवं रोचक शैली के होने पर भी यदि उदात्त विचार न हों तो विविध अलङ्कारों से विभूषित मृतक शरीर के समान वे निष्फल हो जाते हैं। अतः निवन्ध लेखन के लिए रोचक एवं आकर्षक शैली, प्रसादमयी भाषा और सुन्दर विचार आदि सभी तत्त्वों का होना आवश्यक है।

निवन्ध-लेखन में रमणीय एवं प्रसिद्ध प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। यथासम्भव ऐसे अप्रसिद्ध एवं दोषपूर्ण शब्दों के प्रयोग से वचना चाहिए जिनसे निवन्ध के स्वरूप आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह हो अथवा निवन्ध दूषित हो जाय। इसी प्रकार न ही किसी ऐसे सिद्धान्त का विवेचन करना चाहिए जिससे प्रस्तुत विषय के समर्थन में वाधा उत्पन्न हो। निवन्ध-लेखन में दीर्घसमास का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए और पुनरुक्ति से वचना चाहिए। जिस शैली में निवन्ध का प्रारम्भ करें उसी शैली में उसका उपसंहार भी होना चाहिए। निवन्ध की भाषा-शैली को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए वीच-वीच में प्रसंगानुकूल सुभाषितों, सूक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग करना चाहिए जिससे पाठकों का चित्त वलादाकृष्ट हो सके। निवन्ध में प्रतिपादित तथ्यों के समर्थन में सार्थक दृष्टान्तों को भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

निवन्ध-लेखन में व्याकरण-जन्य दोषों का भी परिहार करना चाहिए। यथासम्भव समासादि[1] अनिवार्य संधि-स्थलों को छोड़ कर प्रायः सन्धि-रहित, सुवोध एवं प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। लिंग का व्यवहार, विभक्तियों का समुचित प्रयोग, धातुरूप, उपसर्ग एवं प्रत्ययों का प्रयोग आदि सब कुछ सही-सही रूप में करना चाहिए। विराम चिह्नों का समुचित प्रयोग सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि विना विरामादि चिह्नों के प्रयोग से अर्थ का सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। अतः अर्थ की स्पष्टता के लिए लेख में सौन्दर्य-वर्धन के लिए विरामादि चिह्नों का प्रयोग परमावश्यक है। उन विरामादि चिह्नों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

[1] संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विराम का नाम	चिह्न	उदाहरण
पूर्ण विराम (Full-stop)	।	रामः पाठशालां गच्छति ।
अर्ध विराम (Semi-colon)	;	यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु, न चरितेषु; तीक्ष्णता कुशाग्रेषु, न स्वभावेषु;
अल्प विराम (Comma)	,	यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रतापे वह्निना, मुखे शशिना,...।
प्रश्न चिह्न (Sign of Interrogation)	?	त्वं किं करोसि ?
सम्बोधन, खेदाश्चर्यादि चिह्न (Sign of Admiration)	!	हे राम ! दयां कुरु । अहो ! प्रभावो महात्मनाम् ।
उद्धरण चिह्न (Inverted Commas)	" "	ततो नातिदूरवर्तिनीं "अन्तःपुराद् वैशम्पायनमादाय आगच्छत" इति राजा प्रतीहारीमादिदेश । लौकिका अप्याहुः—"गृहिणी गृहमुच्यते" इति ।
निर्देश चिह्न (Colon & Dash)	:—	आसीच्च तस्य मनसि :—'नास्ति खलु असाध्यं नाम तपसाम्' ।
योजक चिह्न (Hyphen)	-	यस्य विमले कृपाण-धाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः ।
कोष्ठक चिह्न (Parenthesis)	[], ( ), { }	अनिकेताः (गृहादिरहिताः) पर्वतसमुद्रादिषु तत्र विचेरुः ।
प्रसंग समाप्ति चिह्न	॥	अतएव श्रुतिराह—जीवेम शरदः शतमित्यादि ॥
पर्याय चिह्न (Equal to)	=	जरिमा = जरा । मिनाति = हिनस्ति ।
सन्धि-विच्छेद चिह्न (Plus)	+	सुधाकरः = सुधा + कृ + अण् ।
त्रुटि निर्देश चिह्न (Insert)	ʎ	निकषं गद्यं कवीनां ʎ वदन्ति ।

साहित्य समाज का दर्पण है । वह समाज के लिए सद्विचारों को प्रदान करता है । ओज और स्फूर्ति देता है । अच्छे साहित्य के पढ़ने से विचारों में प्रवाह आता है एवं संवाद से चतुरता एवं लेखन से निश्चिन्तता आती है । अतः अच्छे विचारों के लिए, अच्छे साहित्य के विस्तृत अध्ययन की महती आवश्यकता है । साहित्य को कभी भी उदासीन होकर नहीं पढ़ना चाहिए और न निकृष्ट साहित्य का ही अध्ययन करना चाहिए । इससे लेखक के विचार एवं भाषा-शैली विकृत हो जाती है । साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत के पत्र-पत्रिकाओं का भी अवलोकन करना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए और कोष, व्याकरण आदि ग्रन्थों का भी अध्ययन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ति एवं मुहावरों को कंठस्थ कर लेना चाहिए।

साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ लेखक के लिए प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन भी आवश्यक है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने प्रकृति के मध्य ही रहकर, और उसका गहन अध्ययन कर नये-नये विचार, नयी-नयी कल्पनायें एवं नये-नये भाव उद्भूत किये हैं। विना प्रकृति देवी की गोद में पले तथा विना उनकी महती अनुकम्पा के कोई भी विद्वान् या कवि नहीं वन सका है। प्रकृति देवी की गोद में ही पलकर वाल्मीकि, व्यास आदि महर्षियों ने हमारे लिए अनुपम एवं अलौकिक ज्ञान-राशि प्रदान की है। अतः प्रत्येक लेखक को चाहिए कि वह प्रकृति के मध्य रहकर उसका सूक्ष्म अध्ययन भी करे। साहित्य और प्रकृति के अध्ययन के पश्चात् उस विषय का मनन करना भी आवश्यक है। क्योंकि अध्ययन के पश्चात् मनन करने से अधीत विषय का सात्त्विक ज्ञान होता है, और उससे नये-नये विचार प्रस्फुटित होते हैं।

"करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान" अर्थात् निरन्तर अभ्यास करने से मन्द-मति भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है, इस कथन के अनुसार प्रत्येक लेखक को निरन्तर लिखने का अभ्यास करना चाहिए। लेखन के अभ्यास से लिपि-दोष दूर होता है, लेखन का क्रम वनता है, भाषा में माधुर्य एवं शैली में रोचकता आती है।

निबन्ध लेखन के कुछ आवश्यक निर्देश

निवन्ध-लेखक को निवन्ध-लेखन के समय विवेच्य विषय की रक्षा करते हुए भाषा एवं शैली के औचित्य पर विचार करके निवन्ध लेखन में प्रस्तुत होना चाहिए। लेख एवं रचना को हृदयग्राही तथा युक्तिसंगत वनाने के लिए निवन्ध-लेखक को कुछ देर तक उस विषय पर ध्यानमग्न होकर विचार करना चाहिए और उसकी संक्षिप्त रूपरेखा तैयार करके तब निवन्ध लेखन प्रारम्भ करना चाहिए। निवन्ध को क्रमवद्ध लिखने के लिए उसे निम्न प्रकार से चार खण्डों में विभाजित कर लेना चाहिए--

(१) उपक्रम
(२) उपपत्ति
(३) दृष्टान्त
(४) उपसंहार।

१. उपक्रम--निवन्ध के भूमिका भाग को उपक्रम कहते हैं। भूमिका सदैव छोटी, प्रभावोत्पादक एवं रोचक होनी चाहिए। भूमिका के अन्तर्गत विषय का स्वरूप, लक्षण एवं लेखक के विचार तथा विषय का संक्षिप्त परिचय आदि का समावेश होना चाहिए। भूमिका में विषय की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करनी चाहिए।

२. उपपत्ति--उपपत्ति ही निबन्ध का प्रमुख अंग है। उपक्रम यदि निबन्ध का मुख्य द्वार है तो उपपत्ति निबन्ध का निवासस्थान और उपसंहार पक्षद्वार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति के अन्तर्गत विवेच्य विषय का साधक-बाधक प्रमाणों से तर्क-वितर्क के द्वारा समालोचनात्मक शैली में विषय का अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा समर्थन किया जाता है। इसमें विषय के लाभ-हानि, प्रसिद्ध विद्वानों के विचार, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं सामाजिक महत्त्व का प्रतिपादन करना चाहिए। गौण विषयों का परित्याग भी अपेक्षित है।

३. **दृष्टान्त**—उपक्रम में निर्दिष्ट तथा उपपत्ति में समर्थित विषय का किसी पुरावृत्त अथवा आधुनिक उदाहरण के द्वारा परिपुष्ट करना दृष्टान्त कहलाता है। जिस प्रकार प्रकाश से किसी पदार्थ का ज्ञान स्पष्ट रूप से हो जाता है, उसी प्रकार दृष्टान्त से विषय का बोध भी सरलता से स्पष्ट हो जाता है।

४. **उपसंहार**—उपसंहार निबन्ध का अन्तिम भाग है, इसमें पूर्व विवेचित विषय का सार संक्षेप में प्रतिपादन करना चाहिए। कहीं-कहीं पूर्व वर्णित विषय का सिंहावलोकन और कहीं निबन्ध के शीर्षक का मनोहर विधि से संस्मरण भी किया जाता है।

परीक्षार्थियों के लिए कुछ आवश्यक निर्देश

परीक्षार्थियों को चाहिए कि प्रश्न-पत्र प्राप्त होने पर वे उसे आदि से अन्त तक ध्यानपूर्वक पढ़ें और उस पर विचार करें कि किस निबन्ध या किस प्रश्न का उत्तर पहले लिखना चाहिए। तदनन्तर जिस प्रश्न का उत्तर अच्छी तरह से ज्ञात हो उसे सबसे पहले हल करना चाहिए। परीक्षार्थी इसका भी ध्यान रखें कि सभी प्रश्नों का अपेक्षित उत्तर समय के भीतर ही लिख सकें। किसी भी प्रश्न को छोड़ना नहीं चाहिए। कभी-कभी उनके लिखे हुए उत्तर स्वतः ही विषयानुकूल सही हो जाते हैं और उस पर अङ्क भी मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रश्नों का उत्तर सुन्दर लिपि (writing) में लिखना चाहिए जिससे लेख परीक्षकों को सुपाठ्य हो। लेख को कभी भी अत्यन्त घने या एक साथ मिलाकर नहीं लिखना चाहिए और न अत्यन्त दूर-दूर ही लिखना चाहिए। प्रश्नोत्तर के अन्त में कभी प्रार्थना या दीन-वचनों का उल्लेख न करें, इससे हानि की सम्भावना हो सकती है। उत्तर लिखने के बाद लिखित प्रश्नों को एक बार दोहरा लेना चाहिए और भ्रमवश लिखित अशुद्धियों का परिमार्जन कर लेना चाहिए। पेज या कॉपी भरने के लिए अनावश्यक या अप्रासङ्गिक विषयों का उल्लेख नहीं करना चाहिए।

साथ ही, निबन्धों में किसी एक निबन्ध को छाँटने के लिए दो-तीन बातों पर विचार करना पड़ता है; जैसे— यदि परीक्षार्थी की लेखन-क्षमता ठीक है और वह कवि-हृदय रखता है तो उसे भावात्मक कोटि के निबन्ध को चुन लेना चाहिए और यदि इसके विपरीत वह तथ्यों की अच्छी जानकारी रखता है और साथ ही उसको भली प्रकार से प्रतिपादित भी करना जानता है, तो उसे विचारात्मक कोटि के निबन्ध को लिखने के लिए चुनना चाहिए। परीक्षार्थी को निबन्ध चुनने से पहले यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किस निबन्ध के सम्बन्ध में उसके पास अधिक सामग्री है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध्यापकों के प्रति निवेदन

निवन्ध-लेखन के क्षेत्र में अध्यापक-वन्धु छात्रों के सबसे बड़े सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सुयोग्य निर्देशन में छात्रगण निवन्ध लिखने में अच्छी गति प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक-वन्धु अपने छात्रों को समय-समय पर निवन्ध लिखने के लिए प्रेरित करते रहें। वे सप्ताह में एक वार उन्हें निवन्ध लिखने का विषय दें। परन्तु विषय देने से पूर्व वे कक्षा में उस विषय पर कुछ प्रकाश भी डाल दें तथा विषय से सम्बन्धित सामग्री के वारे में संकेत दे दें।

छात्र के निवन्ध लिखकर लाने के वाद अध्यापक द्वारा उसमें निहित त्रुटियों का संशोधन-परिमार्जन करना चाहिए और साथ ही हाशिए पर निर्देश भी दे देने चाहिए कि "इस लेख में अमुक अशुद्धियाँ हैं" (अशुद्धियों को रेखांकित कर देना चाहिए), "इस निवन्ध की वाक्य-रचना कई स्थलों पर त्रुटिपूर्ण है", "वाक्य शिथिल हैं, उनमें कसाव की कमी है" आदि-आदि।

अशुद्धियों को दूर करने के लिए अध्यापक-वन्धुओं को चाहिए कि वे उसके व्यावहारिक सुझाव भी दे दें; जैसे—छात्र ने वर्त्तनी की त्रुटियाँ की हैं तो शब्द का सही रूप लिख देना चाहिए। साथ ही व्याकरण आदि के नियमों से भी परिचित करा देना चाहिए, आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
१. संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्	१
२. संस्कृतभाषाया अभ्युन्नतेरुपायाः	२
३. संस्कृतभाषाया राष्ट्रभाषात्वम्	४
४. राष्ट्रभाषा	६
५. विद्ययाऽमृतमश्नुते (सद्विद्या)	७
६. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते	८
७. गुरोर्गरिमा (गुरुभक्तिः)	१०
८. छात्राणां कर्तव्यानि	१२
९. अनुशासनम्	१४
१०. भारतीया संस्कृतिः	१६
११. भारतीयसंस्कृतौ नारीणां स्थानम्	१८
१२. नारी-शिक्षा	१९
१३. वर्ण-व्यवस्था	२०
१४. अतिथिदेवो भव (अतिथि-सेवा)	२२
१५. समाज-सेवा	२४
१६. देश-सेवा	२५
१७. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी	२७
१८. सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम् (संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति)	२८
१९. परोपकाराय सतां विभूतयः	३०
२०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (नास्त्युद्यमसमो बन्धुः)	३२
२१. विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भाग्यं फलति सर्वत्र)	३३
२२. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य	३५
२३. त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले (धैर्यं हि महतां धनम्)	३७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	विषय	पृष्ठ
२४.	न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः)	३९
२५.	सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् (सन्तोषः परमं सुखम्)	४०
२६.	धर्मो रक्षति रक्षितः	४२
२७.	नहि सत्यात् परो धर्मः (सत्यमेव जयते नानृतम्)	४४
२८.	अंहिसा परमो धर्मः	४६
२९.	आचारः परमो धर्मः	४७
३०.	शीलं परं भूषणम्	४९
३१.	दानमहिमा	५१
३२.	धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् (शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्)	५२
३३.	चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च (सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते)	५४
३४.	सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः	५६
३५.	गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः	५८
३६.	सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति	५९
३७.	कः परः प्रियवादिनाम्	६१
३८.	आर्जवं कुटिलेषु न नीतिः (शठे शाठ्यं समाचरेत्)	६३
३९.	वीरभोग्या वसुन्धरा	६५
४०.	विज्ञानस्य प्रगतिः	६६
४१.	चलचित्रम् (मनोविनोदसाधनम्)	६८
४२.	चन्द्र-यात्रा (चन्द्रविजयः)	७०
४३.	अस्माकं देशः (भारतमहिमा)	७१
४४.	अखण्डं भारतं राष्ट्रम्	७३
४५.	तीर्थराजः प्रयागः (प्रयागमेला)	७५
४६.	वङ्गलादेशः	७६
४७.	भारत-पाक-शिखर-सम्मेलनम् (शिमला-वार्ता)	७८
४८.	भारतीयं प्रजातन्त्रम्	८०
४९.	भारतस्य खाद्य-समस्या	८२
५०.	विश्व-शान्तिः	८३
५१.	पञ्चशील-सिद्धान्तः	८५
५२.	ग्राम्य-जीवनम्	८७
५३.	मम महाविद्यालयः	८८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय			पृष्ठ
५४.	मम महाविद्यालयस्योपाधिवितरणोत्सवः (दीक्षान्त-समारोहः)	... ...	९०
५५.	नौकाविहारः	... ...	९१
५६.	तीर्थयात्रा	... ...	९२
५७.	प्रभातवर्णनम्	... ...	९४
५८.	ऋतुवर्णनम्	... ...	९६
५९.	वसन्तवर्णनम्	... ...	९८
६०.	वर्षावर्णनम्	... ...	९९
६१.	शरद्वर्णनम्	... ...	१०१
६२.	विजयादशमी	... ...	१०३
६३.	दीपावली	... ...	१०४
६४.	होलिकोत्सवः	... ...	१०६
६५.	पुराणमित्येव न साधु सर्वम्	... ...	१०८
६६.	योगः कर्मसु कौशलम् (२०५०)	... ...	१०९
६७.	गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति	... ...	१११
६८.	वाक्यं रसात्मकं काव्यम्	... ...	११३
६९.	काव्येषु नाटकं रम्यम्	... ...	११४
७०.	मम प्रियं पुस्तकम्	... ...	११६
७१.	वेदानां महत्त्वम्	... ...	११८
७२.	रम्या रामायणी कथा	... ...	१२०
७३.	महाभारतम्	... ...	१२१
७४.	गीता सुगीता कर्तव्या (दुग्धं गीतामृतं महत्)	... ...	१२३
७५.	पुराणानां वेदमूलत्वं तेषां महत्त्वं च	... ...	१२५
७६.	पुराणं पञ्चलक्षणम्	... ...	१२७
७७.	उपमा कालिदासस्य	... ...	१२९
७८.	भारवेरर्थगौरवम्	... ...	१३०
७९.	माघे सन्ति त्रयो गुणाः	... ...	१३२
८०.	कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते	... ...	१३४
८१.	बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्	... ...	१३६
८२.	नैषधं विद्वदौषधम्	... ...	१३८
८३.	आदिकविर्वाल्मीकिः	... ...	१३९
८४.	व्यासः	... ...	१४१
८५.	कालिदासः	... ...	१४३
८६.	महाकविर्भारविः	... ...	१४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८७.	महाकविर्माघः	१४७
८८.	गद्यकविर्बाणः	१४९
८९.	भवभूतिः	१५०
९०.	श्रीहर्षः	१५२
९१.	श्रीशङ्कराचार्यः	१५४
९२.	लोकमान्यस्तिलकः	१५६
९३.	महामना मदनमोहनमालवीयः	१५८
९४.	महात्मागान्धी	१५९
९५.	श्रीजवाहरलालनेहरूः	१६१
	परिशिष्ट	
१.	सुभाषित-रत्नावली	१६३
२.	लोकोक्तयः	१८९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

संस्कृतभाषायाः महत्त्वं 'संस्कृत' शब्द एव द्योतयति। सर्वमेव संस्कृतं वस्तु श्रेष्ठं महत्त्वपूर्णं च भवति। यतः संस्कारेण एव रत्नस्य रत्नता, द्विजस्य च द्विजता जायते। इयं भाषा देववाणी, गीर्वाणवाणी, सुरभारती, अमरभारती इत्यादिकैः सार्थकैः नामभिः स्वतःसिद्धं गौरवं प्रकटयति।

सुनिश्चितं व्याकरणम्, शब्द-प्राचुर्यम्, भाव-बोधन-सामर्थ्यम्, विविध-ज्ञान-परिपूर्णत्वम्, सर्वत्र एकविधम् उच्चारणम् इत्यादिगुणैः पूर्णा सर्वासु भाषासु प्राचीनतमा श्रेष्ठा प्रेष्ठा विश्व-वन्दनीया च इयं भाषा विराजते। अस्याः महत्त्वं प्रकटयन्ती संसरति सूक्तिरेषा—

"भाषासु मधुरा मुख्या श्रेष्ठा गीर्वाण-भारती"

यां च निखिल-भाषा-जननीं भाषन्ते भाषाविदः। यया सृष्टं साहित्यं ग्रीक-लैटिनादि-भाषापेक्षया समधिकम्। यस्यै मैक्समूलर-मैकडोनल-प्रभृतयः पाश्चात्य-कोविदा अपि स्पृहयन्ति। यस्या विनिर्गतः संस्कृत-सन्दोहोऽद्यापि पुनाति विश्वम्। यस्या व्याकरणं सर्वथा अद्वितीयम्। यस्यां योगशास्त्राद् आरभ्य भोग-शास्त्र-पर्यन्तं शोभते साहित्यम्। तामव संस्कृतभाषां मृताम् उद्घोषयन्तो जनाः स्वबुद्धेरेव शरणं मरणं प्रकटयन्तो दृश्यन्ते।

विश्वस्मिन् विश्वे सर्वप्रथमं ग्रन्थरत्नं ऋग्वेदाख्यं संस्कृतभाषायाम् एव गुम्फितं वर्तते, महाभारताख्यं सर्वप्रथमम् इतिवृत्त-बोधकं पुस्तकम् अस्याम् एव भाषायां भासते, सर्वप्रथमं रामायणाख्यं काव्यम् आदिकविना वाल्मीकिना अस्यां भाषायामेव निबद्धम्, इत्यादिभिः हेतुभिः एषा भाषा समेषामेव विदुषां कृते मननीया नमनीया पठनीया च वर्तते, किन्तु भारतवासिनां कृते तु सर्वाधिकं महत्त्वं वर्तते अस्याः। यतो भारतीयं राजशास्त्रं, धर्मशास्त्रं, मोक्षशास्त्रं, कामशास्त्रम्, अर्थशास्त्रं च सर्वमेव संस्कृते निहितं वर्तते। संस्कृतं विहाय भारतीयो भारतस्यापि परिभाषां कर्तुं न शक्नोति।

विगते चीन-भारत-युद्धे यदा भारतस्य सीम्नां विवरणस्य आवश्यकता अनुभूता सर्वकारेण, तदा प्राचीनैः संस्कृतमयैः समुद्धरणैः एव सा संपोषिता। अन्येषामपि राज्य-सम्बन्धिनां आँग्ल-भाषा-शब्दानाम् अनुवादार्थं यदा सर्वकारेण समितिः नियुक्ता तदा चाणक्य-कृतस्य अर्थशास्त्रस्यैव साहाय्येन तेषां शब्दानां पर्याया निरूपिताः।

प्राचीनकाले संस्कृतमेव वृहत्तमस्य भारतवर्षस्य राज्यभाषा आसीत्, तादृशो न कोऽपि शब्दो वर्तते यस्यानुवादो न विद्यते संस्कृते। सम्प्रति विरलप्रसारे जातेऽपि न कोऽपि तादृशो भारतीय आस्ते, यः संस्कृतं न जानाति। न्यूनातिन्यूनं द्वित्रान् श्लोकान् जानात्येव विदेशीय-भाषा-कोविदोऽपि भारतीयः। सर्वा एव धार्मिकाः क्रियाः संस्कृतेमेव समाश्रित्य प्रचलन्ति। अत इदं तत्त्वं निःसंकोचं समुद्घोषयितुं शक्यते, यत् संस्कृतं तत् तत्त्वं वर्तते येन विना भारतीयो भारतीय एव भवितुं न शक्नोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न केवलं भारतीयानां हितार्थं प्राच्यज्ञानार्थं वा संस्कृतम् अपेक्षितम्, परन्तु सर्वेषाम् एव विदुषां भाषाविदां च कृते वर्तते संस्कृतस्य सर्वश्रेष्ठं महत्त्वम् । यतो हि यस्मिन् काल आधुनिक-सभ्य-सत्तमानां विदेश-वासिनां पूर्वजा सभ्यता-शब्द-विरहिता आरण्यक-जीवनपरा इतस्ततो भ्रमन्तिस्म, तस्मिन्नपि काले भारतीया दार्शनिका साहित्यिका अनेके कोविदाश्च गूढ़ातिगूढ़-तत्त्वानां विवेचनं कुर्वन्तः सत्साहित्यं सृजन्तः सदाचारं समुपदिशन्तः स्वीयाचरणेन भुवं पावयन्तेस्म । तेषां समेषां विदुषां भाषा संस्कृतमेव आसीत् । अतो यदि वर्तते तत्कालीनस्य साहित्यस्य पठन-मननादेः आवश्यकता तर्हि संस्कृतमेव अध्येतव्यम् । अतएव च विचारसिकैः श्रीमोक्षमूलर-प्रभृतिभिः वैदेशिकैः देश-काल-परिधिं परित्यज्य यावज्जीवं सुर-भारती-सेवनं विधाय विश्वव्यापि यशोऽवाप्तम् ।

किञ्च कुत्रान्यत्र विद्यते वेदोपनिषद् सदृशं सत्साहित्यम्, कुत्र च भासते रामायण-महाभारत-सदृशं ग्रन्थरत्नम्, कुत्र च विद्यते पुराण-प्रतिमः सदितिहासः, कुत्र च राजते मनु-याज्ञवल्क्य-कल्पं स्मृतिशास्त्रम्, कुत्र च विद्यन्ते वाल्मीकि-व्यास-कालिदास-वाण-सदृशाः कवीन्द्राः, कुत्र च वर्तन्ते शुक्र-वाचस्पति-चाणक्य-सदृक्षा नीतिविदः, कुत्र च संराजन्ते शंकराचार्य-सदृशा दार्शनिकाः, कुत्र च विद्यन्ते वाराह-मिहिर-भट्टोत्पल-प्रभृतयो गणित-निधयः, कुत्र वा विलोक्यन्ते नागार्जुन-गोरक्षनाथादयो रसायन-विद्या-महोदधयः । तदेवं विचार-मार्ग-प्रहितेन चेतसा इदमेव तथ्यं समुदेति यत्संस्कृत-भाषाया महत्त्वम् अद्यावधि तथैव सर्वमान्यमेव वर्तते ।

अस्याः महत्त्वम् उद्घोषयन्तः मोक्षमूलर-प्रभृतयः विद्वांसः कथयन्ति—

"The greatest language in the world, the most wonderful and the most perfect."

२. संस्कृतभाषाया अभ्युन्नतेरुपायाः

सर्वासु भाषासु प्राचीनतमेयं गीर्वाण-भारती निखिलानामपि भाषाणां जननीति भाषन्ते भाषाविदः । यादृशा उन्नततमा विपुलाः शब्दा अस्याः सविधे सन्ति, नान्यस्यां कस्यामपि भाषायां तादृशाः शब्दा विलोक्यन्ते । सर्वासु भारतीयासु भाषासु प्रायः प्रतिशतकं षष्टि-शब्दा संस्कृतभाषाया एव सन्ति । विशालं गुरुतरञ्च अस्याः साहित्यम् । नास्ति कस्या अपि भाषायाः साहित्यम् अस्या साहित्य-सदृशम् । अस्या भाषाया व्याकरण-तुलनां नाधिरोहति कस्या अपि भाषाया व्याकरणम् । एवं च बहुभिर्विशिष्टताभिर्विशिष्टेयं भाषा पुरा समुन्नततमा गौरवपूर्णा च आसीत् ।

पुरा आसीदेको कालः यदा सर्वे जनाः संस्कृतमेव वदन्तिस्म । भोजराजकाले तु इयं भाषा व्यावहारिकी भाषा च आसीत् । तदानीं कुविन्दा अपि संस्कृतभाषायामेव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावन्ते स्म । सर्वाणि राज्यकार्याण्यपि संस्कृतभाषायामेव अभवन् । भाषणे लेखने चापि संस्कृतभाषा एव व्यवहृता आसीत् । किन्त्वधुना संस्कृतभाषाया न तादृशं गौरवपूर्णं पुष्कलञ्च साहित्यमुपलभ्यते, न विद्यालयेषु तादृशी शिक्षा प्रदीयते, न जना तादृग्विधा व्यवहरन्ति । अस्याः कारणं वैदेशिकी सत्ता एवासीत् ।

अधुना स्वतन्त्रता-सभाजिते भारतेऽस्मिन् संस्कृतभाषाया प्रचारः प्रसारश्च पुनरपेक्ष्यते । अतोऽस्माभिः सर्वैरपि तथा प्रयतनीया यथेयं भाषा पुनः गौरवपदमवाप्नुयात् । तत्र तद्विषयकाः केचन उपाया अधोनिर्दिश्यन्ते—

१. अद्य तु जनाः तामेव भाषामध्येतुं प्रवृत्ता भवन्ति, या भाषा 'अर्थकरी' भवेत् । अतोऽस्माभिरद्य अस्या भाषाया अर्थकरी-सम्पादनाय प्रयत्नो विधेया । किन्तु तदर्थं राज्य-साहाय्यमपेक्षते । यतश्च या भाषा राज्याश्रिता भवति, सैव अर्थकरी समुन्नततमा च भाषा दृश्यते । यतश्च राज्यं हि सर्व-विध-साधन-सम्पन्नं भवति । अतो यदि राज्याधिकारिण इतः ध्यानं दद्युः, तदाऽवश्यमेव संस्कृतभाषा समुन्नततमा भवेत् ।

२. तत्र राज्याधिकारिणां प्रथमत इदं कर्त्तव्यमस्ति यत्ते सर्वेषु राजकीयेषु प्रशासकीयपदेषु संस्कृतज्ञानां कृते स्थान-निर्धारणं कुर्युः; सर्वेषु विद्यालयेषु संस्कृतभाषाया अध्ययनम् अनिवार्यं विदध्युः, सर्वेषु राजकीयकार्येषु संस्कृतभाषाया शब्दप्रयोगं कुर्युः । एवं चास्या अर्थप्राप्ति-साधनतामवेक्ष्य सर्वे स्वयमेव संस्कृताध्ययने प्रवृत्ता भविष्यन्ति ।

३. अपरञ्च शासनद्वारा निखिलेऽपि देशे स्थाने-स्थाने संस्कृत-विद्यालयस्य स्थापना कार्या, यत्र च विविध-विषयाणाम् अध्ययनाध्यापनस्य व्यवस्था भवेत् । तथा च तत्रत्यानां संस्कृताध्यापकानामपि समीचीना वेतनादि-व्यवस्था विधेया ।

४. अपरञ्च संस्कृताध्ययनशीलानां विद्यार्थिनां कृते छात्रवृत्ति-प्रदानस्य व्यवस्थापि कर्त्तव्या । शासनद्वारा समये-समये विद्यालयादिषु संस्कृत-प्रतियोगिताया आयोजनं कर्त्तव्यम् । तत्र च विजेतृभ्यः छात्रेभ्यः प्रोत्साहनार्थं पुरस्कारादि-वितरणस्य प्रबन्धोऽपि कार्यः ।

५. तत्र, संस्कृतभाषाया अध्ययनाध्यापनविधौ कश्चित् परिष्कारोऽपि कर्त्तव्यः । यतश्च यदा छात्रा संस्कृताध्ययनार्थं प्रवृत्ता भवन्ति तदा तत्राध्यापन-सरणिं विलोक्य उद्विग्ना छात्रा संस्कृतभाषां कठिनां मन्यमानाः संस्कृताध्ययनेभ्य विरमन्ति । अतः संस्कृतभाषां प्रति सुरुचि-समुत्पादनार्थं संस्कृतस्य अध्यापनविधौ सरल-सरणिरनुसर्त्तव्या ।

६. प्रथमं तेषामध्यापनाय सरलतराणि पाठ्य-पुस्तकानि प्रकाशनीयानि । तेषु विशेषतः आख्यानात्मकाः संवादात्मकाश्च पाठाः सन्निवेशितव्याः । प्राध्यापकैः अध्यापने लघुतराणि वाक्यानि प्रयोक्तव्यानि । येन छात्राणां संस्कृत-भाषणेऽभिरुचिर्भवेत् । तैस्तथा प्रयतितव्यं यत्ते छात्राः संस्कृत-प्रश्नानामुत्तरं संस्कृतभाषायामेव दातुं समर्था भवेयुः ।

७. किं बहुना दैनिकव्यवहारेऽपि संस्कृतभाषाया सरलतराणि लघुवाक्यानि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयोक्तव्यानि । तत्र भाषणे लेखने चापि सरलभाषायाः प्रयोगो विधेयः । सर्वैरेव संस्कृतज्ञैः पत्रव्यवहारेऽपि सरलाया एव भाषाया प्रयोगः कार्यः ।

८. संस्कृतभाषाया प्रचाराय प्रसाराय च सरलभाषायां संस्कृत-पत्रस्य प्रकाशनं कुर्यात् । तत्र परीक्षोपयोगिनो विषया मनोहारिण्यः कथाः कविताश्च प्रकाशनीयाः । येन जनाः तदध्ययने स्वाभिरुचिं प्रदर्शयेयुः । विद्वद्भिश्च सरलायां संस्कृतभाषायां पुस्तकान्यपि प्रकाशनीयानि ।

९. सदवसरेषु उचितेषु च कालेषु संस्कृत-नाटकानामभिनयैः चलचित्र-प्रदर्शनैश्चइत्यादिभनोरञ्जनसाधनैः संस्कृतं प्रति लोकानाममिरुचिरुत्पादनीया । शासकैः आकाशवाणीद्वारा संस्कृतस्य प्रसाराय प्रचाराय च प्रबन्धोऽपि कार्यः ।

१०. देशेषु स्थाने-स्थाने संस्कृत-प्रचाराय संस्कृत-परिषदः स्थापनीयाः । तत्र समये-समये संस्कृत-विदुषां लेखकानां च पारितोषिकादिभिः सम्मानं विदध्यात् । एवं चास्माभिः राज्याधिकारिभिश्च मिलित्वा संस्कृतभाषाया अभ्युन्नतये प्रसाराय प्रचाराय च प्रयत्नो विधेयः। तदैव भाषेयं 'विश्वभाषा' इति पदवीम् अलङ्करिष्यति ।

३. संस्कृतभाषाया राष्ट्रभाषात्वम्

विगतायामपि सप्तविंशति-वर्षात्मिकायां काल-कलायां वदेशिक-परतन्त्रता-कलङ्कम् अपहाय स्वतन्त्रता-सभाजिते सर्व-विध-प्रभु-सत्ता-सम्पन्नेऽपि भारते राष्ट्रभाषाया महनीये पदे सर्वा अत्रत्या भाषा बलात् तिरस्कृत्य समासीनां वैदेशीयाम् आङ्गलभाषां निभाल्य कस्य स्वदेश-प्रेम-पीयूषेण पवित्रान्तःकरणस्य जनस्य शिरो लज्जया अवनतिं न भजते ।

विश्वस्मिन् विश्वे नैतादृशः कश्चिद् दौर्भाग्य-ग्रसितो देशो दृश्यते, यत्र स्वदेश-भाषाम् अपहाय वैदेशिकी भाषा राष्ट्र-भाषा-पदे समासीना विद्यते । अत्रेदमेव कारणं यद् दास्य-मनोवृत्या पराधीना राष्ट्रनेतारः प्रतिष्ठितपदेषु समारूढा उच्च-राज्याधिकारिणश्च आंग्लभाषा-प्रेमपूरिताः न तदतिरिक्तां कामपि भाषां राज्यकार्यस्य सर्वतः सञ्चालने समर्थां मन्यन्ते ।

पुरा केषाञ्चिद् राष्ट्रनायकानां परिश्रमेण राष्ट्रे सर्वाधिक-प्रचार-प्राप्तां हिन्दीभाषां राष्ट्रभाषां विधातुं लोकसभायां विचारोऽपि सञ्जातः, किन्तु विवादेऽस्मिन् सर्वेषाम् ऐकमत्यं नाजनि । दक्षिण-भारते हिन्दीभाषाया विशेषतो विरोधो दृष्टः । वैदेशिकप्रेमपूर्णाः ते वैदेशिकीं भाषां तु समध्येतुं तत्पराः सन्ति, परन्तु स्वदेशीयामेव भाषाम् अध्येतुं न सन्नद्धा भवन्ति। यदि भारतस्य प्राचीना राष्ट्रभाषा गीर्वाणवाणी राष्ट्रभाषा-पदे प्रतिष्ठिता भवेत्, तर्हि नात्र कस्यचिद् विरोधस्य आशङ्का समुदेतुं शक्नोति। यतो दक्षिण-भारतीयानां दृष्टौ हिन्दीभाषा तामिल-तेलगू इत्यादिभाषावत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रान्तीय-भाषैव अस्ति, किन्तु संस्कृतभाषाया राष्ट्र-भाषा-घोषणे तेषाम् अपि कोऽपि विरोधो न भविता ।

समस्त-राष्ट्र-व्यापिनी निखिल-प्रान्तीय-भाषासु शब्द-सन्दोह-प्रसविनी भाषैव राष्ट्रभाषा भवेदिति सिद्धान्तं स्वीकृत्य विहिते विचारे निष्कर्षोऽयमेव मनीषिणां मनःसु भाति, यत्संस्कृतभाषैव सर्वथा राष्ट्र-भाषा-पदस्य समुपयुक्ता। समुद्राद् आरभ्य हिमालय-पर्यन्तं वङ्गाद् आरभ्य द्वारकापुरी-पर्यन्तं संस्कृतभाषायाः प्रचारो दृश्यते। किम्बहुना स न कोऽपि भारतीयो वर्तते यः संस्कृतशब्दानां समुच्चारणं न करोति। भारतीयानां सर्वेषामेव सर्वविधा धार्मिकक्रिया समुपासना वा संस्कृतभाषामयैः एव वैदिकैः मन्त्रैः पौराणिकैः श्लोकैः वा भवति। सर्वासु प्रान्तीयासु भाषासु संस्कृत-भाषा-मया शब्दाः तथैव संराजन्ते, यथा समृद्धाया जनन्या वित्तं सर्वासु सन्ततिसु सम्यक्तया शोभते।

हिन्दीभाषायां संस्कृतस्य समानां तद्भवानाञ्च शब्दानां संख्या नव-प्रतिशत-तोऽपि समधिका वर्तते । दक्षिण-देश-भाषासु तामिलादिष्वपि संस्कृत-शब्द-सम्पत्तिः षष्टिप्रतिशतात्मकता वर्तत इति विदन्त्येव भाषाविदः । अपि च हिन्दीभाषाया व्याकरणम्, काव्यमान्यता, विज्ञानम्, अलङ्कार-रचना, छन्दोविद्या सर्वमेव संस्कृतानु-सारमेव । अतएव संस्कृतभाषाभिज्ञैः राष्ट्रप्रेम-परिपूर्णान्तःकरणैः मान्यैः श्रीकैलाश-नाथकाटजू-अनन्तशयनायङ्गर-प्रभृतिभिः मनीषिभिः, संस्कृतभाषैव राष्ट्रभाषा भवेदिति स्वीयो विचारः प्रकटितः, परन्तु तात्कालिकानाम् अन्येषां कोलाहले अमीषां महो-दयानां ध्वनिः पटह-ध्वाने तुरी-वाद्य-ध्वनिरिव विलीनः । यथाकथञ्चित् मान्य-भाषासु संस्कृतस्य नाम समायातम् इत्यपि सन्तोषावहमेव। अन्यथा अस्या भाषाया प्राचीनसंस्कृतिना सह विनाशोऽपि समासन्न इव प्रतिभाति स्म।

ये च केचन जना संस्कृतं मृतभाषां-वदन्तोऽस्या राष्ट्रभाषाया अयोग्यताम् एव जल्पन्ति। वस्तुतः तेषां कथनेन तेषाम् इतिवृत्तानभिज्ञतैव सुस्पष्टं प्रतिभासते। भाष्ये सूत-संवादादीनि प्रकरणानि भोजप्रबन्धस्य बहूनि स्थलानि च अस्याः सर्व-प्रचारतां राष्ट्रभाषा-योग्यताञ्च वदन्तो दृश्यन्त एव।

वर्तमानेऽपि काले अनुवादार्थं नवीन-शब्द-निर्माणार्थञ्च संस्कृतभाषाया एव शरणे समायान्ति सर्वे विद्वांसः । अतएव भारतीयेतिहासस्य स्वर्णकाले मौर्यकाले तदनन्तरं स्वराष्ट्र-प्रेम-तत्परे पुष्यमित्रकाले गुप्तसाम्राजां समये महाराजस्य भोजस्य च काले समनुभूत-राष्ट्रभाषा-पदा असौ सुरभारती । "मृतभाषेयं न राष्ट्रभाषा भवितुं समर्था।" इति वदतां भारतीयेतिहास-शून्यानां पाश्चात्य-परम्परा-भक्तानां वाचा कर्मणा मनसा च पाश्चात्य-दासानां जनानां ज्ञानलवम् उपहसत्येव।

नवस्वतन्त्रेण जनसंख्या-भू-विस्तार-दिशा च भारतापेक्षया अतीव न्यूनेन "इजरायल राष्ट्रेण" हिब्रूनाम्नीं विगत-प्रचार-प्रसारां स्वभाषां राष्ट्रभाषापदे संस्थाप्य कर्तव्य-पालनस्य स्वाभिमानस्य स्वातन्त्र्य-प्रणयस्य च नवीन आदर्शः प्रदर्शित एव।

अतो भारत-सर्वकारस्य अपि कर्तव्यम् इदमेव यत् सोऽपि संस्कृतं राष्ट्रभाषा पदे समुद्घोष्य स्वराष्ट्र-प्रणयिनां मनांसि मोदयेदिति। वर्तमाने समये देशस्य एकतार्थं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृतमेव राष्ट्रभाषा भवेदिति समुदेति समीचीनः पक्षः। अनेन विविधानि समान्दोलनानि तर्क-वितर्काणि च स्वयमेव निरस्तानि भविष्यन्ति। भारतीय-सर्वस्व-वर्णन-परा, राष्ट्रैकताकरा, सर्वथा सुकरा, सर्वविध-मनोहरा गीर्वाणवाणी सुरभारती इत्यादि-नामधरा संस्कृतभाषा एव विविध-भाषा-संकुले विवाद-व्याकुले भारते राष्ट्र-भाषा-पदे समासीना भवेदिति निर्विवाद एव।

४. राष्ट्रभाषा

प्रत्येकस्मिन् राष्ट्रे एका राष्ट्रभाषा भवति। यस्यां तत्रत्यं शासनं राजकीय-निर्देशादिकं प्रसारयति, सैव भाषा 'राष्ट्रभाषा' इति निगद्यते। सर्वत्रैव तद्देशीया भाषा राष्ट्रभाषापदं भजति। भारते तु अद्यावधि न कापि एतद्देशीया भाषा राष्ट्र-भाषा समुद्घोषिता, परन्तु विदेशीय-भाषायाम् एव सर्वं राजकीय-कार्यं प्रचलति, सैव राष्ट्र-भाषा-पदं भजत इति महती विडम्बना।

विश्वस्मिन् विश्वे कुत्रापि नैतादृशी व्यवस्था वर्तते। वस्तुतस्तु पर-दास्य-लास्यमेव इदं वर्तते। नेतारोऽपि अत्रैकमत्यं न धारयन्ति। यद्यपि सर्वत्रैव प्रायः हिन्दीभाषा निर्बाधं प्रसरति तदपि केचित् क्षुद्र-विचार-परिपूर्णा जना देशे दक्षिणोत्तर-भेदं कुर्वन्तो विदधन्ति हिन्दीभाषाया विरोधम्।

अतएव प्रायो दक्षिणे भारते भवति हिन्दी-विरोधः। केचिच्च उर्दूप्रेमिणो जना हिन्दुस्तानीति पदेन उर्दूसंमिश्रां हिन्दीभाषां गृह्णन्तः तामेव राष्ट्रभाषां कर्तुम् अभिलषन्ति। देशे सर्वाधिकजना यस्यां भाषन्ते सैव भाषा राष्ट्रभाषा भवति इति तथ्यं विचार्य सर्वकारेण यद्यपि हिन्दीभाषा राष्ट्रभाषा समुद्घोषिता, परन्तु तदनन्तरं केषाञ्चिद् विरोधं संलक्ष्य सर्व-सन्तुष्टि-तत्परेण तेन आँग्लभाषा सहयोगिनी भाषा इति समुद्घोषिता।

सम्प्रति सर्वमेव राज्यकार्यं तस्यामेव प्रचलति। स्वीये गृह एव वराकी हिन्दीभाषा न स्वीयं पदं प्राप्नोति। नेतारः संसत्सदस्या राज्याधिकारिणश्च आँग्लभाषाया उच्चारणे स्वीयं गौरवं मन्यन्ते। अतएव विशिष्टजनानाम् आगमने राज्योत्सवे अन्येषु समवसरेषु च सर्वमेव कार्यम् आङ्गलभाषायाम् एव भवति।

नवस्वतन्त्रैः बहुभिः अल्पैरपि देशैः स्वदेशीया एव भाषा राष्ट्रभाषा समुद्घोष्य तासु सर्वमेव कार्यं प्रचालितम्, परन्तु दौर्भाग्याद् देशेऽस्मिन् सम्प्रति विगतेष्वपि सप्त-विंशतिवर्षेषु विदेशीयभाषा एव राष्ट्रभाषापदे विद्यते।

केचिद् दाक्षिणात्या जनाः स्वार्थवशेन हिन्दीभाषा राष्ट्रभाषा मा भूदिति कथयन्ति, परन्तु त एतन्न विचारयन्ति यद् विदेशीयां भाषाम् अधिगन्तुं समीहमानाः जना उपहास्यताम् एव यान्ति सभ्य-समाजे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाषाविज्ञान-विरहितायाः सुव्यवस्थिततोच्चारण-नियम-रहितायाः तवर्गादि-दरिद्राया आँग्लभाषाया अध्ययने यः परिश्रमो विधीयते, तदपेक्षया चतुर्थांशेनापि श्रमेण हिन्दीभाषा हृदयङ्गमा जायते। नहि स्वदेशीयां भाषां परित्यज्य विदेशीयायाः भाषाया अध्ययनं स्वाभिमानिनां जानानां कृते श्रेयस्करम्। किञ्च तेन शिरो लज्जया अवनतिमेव भजते, यन्नास्ति कापि स्वदेशीया भाषा अस्माकं सविधे यया कार्य-निर्वाहो जायेत।

रामायणस्य पुस्तकं तु भारते भवने भवने भासते। प्रसादात् आरभ्य कुटी-पर्यन्तम् अस्य निर्बाधः प्रसारो लक्ष्यते, तदपि हिन्दीमयमेव।

वस्तुतस्तु राजनैतिकदृष्ट्यैव हिन्दीभाषाया विरोधो दृश्यते दक्षिणभारते। किन्तु निष्पक्षदिशा तु तथ्यमिदं साम्मुख्यं सरति यद् भारतव्यापिनी भाषा तु सम्प्रति हिन्दीभाषा एव विद्यते।

यतो हिन्दीभाषा जानन् तयैव व्यवहरन् जनः सर्वस्मिन्नेव भारते निर्बाधं भ्रमन् स्वीयं कार्यं साधयति। नहि तत्कृते भाषानभिज्ञता-मूलकं किमपि काठिन्यं कुत्रापि जायते। पूर्वे पश्चिमे दक्षिणे उत्तरे वा भारते सोऽनुभवति हिन्दीभाषा सार्वत्रिकं प्रसारम्। नहि हिन्दीसदृशा निर्बाध-प्रसार-प्रचारा कापि अन्या प्रान्तीया भाषा वर्तते। भारतस्य अर्धादपि समधिकाया जनताया इयमेव भाषा मातृभाषा वर्तते। आधुनिक-कालीनं सर्वविधं सर्वाधिकञ्च साहित्यं हिन्दीभाषायां रचितम् एव विद्यते। सर्वेषामेव प्रान्तानां निवासिनः हिन्दीभाषायां साहित्यं सृजन्तो विदुषां मनांसि रञ्जयन्ति, हिन्दीभाषायाः गौरवं च प्रकटयन्ति।

अतो बहुमतानुयायिनः सर्वकारस्य सर्वप्रथमम् इदमेव कर्तव्यं यद् यां सर्वाधिका जना उच्चारयन्ति, यया च सर्वत्र व्यवहरन्ति, तामेव सर्वविधकार्येषु सक्षमां सर्वाधिक-प्रचलितां लोकहितां हिन्दीभाषामेव समुपजीव्य विदधातु सर्वाणि कार्याणि। येन अर्थलाभेन सह स्वाभिमान-लाभोऽपि भवेद् भरतीयानां कृते।

++

५. विद्ययाऽमृतमश्नुते

(सद्विद्या)

'असारेऽस्मिन् संसारे वर्तते विद्याया सर्वविधं वैशिष्ट्यम्' इति विदन्त्येव विद्वांसः। "वेद्यते अनया इति विद्या" इति विग्रहे ज्ञानार्थकात् 'विद्' धातोः निष्पन्नः 'विद्या' शब्दः स्वगौरवं प्रकटयति। विद्यैव तद्वस्तु येन मानवस्य पशोः च भेदः कर्त्तुं शक्यते। अतएव नीतिशतककारेण श्रीभर्तृहरिणा "विद्याविहीनः पशुः"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति सुस्पष्टमेव विद्या-वैशिष्ट्यं वर्णितम् । सा च विद्या 'परा-अपरा' इति प्रकारेण द्विविधा वर्तते । तत्र च 'परा' विद्या ब्रह्मविद्या इति निगद्यते । सैव सर्वश्रेष्ठा विद्यते भगवता श्रीकृष्णेन "अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" इति गीतासु गणिता ।

अस्मिन् संसारे प्रायः सर्व एव विद्वांसः कामयन्ते यत्कथमपि मोक्षप्राप्तिः भवेत् । भगवती श्रुतिः **"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"** इति प्रकारेण ज्ञानस्यैव मोक्षोपायतां वदति । विद्या च ज्ञानफलैव, अतो विद्याया मोक्षोपायता सर्व-वादि-संमता विद्यते । विद्या एव संसार-दावानल-दग्धस्य जन्म-मरण-प्रवाह-पतितस्य मनुजस्य कृते मोक्ष-प्रदायिनी वर्तते । तथा च **"सा विद्या या विमुक्तये"** इति सूक्तिः समुल्लसति विदुषां मनसि । **"विद्ययाऽमृतमश्नुते"** इति वेदवाक्यमपि 'विद्यया एव अमृत-पद-वाच्यस्य मोक्षस्य प्राप्तिः भवति' इति सूचयति ।

द्वितीया च सांसारिकी विद्या 'अपरा-विद्या' इति शास्त्रेषु समुपदिष्टा । वर्तमानाया शताब्द्या उत्तरार्द्धे अनया विद्यया द्रुततरं चरमोन्नतिरवाप्ता । शतशो जनाः विविधान् भारांश्च गृहीत्वा निरालम्बे वियन्मार्गे गमनागमनं विदधन्ति, वायुयानानि वाष्पयानानि च सहस्रशो मानवान् इतस्ततो नयन्ति । सलिलतो यन्त्रबलेन निस्सारिता विद्युद् विविध-विधानि कार्याणि कुर्वन्ती दरीदृश्यते । कोटिशः क्रोशानाम् अन्तरे स्थितोऽपि जनः स्वाभीष्ट-जनेन सह वार्तालापसुखं विज्ञान-बलेनैव सर्वथा अनुभवति, विविध-देशीयानि रेडियो-स्थानानि स्वीय-कार्य-क्रमान् प्रसारयन्ति ।

किम्बहुना सम्प्रति मानवेन निशापतेः चन्द्रस्योपरि स्वीय-चरण-निक्षेपो विहितः । तत्रस्थितोऽपि जनाः चित्राणि प्रेषयति, वार्तालापं विधत्ते, तत्रस्थभूमेः अन्वेषणाय चङ्क्रमणं करोति, धूलिं गृह्णाति, भुङ्क्ते, स्वपिति, निखिला एव स्वीया क्रिया विदधाति । अन्वेषणादिकार्यं विधाय स्वेच्छानुसारं सानन्दं पुनः वसुधां परावर्तते । अतो निश्चितमिदं यत् कल्पनातीतां समुन्नतिं समाश्रिता साम्प्रतम् एषा भौतिकी विज्ञान-विद्या । किन्तु एषा विज्ञान-विद्या यदा लोकोपकारिणी भवति, तदैव 'सद्विद्या' इति पदवाच्यो जायते ।

अपि च अर्थप्रधाने युगेऽस्मिन् बहव उच्च-शिक्षा-प्राप्ता अपि स्नातका कार्य-विहीना इतस्ततो भ्रमन्तः दरीदृश्यन्ते । अत एतद्दुर्गति-विनाशायेदं ध्येयं यत्सैव विद्या अध्येतव्या, यस्या बलेन ससुखं सम्मानञ्च जीवन-यात्रा-निर्वाहो भवेत् । तदेवं पारलौकिक-श्रेयो-वितरण-कुशला 'परा' विद्या सर्वश्रेष्ठा । लौकिकीसु विद्यासु च लोकोपकारिणी स्वजीवन-यात्रा-निर्वाहिनी विद्यैव **"सद्विद्या"** इति कथ्यते कोविदैः ।

विद्यायाः महत्त्वं सर्वविदितमस्ति । विद्या एव सर्वसुखस्य निदानम् अस्ति । विद्यया एव मानवाः विनयशीलाः सुसंस्कृताः विचारशीलाः च भवन्ति । विद्यावन्तो जनाः सर्वत्र सम्मानं यशः प्रतिष्ठां च लभन्ते । विद्या विनयं ददाति, कीर्त्तिं प्रसारयति, लक्ष्मीं विस्तारयति, पितेव हितकारिषु कार्येषु नियोजयति, मातेव स्वदेशे विदेशे च रक्षिका भवति, कान्तेव खेदमपनीय चेतः रमयति, किं बहुना कल्पलतेव विद्या मानवस्य किं किं कार्यं न साधयति । सत्यमुक्तम्—

"किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्या तु अनुत्तमम् अक्षय्यं धनमस्ति । तस्य विद्याधनस्य सर्वोत्तमं वैशिष्ट्यम् इदं वर्तते, यत् व्यये कृतेऽपि तद्वर्धते, चौरा अपि तद् हर्त्तुं न शक्नुवन्ति, बान्धवैरपि न विभज्यते, राजाऽपि हर्त्तुं न शक्नोति, विद्यया तु यद् यद् वस्तु प्राप्यते धनेन तु तद्वस्तु कदापि न लभ्यते । यतः धनेन तु शाश्वतं सुखं न लभ्यते, किन्तु विद्यया शाश्वतं सुखं सहजेन लभ्यते । एवं विद्याया महत्त्वं सर्वातिशायि वर्तते ।

६. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

नानाविध-विचार-प्रचार-पूरिते जगतीतले सर्वेषामेव प्राणिनां नैसर्गिकी प्रवृत्तिः प्रचरति यत् सर्वे एव जना माम् आदर-भावनया पश्येयुः, मदीयं सत्कारं कुर्युः, न कश्चिदपि श्रेष्ठोऽपि मत्तिरस्कृति कुर्यात् । सर्वेप्सितस्य सत्कार-शाखिनो मूलं गुणगणमेव, नात्र कस्यचिदपि विप्रतिपत्तिः । विद्यैव च वर्तते गुणग्रामस्य स्वाभाविकी सहजा कुलजा च सुरतिः वसतिः । अतएव च विद्यैव वर्तते पूजायाः सत्कारस्य समादरस्य च कारणीभूता ।

धनं रूपं वा कदाचिदेव सम्मान-निदानम्; नहि तस्य विश्वजनीनता विद्यते । "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" इति दिशा धनमेव मानकारणम् इति कथयतः पृच्छामो वयं यद् याज्ञवल्क्य-काले शङ्कराचार्य-समये चाणक्य-काले वा के जना आसन् धनवन्तः । तेषां नामान्यपि सम्प्रति न श्रूयन्ते । परन्तु विदुषां नामानि निर्बाधम् अद्यावधि श्रुति-सत्कारम् कुर्वन्ति । एतेनैव निदर्शनेन सिद्धिम् एति तत्त्वमिदं यद् यद्यपि धनमपि वर्तते माननिदानं तदपि तद्देश-काल-परिस्थितिभिः अवरुद्धमेव । किन्तु विद्यानिमित्तस्य सम्मानस्य परिधिः देशकालादिभिः अनवरुद्धं विद्यते ।

यद्यपि केचित् विद्यासम्पन्ना अपि जना दुर्गुण-कुल-निवासान् धनिनो "त्वम् इन्द्रः त्वं वरुणः त्वं सोमः" इत्यादिरीत्या धनाशया स्तुवन्तो दृश्यन्ते । अर्थलोलुपा इमे च सकल-वन्दनीयायाः वाग्देवताया अपमानं कुर्वन्तोऽपि दृश्यन्ते ।

किञ्च संसारेऽस्मिन् सन्ति सहस्रशः तादृशा महापुरुषा ये धनं तृणमिव मन्यन्ते, सत्यापेक्षया धर्मापेक्षया वा नास्ति मनागपि धनस्य महत्त्वं तेषां मनसि, तेऽपि विद्याया महत्त्वं मन्यन्त एव । अतएव धनापेक्षया वर्तते विद्याया अधिकं महत्त्वम् । न केवलं धनिकापेक्षया, अपि तु सर्वविध-शक्ति-सम्पन्नानां नृपाणाम् अपेक्षया अपि विदुषां श्रेष्ठत्वम् उक्तं श्रीमता चाणक्येन--

विद्वत्त्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

धनिकापेक्षया विदुषो मानाधिक्यस्य कारणं विद्या एव वरीवर्त्ति । नहि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्याधनं प्राकृत धनवद् हार्यं विभाज्यं नश्वरं वा भवति तत्तु, अक्षयम् अविभाज्यम् अहार्यं च वर्तते।

कस्यचिद् राष्ट्रस्य समाजस्य वा समुन्नतिः न केवलं धनेन कर्तुं शक्यते, किन्तु विद्वद्भिः बुद्धिवलेनैव सा सम्पादयितुं शक्या। तस्मादेव देशे समाजे वा विदुषां स्थानम् अनुपमम् एव। भारतवर्षे तु सदैव विदुषां पूजा सम्मानञ्च विधीयते।

उपनिषत्काले सर्वशक्ति-सम्पन्नेन महाराजेन अश्वपतिना अन्यैरपि राजभिः समागतानां विदुषां रैक्वादीनां ब्रह्मवादिनां च सम्मानम् अद्वितीयमेव निदर्शनम्। एवमेव विद्वत्सेवकेन मिथिलाधिपेन ब्रह्म-विद्या-रसिकेन श्रीजनकेनापि महात्मनो विद्यानिधेः याज्ञवल्क्यस्य वहुधा ससम्मानं पूजनं श्रूयत एव। पुराणेषु च तादृशा पावनाः प्रसङ्गा वहुधा समायान्ति, येषु शारीरिक-शक्तेः सम्पत्तेः साम्राज्यस्य प्राज्यस्य राज्यस्य वा अधिपतयोऽपि विदुषां सम्मानं प्रदर्शयन्तो विद्याया गौरवं समुद्घोषयन्ति।

महाराज-दशरथस्य वशिष्ठसमर्चनं विद्यासमर्चनमेव। लोकभद्रेण श्रीरामभद्रेण वनवास-काले निष्किञ्चनानां तपोविद्या-निधीनां विदुषां महात्मनाञ्च यादृशं महत्त्वम् उपदर्शितं तत्साम्यन्तु न कुत्रापि विलोक्यते। "ज्ञानं भारः क्रियां विना" इति वचनानुसारं त एव विद्वांसो ये विद्याम् अधिगत्य तया तत्त्वदर्शनं विधाय लोकशिक्षार्थं तादृशान् एव सदाचारान् पालयन्तो जीवनम् अतिवाहयन्ति। वशिष्ठ-वाल्मीकि-प्रभृतयो महात्मानः अस्याम् एव सरणौ सरन्तो दृश्यन्ते।

एवमेव वर्तमानेऽपि काले सर्वेषु देशेषु विदुषां सम्मानस्य परिपाटी प्रचलति। 'नोबेल' इत्यादयः पुरस्काराः तस्य प्रकारभेदा एव। एभिः देश-जाति-परिधि-मुक्ताः तद्विषय-विशेषज्ञाः सत्कार-भाजनानि विधीयन्ते। भारतीय-सर्वकारेणापि समये-समये तत्तद्विशेष-विदुषां तत्तद्रीत्या पुरस्कारादि-विधानैः परिपाल्यते प्राक्तनीयं पावनी परम्परा।

पर्यालोचनेन इदमेव निश्चीयते यद् विदुषः सम्मानं सर्वैरेव सर्वत्र सर्वथा च क्रियते। अत एवैषा सूक्तिः यथार्थैवेति यद्——

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

७. गुरोर्गरिमा

(गुरुभक्तिः)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अस्ति च सर्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन् विश्व-ज्ञान-प्रदातॄणाम् अज्ञान-तिमिरापहन्तॄणां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परब्रह्म-स्वरूपाणां गुरूणां गरिमा। सर्वत्रापि देशे सर्वेष्वपि शास्त्रेषु च गुरोः महत्त्वं जेगीयते । प्रतिपादितं च धर्मशास्त्रेषु गुरोः महत्त्वं यथा—

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यं दत्त्वाऽनृणी भवेत् ॥

पुराकल्प एतदासीत् यच्छिष्याः विद्याम् अधिगन्तुकामाः कस्यापि विविध-विद्या-विद्योतितान्तःकरणस्य सकल-शास्त्र-प्रवीणस्य सदाचार-शीलस्य गुरोः शरणं गत्वा सदाचारेण गुरु-शुश्रूषया भक्त्या च विद्यां गृह्णन्तिस्म । गुरुश्च वर्षमेकं यावच्छिष्यम् अनुशास्तिस्म, ततः शिष्यम् अनुशिष्य उपनीय च सकल्पं सरहस्यं साङ्गोपाङ्गान् वेदान् अध्यापयतिस्म । ततो पुराणानि धर्मशास्त्राणि काव्यानि च अध्याप्यन्तेस्म । यदि च वर्षैकानन्तरं गुरुः शिष्येभ्यः विद्यां न ददातिस्म, तदा स पापभाक् भवतिस्म । उक्तं च यथा——

स आम्रवृक्षः विप्रोऽभूत् विद्वान् वै वेदपारगः ।
विद्या न दत्ता शिष्येभ्यस्तेन स तरुतां गतः ॥

'गुरुशुश्रूषया विद्या' इति सूक्त्यनुसारं शिष्यः गुरुकुलं वसन् भक्त्या श्रद्धया च गुरुसेवां कुर्वाणः विद्याम् अधिगच्छेत् । उक्तं च मनुना—

'गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं महीयते ।'

गुरुरेव अज्ञानतिमिरे पतितस्य इतस्ततः परिभ्रान्तस्य पथच्युतस्य शिष्यस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया चक्षुरुन्मील्य अज्ञान-तिमिरम् अपास्य उपदेशामृतं पाययित्वा ज्ञानस्य अलौकिकेन प्रकाशेन त प्रकाशयितुं शक्नोति । स एव तेभ्यः शारीरिकं, नैतिकं, धार्मिकम्, आध्यात्मिकं, व्यावहारिकं च शिक्षामपि दातुं समर्थः। ददाति च तेभ्यः स एवाचार-विचाराणां सदाचार-प्रचाराणां नयानां विनयानां यमानां संयमानां नियमानां सदसद्व्यवहाराणां हेयोपादेयानां च शिक्षामपि । न केवलं शिक्षामेव ददाति स, किन्त्वाचारमपि ग्राहयति । यथा चोक्तं निरुक्ते——

'आचार्यः कस्मात् ? आचार्य आचारं ग्राहयति ।'

अतएव गुरुः पूज्यो मान्यः श्रद्धेयः सेव्यश्च भवति । गुरोः महत्त्वं प्रतिपादयता मनुनाप्युक्तम्—

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥

निरुक्तेऽप्युक्तं 'यद्गुरौ मातृपितृवदाचरेन्न कदापि द्रुह्येदिति' । सन्ति च गुरुसेवायाः गुरुभक्तेश्च अनेकानि उदाहरणानि शास्त्रेषु । को वा न जानाति आयोदधौम्यमहर्षेः शिष्यस्य गुरुभक्तस्य अरुणेः कथानकम् । गुरुणा आदिष्टः स निःसरणमाणोदकावरोधाय केदारखण्डे स्वयम् उपविवेश । तद्गुरुभक्त्या श्रद्धया च तुष्टेन उपाध्यायेन अयोदधौम्येन अनुगृहीतः स सर्वान् वेदान् सर्वाणि धर्मशास्त्राणि सर्वाणि श्रेयांसि च अलभत । एवमेव गुरुभक्त एकलव्यः वने गुरोः द्रोणाचार्यस्य प्रतिमां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विधाय तस्य समक्षे परया श्रद्धया परमेण योगेन च विद्यामभ्यसन् महान् धनुर्धरो जातः ।

अतएव श्रेयोऽभिलाषिणः छात्राः परया भक्त्या श्रद्धया च गुरुसेवायां गुरोः अनुशासने च वर्तमानाः सविनयाः गुरोः सकाशात् सतत-कल्याण-करीं धर्मार्थ-काम-मोक्ष-प्रदां विद्याम् अधिगच्छेयुः ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

✤✤

८. छात्राणां कर्तव्यानि

मानव-जीवनस्य परमाह्लादमयी मङ्गलमयी प्रभातवेला छात्रावस्थैव वर्तते । अस्यामेव अवस्थायां स यादृशं वृत्तं समुपचिनोति, तेनैव च समस्ताया जीवन-यात्राया निर्वाहं करोति । अतएव छात्राणाम् उज्वल-भविष्यस्य कामनया अभिभावकैः विविध-क्लेशान् अपि समुपेक्ष्य तेषां शिक्षाणादि-व्यवस्था यथाशक्ति विधीयते ।

वस्तुत इयमवस्था शिक्षणावस्थैव वर्तते । छात्राः स्वां स्वल्पां शेमुषीम्-अवलम्ब्य केवलमात्रं तदात्व एव सुखं कामयमाना स्व-भविष्य-विचारे समर्था न भवन्ति। अतएव प्रायस्ते गुरुजनानाम् अभिभावकानाञ्च अनुशासनं दुःखप्रदमेव मन्यन्ते । यद्यपि तत्तदात्त्वे दुःखदमिव प्रतिभाति तदपि ज्वरिताय लङ्घनमिव तत्परिणामे सुखमेव अनल्पं प्रसूते । अतो विद्यार्थिनां प्रथमम् इदमेव कर्तव्यं यत् तदनुशासने स्थेयम् ।

'विद्यार्थी' शब्दोऽयं स्वत एव विद्याकामितां वदति, अतो विविधान् विद्याध्ययन-विघ्नान् विहाय सर्वतोभावेन विद्यायाः समुपार्जनमेव कर्तव्यम् । किन्तु वर्तमानकालस्य परिस्थितीनां पर्यालोचनेन छात्रा अस्मिन् कर्तव्ये विरता इव प्रायः परिलक्ष्यन्ते । ते पाश्चात्य-परम्पराया अन्धानुकरणं कुर्वन्तः केवलं वेशभूषादि-विन्यासं वहन्तो वृथा वाद-विवादं विदधन्तः अनुशासनभङ्गमेव स्वतन्त्रताम् उद्घोषयन्तः समस्तमेव सत्रकालम् अतिवाहयन्ति, परीक्षाकाले च योग्यतां समुपेक्ष्य येन केनापि प्रकारेण परीक्षोत्तरणे चेष्टन्ते । किन्तु तदा ते न विचारयन्ति, यदनेन क्षणिकसुखेन वस्तुतः ते कुठारेण स्वोन्नति-लतिकाम् एव छिन्दन्ति । विद्याध्ययनकालः तपस्याकाल एव वर्तते। अतएव अस्मिन् काले लौकिक-सुखेभ्यो विरतिः अवश्यमेव अपेक्षते । तस्मात्सर्वाणि सुखानि विहाय विद्याया अध्ययने संलग्नो भवेत् । नहि किमपि क्षणं विद्याया अध्ययनं विना व्यर्थमेव परिहातव्यम् । यथोक्तम्—

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत् ।
क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ॥

न केवलं पूर्वोक्ता सूक्तिरेव विद्यते, परन्तु महापुरुषैः स्वजीवने निदर्शनीकृतापि एषा परिलक्ष्यते। भारतस्य महायशस्विनं प्रधानमन्त्रिणं श्रीलालवहादुरशास्त्रिणं को न वेत्ति। यतोऽमीषां नाम कर्तव्यबलेन भारतीयेतिहासपृष्ठेषु स्वर्णाक्षरैः लिखितं वर्तते। स्ववाल्यकाले रामनगरे निवासभाजिनः इमे महाभागाः प्रत्यहं भागीरथीं स्वबाहुभ्यां तीर्त्वा वाराणसीं विद्याध्ययनार्थम् आगच्छन्ति स्म। वंगभूमि-भूषणानां श्रीमदीश्वरचन्द्र-विद्यासागर-महाशयानां विद्यालय-गमनस्य नियम एतादृशः समयानुस्यूत आसीत्, यत्तेषां गमनवेलायां जनाः स्वीयघटिकां सम्मेलयन्ति स्म।

प्राचीनकालेतु विविधानि निदर्शनानि दृश्यन्ते, यत्र स्वीयां महत्तां परित्यज्य विद्याध्ययनकाले महद्भिरपि महान्ति कष्टानि सोढानि। श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुरुगृहे निवासकाले काष्ठ-सञ्चय-कथा, आरुणेरुद्दालकस्य गुरुसेवा, इत्यादिका विविधा कथा तत्त्वमिदमेव द्रढ़यन्ति। विद्यार्थि-कर्तव्य-विषये केनापि कलितं पद्यमिदं युक्तमेव—

काकचेष्टा वकध्यानं शुनो निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थिपञ्चलक्षणम् ॥

यथा काकः सर्वदा स्वाहारमन्वेषयति तथैव विद्यार्थिना अपि विद्याधिगमचेष्टा सर्वदा कार्या। यथा च वको ध्यानावस्थितो भवति तथैव विद्यार्थिना अपि पठनानन्तरं विद्या अध्येया। यथा च कुक्कुरः स्वल्पाम् एव निद्राम् अवलम्वते तथैव विद्यार्थिना मनाग् एव निद्रोपास्या। अधिकाहारेण च आलस्यं स्वाभाविकमेव, अतो विद्यार्थिना स्वल्पाहार एव विधेयः। किञ्च ब्रह्मचर्यन्तु तेन सर्वदा सेव्यम् एव। अन्यगुणापेक्षया ब्रह्मचर्यस्य महत्ता विद्यार्थि-जीवने सर्वातिशायिनी विद्यत एव। **"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत"** इति वेदवाक्ये प्रशंसितं ब्रह्मचर्यन्तु विद्यार्थिभिः सदा समुपास्यम् एव।

"स्वस्थे शरीरे स्वस्थं मस्तिष्कं निवसति" इति सदुक्तेरनुसारं शरीर-स्वस्थतापि समपेक्ष्यत एव। इमाम् एव आवश्यकताम् परिलक्ष्य विद्यालयेषु विविध-विधानां व्यायामादीनां क्रीडानां व्यवस्था वर्तते। विद्यार्थिनामिदं परमं कर्तव्यं यत्तैः समयोचितैः शरीरोचितैश्च व्यायामैः शरीरस्य संपुष्टिः करणीया। यतः केवलाध्ययने निरता ये छात्राः शरीरं प्रति समुपेक्षां विदधन्ति, ते यावज्जीवनं दुर्वल-कलेवरा न किमपि संसारे कर्तुं पारयन्ति। पठनकाले पठने, व्यायामकाले च व्यायामे दत्तावधानैः तः सवदा भाव्यम्। अनया रीत्या शरीर-सम्पत्त्या विद्या-विभूत्या च सम्पन्नाः नैतिक-गुण-परिपूर्णा छात्रा आगामि-जीवने सर्वविधेषु क्षेत्रेषु स्वसमुन्नतिं कुर्वन्तः स्वार्थेन सह परमार्थं साधयन्तः स्वमानवजनुषं सफलयन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६. अनुशासनम्

"मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" इति प्राचीनामपि चिरनवीनां सूक्तिम् अनुसृत्य परस्परं विभिन्नता-भासिते विविध-विचार-धारा-परिप्लाविते जगतीतले अनुशासनाख्यं तद्वस्तु विद्यते यस्य वलेन कार्यचक्रं परिपूर्णताम् एति । यदि न स्याद् अनुशासनं तर्हि किमपि कार्यं पूर्णं भवेदिति तु दूर एव, किन्तु तस्य रूपरेखापि पूर्णतां न यायात् ।

एकस्मिन्नेव कार्यालये वहवो जनाः कार्यं विदधन्ति तेषाञ्च विचारधारा पृथक् पृथगेव वर्तते । यदि च तत्र पदानां तारतम्य-क्रमेण व्यवस्था न स्याद्, जनाश्च स्वीयां स्वीयाम् इच्छाम् अवलम्ब्य कार्यं कुर्युस्तर्हि तत्कार्यम् अकार्यमेव भवेत् । यथा एकं तृणं किमपि कार्यं कर्तुं न शक्नोति, परन्तु यदा तृणानि निवद्धानि भूत्वा रज्जुरूपं धारयन्ति तदा परम-शक्ति-सम्पन्नोऽपि हस्ती तेन वद्धो भवति । एवम् अनुशासन-वलेन ऐकतां प्राप्ता जना महान्त्यपि कार्याणि श्रमं विनैव साधयन्ति ।

सैनिकानां शक्तिस्तु सदानुशासन एव वर्तते । प्रतिक्षणं मरणं यत्र नृत्यति तत्र युद्धेऽपि सैनिका अनुशासनस्यैव वलेन स्वीय-स्थानेषु स्थिता दृश्यन्ते । एवमेव राष्ट्रेऽपि विद्यते अनुशासनस्य परमावश्यकता । छात्राणां कृतेऽपि गुणोऽयं परमावश्यक एव गण्यते । वालकाः स्वभावत एव क्रीडायाम् अनुरक्ता भवन्ति । ज्ञानस्य अभावे ते स्वयं हितमहितं वा विचारयितुं शक्ता न भवन्ति, न वा ते पठनस्य लाभम् अपठनस्य हानिं वा विदन्ति ।

अतएव प्रारम्भिककाले तेषां मनांसि क्रीडां विहाय अध्ययने निमग्नानि न भवन्ति । प्रायस्ते पठनेन उद्विग्ना इव भवन्ति । किन्तु गुरूणाम् अनुशासनेन भीताः तेषाम् आदेशं पालयन्ति तदनुरूपं कार्याणि च विदधन्ति । यथा रोगपीडितो जनोऽनिच्छया कटुकौषधं गृह्णाति, किन्तु परिणामे रोगशान्त्या स एव सुखम् अनुभवति । एवमेव प्रारम्भे विरतिम् आवहद् अपि शास्त्राध्ययनं परिणामे सुखदमेव जायते । शिक्षा, शास्त्रम्, शिष्यः, अनुशासनम्, एषु शब्देषु मूलतया विद्यमानो धातुरेक एव आस्ते । अतएव शिष्य-जीवने अनुशासनस्य सर्वाधिकापेक्षा वर्तते ।

अस्मिन् भारते प्राचीनकालाद् एव अनुशासनस्य महिमा वर्णितो दृश्यते । विद्याध्ययनकाले तु सर्वत्रैव अनुशासनस्य साम्राज्यम् आसीत् । परन्तु सम्प्रति गुणस्यास्य उपेक्षैव दृश्यते । प्रायश्छात्रा स्वगुरून् स्वशुल्क-सेवकानिव गणयन्ति, तत एव च गुरूणां हत्यादिकमपि कुर्वन्ति । किन्तु विषयेऽस्मिन् निहितं मूलतत्त्वं ते न विचारयन्ति यद्गुरवो न स्वार्थं किमपि चेष्टन्ते । ते तु तेषामेव भविष्य-कल्याणार्थं दुष्प्रवृत्ति-निरोधार्थं च कार्याणि कुर्वन्ति ।

ये छात्राः परिश्रमं विधाय परीक्षां सन्तरन्ति ते भविष्यजीवने योग्यतया सर्वाणि कार्याणि सम्यक् सम्पाद्य यशसा सह धनस्य भाजनतां गच्छन्ति, किन्तु ये येन केन प्रकारेण परीक्षायां सफला भवन्ति, ते योग्यताभावात् कदापि सफलतां न अधिगच्छन्ति, पदे पदे तिरस्कृतिं च अनुभवन्ति । अतएव छात्राणाम् इदं परमपावनं कर्तव्यं यत्तैः सर्वदा गुरूणाम् आदेशे स्थित्वा सम्यक्तया न्यायतो विद्या अध्येया ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मिन् कार्ये यद्यपि किमपि दुःखमेव दृश्यन्ते परन्तु तदेव विद्याधनं परिणामेऽनुपमं सुखं ददाति। यत्प्रारम्भेऽमृतमिव किन्तु परिणामे विषमिव दुःखदम् अस्ति तस्य सुखस्य सुखता न विद्यते। यच्चाग्रे मनसेऽरुचिदमपि परिणामेऽमृतमिव तदेव सुखं सुखं भवतीति प्रोक्तं भगवता श्रीकृष्णेन गीतायाम्—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

भारतीयसंस्कृतौ न केवलं छात्रजीवनमेव, परन्तु सर्वमेव मानव-जीवनम् अनुशासनेन ओत-प्रोतं विराजते। गुरवोऽपि यदा स्नातकाय गृहस्थाश्रमे प्रवेशाय अनुमतिं ददति, तदा ते तस्मै समुपदिशन्ति यत् "**सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद**" इत्याद्युपदेश-वचनानि।

अनुशासनस्य सर्वाधिको लाभोऽयं वर्तते यदन्यैः महापुरुषैः स्वजीवने ये अनुभवा कृताः, ते अनायासेनैव जनाय मिलन्ति तान् गृह्णंश्च जनोऽधिगच्छति स्वलक्ष्यम्। मानवजीवने अनुशासनं सर्वत्रैव मिलति। प्रारम्भत एव मातापितरौ अनुशासनं कुरुतः, तदनन्तरं गुरवोऽनुशासनं कुर्वन्ति, अन्ते च तत्रत्या वरिष्ठा लौकिका जनाः स्वाचरणेन अनुशासनमेव ददन्ति। ये जनास्तेषाम् आचरणे स्वां मतिं विधाय स्वां जीवन-यात्रां निर्वाहयन्ति, न ते कदाप्यसिद्धेः मुखं पश्यन्ति। भाग्यदोषाद् यदि कदापि तेषां हानिरपि भवति, तर्हि न तेषां दोषस्तत्र जागर्तीति जना वदन्ति। वस्तुतः तेषां विनिपातोऽपि समुन्नतेः सदृश एव गण्यते विद्वद्भिः। यथोक्तं महाकविना भारविना—

स्पृहणीयगुणैर्महात्मभिश्चरिते वर्त्मनि यच्छतां मनः।
विधिहेतुरहेतुरापदां विनिपातोऽपि समः समुन्नतेः॥

एवं विचारक्रमेण अयमेव निष्कर्षो निष्पन्नो भवति यत्सर्वैरेव श्रेयोऽर्थिभिः जनैः सर्वदा अनुशासने एव स्थेयम्। तेन च तेषाम् इहलोकस्य परलोकस्य च कल्याणं जायते।

१०. भारतीया संस्कृतिः

"सम्" उपसर्गपूर्वकात् "कृञ्" धातोः क्तिन् प्रत्यये निष्पन्नः 'संस्कृति' शब्दः धार्मिक-प्रवृत्तिं सत्साहित्यं समुन्नतादर्शं विज्ञानादिकं च बोधयति। सम्प्रति तु आङ्गलभाषायाः 'कल्चर' शब्दस्य प्रभावेण तदर्थ एव प्रयुज्यतेऽसौ शब्दः।

सर्वासु संस्कृतिषु प्राचीना श्रेष्ठा ज्येष्ठा प्रेष्ठा च भारतीया संस्कृतिः इति निर्विवादं तथ्यम्। यस्मिन् काले सभ्यानां देशानां जनाः सभ्यताहीनाः संस्कृति-विहीना दीनाः स्वजीवन-यापनं कुर्वन्त आसन्, तस्मिन्नपि काले भारतीया संस्कृतिः स्वचरमो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्कर्षे विराजन्ती, सदाचारान् निर्दिशन्ती, सर्वलोकहितं वदन्ती, धर्ममुपदिशन्ती, स्वश्रेष्ठताम् उद्घोषयन्ती, सन्मार्गं कथयन्ती च विशोभतेस्म । यथा च भगवता मनुना प्रोक्तम्—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥"

"पुरातनीयं संस्कृतिः' इति कृत्वैव नास्या गरिमा, किन्तु गुणगणैरेव वर्तते अस्या महिमा; तैरेव च जायते अन्यसंस्कृतिषु स्वतो लघिमा। विचार-स्वातन्त्र्यम्, धर्म-प्राधान्यम्, आत्म-ज्ञानम्, सदाचारः, समन्वयः इत्यादयो दुर्लभा विविधाः गुणा अत्रैकीभूता दृश्यन्ते। प्राचीनकाले असावेव संस्कृतिः सर्वस्मिन् जगति स्वप्रभावं प्रदर्शितवती। यस्य अवशेषोऽद्यापि चीन-जापान-वाली-कम्बोडिया-प्रभृतिषु नानादेशेषु सुस्पष्टं प्रतीयते।

भारतीयसंस्कृतेः सर्वप्रथमोऽयं गुणो वर्तते, यदियं भगवती भागीरथी इव स्वमध्य-पतितान् स्वेतर-संस्कृति-नदी-नदादीन् स्वात्मरूपेण परिणमन्ती स्वात्मसात्-कुर्वन्ती निर्बाधं प्रवहति। परन्तु सम्प्रति सर्वत्र प्रचारम् आवहन्ती भौतिकसुखस्यैव प्राधान्यम् उपदिशन्ती पूर्वस्मिन् पाश्चात्यरूपं दर्शयन्ती पाश्चात्य-संस्कृतिः भारते भासते, तया च भारतीय-संस्कृतिः विरलप्रचारेव दृश्यते। विषयेऽस्मिन् भारतीय-विचारकाणां मतमिदं यत् परदास्य-प्रभावादेव प्रचार-बाहुल्यं सम्प्रति जातमस्याः, किन्तु भौतिक-सुखस्य पराकाष्ठाम् अनुभवत्सु ब्रिटेनामेरिकादि-धनाढ्येषु देशेषु समुद्विग्ना जना यथा भारतीय-संस्कृतेरेव शरणे सामायान्तो दृश्यन्ते, तर्हि कथङ्कारम् इमे वाराकाः तद्भक्ता अन्ततोऽस्या शरणं न समेष्यन्ति।

वर्णाश्रम-व्यवस्था भारतीयसंस्कृतेः मूलभूतं तत्त्वम्। अनया व्यवस्थया 'बेरोज-गारी' पदवाच्यया: समस्यायाः समाधानं स्वत एव संजायते। यतो वर्तमानकाले शारीरिकश्रमं विहाय ग्रामं परित्यज्य पत्तनेषु धावन्तः शतशो छात्रा अधीत्य च स्वपरम्पराप्राप्तं कार्यं न कुर्वन्ति, किन्तु व्यवस्थया अनया नैतादृशी देशव्यापिनी दशा भवितुं शक्नोति। यतः संस्कृतिरियं स्वीयेषु सर्वेष्वेव कार्येषु गौरवं दिशति, न वा शारीरिकश्रमस्य गौरवं गूहते। एवमेव आश्रम-व्यवस्थया स्वत एव जनो वैराग्यम् आवहन् धर्मगौरवं धारयन् पापाचाराद् विरमन् सर्वहितावहं कार्यं कुर्वन् स्वशरीरावस्थया सह स्वकार्य-कलापस्य सामञ्जस्यं विदधाति। अतएव पारिवारिक-समस्यानां समाधानं स्वत एव सञ्जायते।

वस्तुतो यदि वयं विचारयामः तर्हि समेषामेषां वर्धमानानां पापानाम् अप-राधानाम् अनैतिकाचरणानां कुकार्याणाञ्च जननी भोगतृष्णैव वर्तते। अनयैव प्रेरितो जनः पैशाचिक-कार्याण्यपि करोति, किन्तु तृष्णेयं प्रतिक्षणं वर्धत एव। भारतीया संस्कृतिश्च अस्या दुष्पूरतां शासयन्ती परित्याज्यामेनां समुपदिशति। अनेकेषां महाराजानां सम्राजाञ्च वार्धक्ये वननिवास इदमेव तत्त्वं प्राधान्येन प्रकटयति।

समष्टिरूपेणेदं कथयितुं शक्यते यद् अध्यात्म-भावनैव भारतीयसंस्कृतेः बीजमाला। धर्माख्य-पोषक-तत्त्वेन सम्मिलिता, सदाचार-पीयूषेन सेचिता, सा सर्वेभ्यो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्याणात्मकं फलं प्रददाति । यस्य सेवनेन जनोऽयं परमां शान्तिम् अधिगच्छति । अतएव च अभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिदाया उभय-लोक-साधिकायाः सर्व-जन-हित-साधिकाया अस्याः समक्षे केवलम् अर्थमात्र-प्रधाना भौतिक-सुखैकप्राणा मिथ्या-गर्वैकताना परस्पर-विरोध-प्रधाना नवीना पाश्चात्य-संस्कृतिः हिंसानिरता साम्यवाद-संस्कृतिः वा विचार-विहित-सम्माना भवितुं नार्हति ।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् ॥"

इत्यादीनि विविधानि सर्वलोक-हितानि रत्नानि वहन्ती भारतीय-संस्कृतिरेव सम्प्रति नितान्त-तान्त-स्वान्तस्य श्रान्तस्य इतस्ततः, सांसारिक-सुख-मृग-तृष्णिकायां भ्रान्तस्य लोकस्य शान्तये भविष्यतीति ।

११. भारतीयसंस्कृतौ नारीणां स्थानम्

सर्वा इतरसंस्कृतीः परिभाव्य भारतीया संस्कृतिः सर्व-श्रेष्ठता-पदम् अलङ्करोति इति विदन्त्येव संस्कृतप्रणयिनो विद्वांसः । अस्या सर्वश्रेष्ठता च यैर्गुणैः परिलक्ष्यते तेषु "नारी-सम्मानम्" अपि ग्रहगणेषु ग्रहाधिपतिरिव चकासते । जन्मन आरभ्य विवाह-पर्यन्तं पितृवेश्मनि निवसन्ती कन्या-पद-वाच्यतां वहन्ती सा पूज्यजनानां श्रेण्यामेव समायाति । विवाहानन्तरं यदा सा पतिगेहं गच्छति तदा सा न दासी भवति, अपितु सा तत्र साम्राज्ञीपदम् एव पुनाति ।

सर्वेषु ब्रह्मचर्यादिषु आश्रमेषु प्रधाने गृहस्थाश्रमे तु नार्या प्राधान्यं वर्तत एव । नहि नारीं विना गृहस्थाश्रमो विराजते । तत्र प्रदीपमानो गृह-स्वामिनीति पर्यायः स्वत एव तस्या गौरवं व्यनक्ति । गृहस्थ-पद-घटकं गृहमिति पदं न निवास-स्थानस्य वाचकम्; अपि तु तत् गृहिणीमेव बोधयति । यथोक्तम्—

"न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते"

यस्मिन् गृहे नारीणां कृते सुखस्योपलब्धिर्न भवति, तस्मिन् गृहे कल्याणं न भवति । तत्र निवसतां धर्म-कर्म-कुर्वतां जनानां सर्वा एव क्रिया निष्फला एव भवन्ति । यत्र च नार्यः प्रमुदिता वसन्ति तत्र सर्वासाम् एव देवतानां निवासो भवति । अत एव सर्वैरेव देवर-ज्येष्ठादिभिः सम्बन्धिभिः नारीणां प्रसन्नता भूषण-भोजनादिभिः सम्यक् सम्पादनीयैव इति प्रकारेण भगवान् मनुरपि नारीणां निरतिशायि महत्त्वम् इत्थं वर्णयति—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैव पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥

पुराणेषु तु नारीणां माहात्म्यं विविधाभिः कथाभिः विविधैः निदर्शनैश्च बहुशो वर्णितं वर्तते। तत्र देवीभागवतं मार्कण्डेयपुराणं ललितोपाख्यानं चेत्यादीनि ग्रन्थरत्नानि नारीगौरवस्य प्रदर्शनपराणि प्रथन्ते। धर्मनिष्ठा आस्तिकाः सज्जना एषां पाठपूजनादिकं प्रत्यहं विदधन्ति। भारतीय-समाजे देवनाम्नः पूर्वं देवी-नाम-ग्रहणं लक्ष्मीनारायणः, राधाकृष्णः, सीतारामः, गौरीशङ्कर इत्यादिरूपेण यद् दृश्यते, तत्सर्वं स्पष्टत एव नारी-महत्त्वस्य प्रदर्शकमेव वर्तते। देवगणनावसरे सर्व-प्रथमं **'मातृदेवो भव'** इति वैदिकनिर्देशो पितुरपेक्षया मातुर्महिमाया आधिक्यं मातृ-शक्तेः महत्त्वमेव दर्शयति।

किम्बहुना भगवती आद्याशक्तिः, जगज्जननी, मातेति विविधैः स्वरूपैः विविधैर्नामभिः स्तूयमाना नारी भारतीयसंस्कृतौ भारतीयसाहित्ये च स्वकीयं वैशिष्ट्यं व्यनक्ति। शङ्कराचार्याद् आरभ्य विवेकानन्द-प्रभृतिभिः लोकोपकारकैः महात्मभिः सैषा मातृशक्तिरेव संस्तुता। स्वातन्त्र्यसंग्रामे च देशभक्तैः सर्वैरेव भारतभूमिरेषा भारत-मातृरूपेणैव संस्तुता सेविता च।

भारतीयायां संस्कृतौ यो नारीणां गरिमा दृश्यते, यच्च साहित्ये तासां महिमा वर्ण्यते, तस्य सर्वस्य कारणं नारीणां गुणाग्राम एव वर्तते। वेदकाले बहवो वागालापा इत्यादयो वैदुष्यविशिष्टा नार्य आसन् वैदिकमन्त्राणां दर्शनकर्त्र्यः। उपनिषत्काले च गार्गी-मैत्रेयी-प्रभृतयो ज्ञाननिधयो नार्य आसन्, यासां ज्ञानस्य गरिमा तत्कालीनैः विद्वद्भिः याज्ञवल्क्यादिभिः ब्रह्मविद्या-पारङ्गतैः महर्षि-धुरीणैरपि स्वीकृतः। पुराणेषु मदालसारुन्धती-सदृशीनां परमसतीनां विदुषीनां पावनानि चरित्राणि श्रूयन्त एव।

शङ्कराचार्यकाले विश्व-विश्रुत-वैदुष्यस्य श्रीमण्डनमिश्रस्य धर्मपत्नी सकल-शास्त्र-विशारदा शारदा नारीणां महिमानं विद्योतते। तदनन्तरञ्च संस्कृत-साहित्ये विज्जकादीनां वैदुष्यविमण्डितानि सरसानि पद्यानि तासां कवित्वकलां कथयन्त्येव। हिन्दीसाहित्यं च मीराप्रभृतीनां भक्तिमयैः पद्यैः सुषमा-संभृतं हरत्येव मानसम्। न केवलं साहित्यक्षेत्रे परन्तु रणक्षेत्रेऽपि स्त्रीणां वैशिष्ट्यं विराजते। कैकेयी-प्रभृतीनां पुरातनैश्चरित्रैः सह दुर्गावती-लक्ष्मीबाई इत्यादीनां वीरता-वासितानि चरितानि गायन्त्येव जनाः।

किम्बहुना सम्प्रत्यपि भारते सर्वानेव राजनयज्ञान् वयोवृद्धान् परिभाव्य विशालस्य भारतवर्षस्य राज्यधुरं वहन्ती शासनं सम्कृतया संचालयन्ती प्रधानमन्त्रितां धारयन्ती 'इन्दिरा गान्धी' अपि स्त्रीणां राज्य-संचालन-कौशलेन सह बुद्धिवैभवं साकारतया प्रदर्शयत्येव। एभिरेव स्त्रीणां निरवद्यैः समस्त-लोक-हृद्यैः गुणगणैः प्रभावितैः भारतीय-कोविदैः तासां सम्मानं वर्णितम्। अतएव च तासां मानस्य कल्याणप्रदता, अवमानस्य च कल्याणविनाशकता सोदाहरणं शतशोऽनुवर्णिता। एवं भारतीय-संस्कृतौ भारतीय-सभ्यतायाञ्च विद्यते नारीणां परमं महत्त्वम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२. नारी-शिक्षा

विविध-विषम-परिस्थितिभिः समाकीर्णे संसार-महार्णवे शिक्षा-नौकाभिः सञ्चरन्तो जनाः प्राप्नुवन्ति स्वलक्ष्याभिधं पारमिति विदन्त्येव विज्ञाः । शिक्षैव तज्ज्योतिः वर्तते, येन प्रकाश्यते गहनान्धकारेऽपि स्वगन्तव्या सरणिः । शिक्षैव सा सोपान-परिपाटी यया प्राप्यते महोच्च-स्थान-लाभः । इत्येवंरूपेण शिक्षाया निरतिशायि महत्त्वं सार्वजनीनोपयोगित्वञ्च न तिरोहितं विपश्चिताम् ।

गृहस्थ-शकटस्य 'नर-नारी' इति चक्रद्वयं विद्यते; तत्र शिक्षैव स स्नेहो येन स्निग्धयोः चक्रयोः गतिर् अक्षुण्णा समतया निर्बाधं भवति। परन्तु यदि चक्रमेकं पर्याप्त-स्निग्धं भवतु द्वितीयञ्च सर्वथा स्नेह-हीनं भवेत्, तर्हि तस्य शकटस्य गतिः न सम्यक्तया भवितुमर्हति, चलने बाधैव समुपस्थिता भवति । एवमेव शिक्षितस्य पुरुषस्य शिक्षा-विहीनाया नार्याः संयोगे भवति। अतएव यथा पुरुषाणां कृते वर्तते शिक्षाया आवश्यकता, एवमेव नारीणां कृतेऽपि वर्तत एव शिक्षाया परमावश्यकता।

यद्यपि भारतेतिहासस्य अवलोकनेन प्रतीयते यत् प्राच्यसमय आसीदत्र नारीशिक्षाया महान् प्रचारः । वैदिककाले वैदिक-सूक्त-दर्शन-कर्त्रीणां वागादीनां नारीणाम् उल्लेखः सिद्धान्तम् अमुं द्रढ़यति। उपनिषत्समये गार्गी-मैत्रेयी-प्रभृतीनां नारीणां पावनानि चरित्राणि कथयन्ति तासाम् उच्चशिक्षाम्। अनन्तरं शंकराचार्यकालेपि मण्डनमिश्रस्य शास्त्रार्थे माध्यस्थं शङ्कराचार्येण सह शास्त्रार्थकरणञ्च देव्याः शारदाया सर्व-शास्त्र-विशारदतां व्यनक्ति । संस्कृतसाहित्ये बहूनां नारीणां विज्जकादीनां पद्यानि तासां वैदुष्यं वदन्ति ।

परन्तु यवनकाले देशस्य संकट-ग्रस्तत्वात् नारीणां सुरक्षाया अभावात् प्राच्यविद्या-मन्दिराणां विलुप्तत्वाच्च सैषा पावनी परिपाटी समूलम् उच्छिन्ना । तत एव अविद्यान्धकारे च पतिता भारतीया वनिताः । आँग्लकाले राजनैतिक-व्यवस्थायां निबद्धायां पुनः प्राचलत् नारी-शिक्षा-क्रमः । स्वतन्त्रे भारते सर्वकारस्य विविधैः समुद्योगैः नारी-शिक्षाया महती समुन्नतिः दृश्यते। परीक्षासु छात्रापेक्षया बालिकानाम् अधिकाङ्क्षावाप्तिः तासां पठन-रुचि मस्तिष्क-प्रौढ़ि बुद्धि-वैशिष्ट्यं दत्त-चित्तताम् इत्यादीन् गुणान् प्रतिपादयति ।

नारी-शिक्षा-विषये सर्वप्रथमम् इदं विचारणीयं वर्तते यत्कीदृशी शिक्षाप्रणाली तासाम् आगामिनि जीवने उपयोगिनी भविष्यति । यद्यपि येषां विषयाणाम् अध्ययनं छात्रा विदधन्ति तानेव विषयान् बालिका अपि पठन्ति। अध्ययनानन्तरं पुरुषवद् विविधेषु राजकीय-पदेषु कार्यं कुर्वन्ति । किम्बहुना वर्तमाने काले तु भुशुण्डीं धारयन्त्यो वायुयानानि वेगेन आकाशे नयन्त्यो वैज्ञानिक-शोध-कार्याणि कुर्वन्त्यः शतशो नार्यो दृश्यन्ते । परन्तु प्रायो जीवने नारीणां नराणाञ्च कार्यं पृथगेव भवति। अत एव च तयोः शिक्षायामपि किञ्चिद् अन्तरम् आवश्यकमेव। तदर्थमेव शिक्षाविद्भिः गृहविज्ञानादयो विषयाः पाठ्यक्रमे निहिता येषाम् अध्ययनं नारीणां जीवने महद्-उपयोगि वर्तते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुगन्धनिधौ पाटलप्रसूने कण्टकवत् आधुनिक-शिक्षायां दोषा अपि दृक्गोचरताम् आयान्त्येव । सम्प्रति शिक्षिता नार्यः प्रायः पाश्चात्य-दर्शनेन प्रभाविताः पारवारिक-जीवने न सफलतां प्राप्नुवन्ति । ताः केवलं वेशविन्यासे केशसाधने वा सिद्धहस्ता भवन्ति । भविष्यज्जीवने तु न ता परिवारेण सह सामञ्जस्यं संस्थापयितुं समर्थाः भवन्ति । यदि दैवदुर्विपाकवशाद् आधुनिका पाश्चात्य-प्रभावपूर्णा नारी भारतीय-परम्परा-प्रभाविते परिवारे विवाहानन्तरं गच्छति, तर्हि परिवारे तस्या आगमनेन सहैव समायान्ति सर्वा एव आपत्तयः ।

भारतीय-परम्परायां तु नरेण सह नारी स्वतुलनां नाधिरोहति । रूपहीनं शिक्षाहीनं द्रविणहीनं वा पतिं रूपादिविशिष्टापि नारी परमेश्वरमिव सर्वतो-भावेन सेवन्ती तेनैव च गौरवं धारन्यती दृश्यते प्राचीनेतिहासस्य पृष्ठेषु । पाश्चात्यदेशेषु तु विवाहस्य नास्ति कोऽपि धार्मिक-महिमा, स तु केवलं शारीरिक-वासना-शान्तये विहितोऽनुवन्धविशेष एव । अतएव सोऽनुबन्ध आवश्यकतानुसारं विपरिवर्ततेऽपि । किन्तु भारतीयैर्विहिता वैवाहिकी प्रतिज्ञा विवाहस्य धर्म-प्रधान-कृत्यतां वदति । तत एव च नारी धर्मपत्नीति पदस्य वाच्यताम् उपयाति । भारतियेतिहासे न केवलं जीवनेऽस्मिन्नेव किन्तु भविष्यज्जीवनेऽपि नारी पतिम् अनुगच्छती दृश्यते । यथोक्तं महाकविना श्रीमाघेन––

"सती हि योषित् प्रकृतिश्च निश्चला, पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ।"

अतएव नारीशिक्षायां तादृशस्य परिवर्तनस्य आवश्यकताम् अनुभवन्ति शिक्षाया विशेषज्ञाः, येन शिक्षिता नारी न केवलं शिक्षितैव भवेत्, अपितु तस्या आगामि-जीवनमपि सफलं भवेत् । तस्य सन्ततिरपि भारतीय-परम्परायां निष्ठिता भवेत् । पालयेच्च भारतीयान् आदर्शानिति ।

१३. वर्ण-व्यवस्था

सृष्टेरारभ्य अद्यावधि महती कालकलां यावद् अनेकविधान् भीषणान् आघातान् निःशङ्कं सहमानः स्वीयां सर्वोत्कर्षतां प्रतिपादयन् मनागपि भारतीय-संस्कृति-प्रासादो विजय-वैजयन्ती विद्योतयन् विराजत इति जानन्त्येव विपश्चितः ।

अस्या भारतीय-संस्कृतेः अधारतत्त्वेषु वर्णाश्रम-व्यवस्थाया विद्यते महत्त्वपूर्णं स्थानम् । विश्वस्मिन् विश्वे कस्मिन्नपि देशे नैतादृशी प्राचीनापि चिरनवीना निहत-कार्याभाव-संघर्षादि-दुरवस्था सुव्यवस्था व्यवतिष्ठते । इयं व्यवस्था वैदिक-कालेऽपि सम्यक्तया दृश्यते । यतो वेदे पुरुषसूक्ते भगवतो विराट्पुरुषस्य परब्रह्मणो वा ब्राह्मणस्य मुखरूपेण, क्षत्रियस्य भुजरूपेण, वैश्यस्य उरुरूपेण, शूद्रस्य पादरूपेण च वर्णनं विद्यते ।

वैदिककाल-पर्यालोचनेन प्रतीयते यत् तत्कालीनेयं व्यवस्था कठिना नासीत् किन्तु पुराणकाले तदपेक्षया काठिन्यं संजातमिति मतम् इतिहासविदाम् । भगवता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीकृष्णेन चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाया भगवत्कृतत्वं प्रतिपादयता गुणकर्मणां नियामकता तत्र प्रतिपादिता—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।"

अनया रीत्या चतुर्धा विभक्तः समाजः सहजतया सारल्येन च सरति संसार-सरणी। तत्र परस्पर-संघर्षस्य वर्ग-भेदस्य नीचादि-दृष्टेः वा नास्त्यवकाशः। यथा हि पुरुषदेहे परस्परानुस्यूतानाम् अङ्गानां मध्येऽपि तारतम्यं भवत्येव तथैव समाज-घटकेषु तत्त्वेषु परिकल्पनासौ विहिता मान्यैः मनीषिभिः भगवता सृष्टिकृता च।

ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्नस्य सुमार्गे संचालकस्य ब्राह्मणस्य मुख-स्थानता, रक्षण-तत्परस्य क्षत्रियस्य भुज-स्थानता, समागतस्य आहारस्य पाकपूर्वकं समुचितरीत्या अङ्गेषु विभागकर्तुः वैश्यवर्गस्य उरुस्थानता, परिचर्या-प्रवणस्य सर्वाधारस्य शूद्रस्य च पादस्थानता समुचिता युक्तियुक्ता वैज्ञानिकी च विभाति। भारतीयेतिहासे अनेकेषां पवित्राणां चरित्राणां तानि निदर्शनानि सन्ति यानि व्यवस्थाया अस्या महत्त्वं समुद्घोषयन्ति।

यथा वशिष्ठ-कपिल-कणादाद्याचार्याः सर्वथा लोकोत्तरा ब्राह्मणा यैः स्वीय-ज्ञान-विभवा विभासितं विश्वमखिलम्। श्रीरामचन्द्र-चन्द्रगुप्त-महाराणाप्रतापादयो विद्योतन्ते ते क्षत्रिया ये प्रजा-रक्षण-परायणा स्वाभिधानं सार्थकं तन्वन्ति। भामा-शाह-प्रभृतीनां वैश्यवर्याणां विश्रुतान्येव चरितानि, यैः यावज्जीवं पितृपरम्परया च समुपार्जितस्य द्रव्यस्य विनियोगः प्रजारक्षणार्थं स्वयमेव विहितः। शूद्राणामपि सन्ति तानि विविधानि निदर्शनानि यैः स्वानुरूपं कर्माचरणं विदधद्भिः परम-पुरुषता अधिगता।

अत्रायं हेतुः यद् यथा भूपतिः स्वानुरूपे कर्मणि कर्मचारिणं नियुङ्क्ते। स च यदि स्वीयं कर्म सम्यक्तया सावधानो विधत्ते तर्हि भूपतिः प्रीतमनाः तस्मै तदभीष्टां सिद्धिं प्रदाय तं कृतकृत्यं करोति। एवमेव परमपुरुषकृते विभागेऽस्मिन् स्वानुरूपं कार्यवितानं वितन्वते जनाय श्रेयोदानं प्रदिशति स सृष्टिसंचालकः। यथोक्तं गीतायाम्—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तदभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवः॥

वर्ण-व्यवस्थाया महान् लाभोऽयं यत्प्राकृतिक-सांस्कारिक-दैशिकादि-रूपेण विभक्तोऽपि भारत-भूभागः अनया रीत्या रज्जुनिबद्ध इव एकतानुप्राणितो सर्वत्र एक रूपो भासते। कलाक्षेत्रे व्यापारादि-क्षेत्रेऽपि महती समुन्नतिः संजाता व्यवस्थया अनया इति समुपदिशति सदितिहासः।

यथा अस्मिन् शरीरे न हि कोऽपि अवयवोऽनुपयोगी हेयो वा वर्तते। एवमेव समाजे कोऽपि वर्गो यो नीचोऽनुपयोगी वा नास्ति। किन्तु यथा शरीरे पादस्थितौ सर्वेऽवयवाः स्थातुं सामर्थ्यवन्तो जायन्ते तथैव निम्नवर्गाद् ऋते उच्चवर्णानां स्थितिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असम्भवा । अतो येऽनया दिशा विचारम् अकुर्वन्तो हेयतां नीचतां वा वदन्ति, ते वस्तुतो भारतीय-सामाजिक-व्यवस्थाया विनाशका एव ।

अपि च जातिः "जन्मनैव जायते, कर्मणा वा" द्विविधो मतभेदोऽपि प्रचलति । केचन जन्मना जायते जातिरिति वदन्ति, अपरे च कर्मणा एव जातिर्भवति इति मन्यन्ते । तत्र स्व-स्व-पक्षे च विविधानि प्रमाणानि निदर्शनानि च ददन्ति ते । प्रायो वहुप्रचलिते मतभेदेऽस्मिन् तत्त्वमिदं यज्जन्मना जायमानायामपि जातौ कर्मापेक्षया तारतम्यं सम्भवति । अतः कर्मणो जन्मनश्च समानमेव महत्त्वं प्रतिपादयन् **"जन्मना जायते जातिः कर्मणा च विशिष्यते"** इति सत्सिद्धान्त एव मान्य सिद्धान्तः ।

१४. अतिथिदेवो भव
(अतिथि-सेवा)

सर्वेभ्यो जनेभ्यः शुभानि सदाचरण-योग्यानि कार्याणि विनिर्दिशन्ती भगवती श्रुतिः **"अतिथिदेवो भव"** इति मातापितृवद् आचार्यवच्च अतिथिजनस्य पूज्यतां प्रतिपाद्य अतिथिसेवाया सार्वत्रिकीम् महत्ताम् उपदिशति ।

अत एव प्राचीनकालाद् आरभ्य अद्यावधि सज्जनगृहेषु अतिथिसत्कारः सदातनो दृश्यते । अतर्किता अनाहूताः सहसैव समागताः शिष्टा अतिथि-पद-वाच्या भवन्ति । अतिथीनां सत्कारेण पुण्यावाप्तिः अतिथि-प्रतिनिवर्तनेन च पुण्यहानिः भवतीति व्याहरता मनुना अतिथि-सत्कारस्य सुख-जनकता स्वत एव प्रतिपादिता । यतो मानव-धर्मानुसारं धर्मस्य सुख-निदानता धर्मस्य च दुःख-कारणता शास्त्रेषु समुपदिष्टा वर्तते—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥

गृहस्थानां गृहेषु पञ्चविध-हिंसा-समुत्पन्नानां पापानां विनाशार्थं धर्मशास्त्रे प्रतिदिन-करणीय-कृत्येषु पञ्च-महा-यज्ञेष्वपि निर्दिष्टा अतिथि-सत्कृतिः प्राचीनानां भारतीयानां शिष्टानाम् अतिथि-प्रियत्वञ्च दर्शयति । स्वगृहं समागतेऽतिथौ सर्वदा सर्वथा च सर्वेषामेव सत्कार-भाजनतैव भवति । वयसो महसो वर्णस्य विद्याया वा विचारो वा न तत्र करणीयः । वृद्धेनापि युवकस्य वालस्य वा प्रकृष्टवर्णेनापि स्वापेक्षया हीनवर्णस्य, विदुषापि मूर्खस्य वा स्वगृहम् आगतस्य अतिथेः सत्कारः सर्वथा करणीय एव, नात्र स्वोत्कृष्टताया वा अपकृष्टताया मनागपि विचारो विधीयते । यतो हि स्वगृहागतस्य सर्वस्यापि गुरुतया अतिथेर्गौरवं वर्णितम् गौरव-सम्पन्नस्य जनस्य च देवसदृशस्य च तस्य पूजनीयता सर्वेषामेव कर्तव्यपथे समायात्येव । उक्तं च यथा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः ।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥
उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः ।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वदेवमयो हि सः ॥

एतादृशी धर्मशास्त्रस्य आज्ञां विचार्य लोक-भावनाञ्च विधार्य धर्म-निष्ठापरा अतिथि-सत्कार-तत्परा भवन्ति ।

अतिथिसत्कृतौ न केवलं धर्मस्य आदेश एव कारणताम् एति, किन्तु मानव-भावनापि स्वगृहागतस्य सत्कृतिमेव सम्यक्तया वर्णयति। यतः स्वौपम्येन यदि विचारोऽयं विधीयते, यदज्ञाते देशेऽपरिचिते पत्तने ग्रामे वा यदि वयम् अकस्मादेव स्वां संस्थितिं कुर्महे. तर्हि कीदृशी परिस्थितिर्भवति । कुत्र तिष्ठामः, कुत्र स्वपरिश्रमं परिहरामः, कुत्र विश्रान्तिम् अनुभवामः, कुत्र स्वनिवासं कुर्मः, कुत्र रात्रौ वसामः, कुत्र भोजनं लभामः इत्यादयो विविधा चिन्ता मानसम् उद्वेल्लयन्ति । तदर्थं भ्रमन्त इतस्ततः स्वाश्रयम् अन्वेषयन्तो वयं यदि कमपि सज्जनं पश्यामः तस्य सविधे गच्छामः स च सत्कृतिं विधत्ते तर्हि कीदृशी शान्तिर्भवति । तेन च मनस्तोषेन तस्मै पुण्यावाप्तिः इहैव अनुभूयते । अतएव प्रायः सर्वेष्वेव देशेषु सर्वेष्वेव शिष्टेषु मानवीय-भावना-पूतान्तःकरणेषु जनेषु वर्ततेऽतिथि-सेवन-परम्परा ।

भारतीयस्य प्राचीनेतिवृत्तस्य पर्यालोचनेनेदं प्रतिभाति यत्प्राचीनकाले भारतेऽतिथि-सत्कार-भावनाया महान् प्रचार आसीत् । नेयं परिपाटी मनुष्य-मात्र-गामिन्येव आसीत्; परन्तु पक्षिष्वपि प्रचारोऽस्या । कपोतरक्षार्थं स्व-शरीर-समर्पण-समुत्सुकस्य शिवेरतिथीनां देवानां कृते स्वास्थि-निचयस्य प्रदातुः दधीचेः, चाण्डाल-बुभुक्षा-निवृत्यर्थं बहुदिनात् अनशन-परायणमपि स्वं समुपेक्ष्य भोजन-दान-निरतस्य रन्तिदेवस्य, गृहागतेभ्यः स्वपुत्र-समर्पण-करणार्थं स्वहस्तेनैव करपत्रं चालयतो मयूर-ध्वजस्य च पवित्राणि चरित्राणि भारतेऽतिथि-सत्कार-भावनायाः समुज्ज्वलानि तानि निदर्शन-रत्नानि सन्ति येषां प्रभायाः समक्षेऽन्येषां प्रभा स्वत एव निष्प्रभा भवति ।

पुराणेषु प्रथितः स्वाश्रयीभूतस्य वृक्षस्य अधोभागे समागताय व्याधाय कपोत-कृतः स्वशरीर-त्यागः भारतीयानां मनसि वर्तमानाया अतिथि-सत्कार-भावनाया महत्त्वं बोधयति । भारतीय-भावनानाम् आदर्शीभूते स्व-काय-निवहे कविकुलगुरुणा श्रीकालिदासेन अतिथिसत्कारो बहुधा वर्णितः । रघुवंश-पञ्चम-सर्गे विश्वजिद्-यज्ञ-करणानन्तरं वनमधिवसतो धन-संपर्क-रहितस्य रघोः स्वगृहं समागतस्य कौत्सस्य सत्कारः, कुमारसम्भवे पञ्चमसर्गे तपोनिरताया पार्वत्या अतिथिरूपेण समागतस्य वटुवेषधारिणः शिवस्य समर्चनम् अतिथिसत्कारेण सुखावाप्तेः उदाहरणम् । एवमेव शाकुन्तले दुष्यन्त-विरह-दुर्मनाया शकुन्तलाया अतिथि-पराङ्मुख-गमनात् शापप्राप्तिः अतिथि-सत्कृतेरभावे दुःखावाप्तेः निदर्शनम् अवगन्तव्यम् । अतिथि-सेवा सर्वदैव सुखप्रदा भवति । मनीषिणश्च स्वगृहागतान् शत्रूनपि मानयन्त्येव । यथोक्तम्—

"शात्रवेऽपि निजगेहमागते मानमेव ददते मनीषिणः ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५. समाज-सेवा

मानवोऽयं निसर्गादेव सामाजिकः प्राणीति वृत्तं वित्ति-विषयमेव सर्वेषां विचारकाणाम् । यतः समाजं समपहाय मानवस्य कल्पनापि कर्तुं न पार्यते । संस्कृत- व्याकरण-महानिधिना पाणिनिना "**समुदोरजः पशुषु**" इति सूत्रेण समाज-शब्दं मानव-समूहे समज-शब्दञ्च पशु-निवहे निष्पाद्य मानवस्य सामाजिकता स्वत एव समुद्घोपिता।

यद्यपि संसारेऽस्मिन् मानवोऽपि इतरजन्तुवत् समायाति, महायात्रामार्गे प्रयाणमेकाकी चैव विधत्ते, तदपि यावज्जीवनं स समाजमध्य एव तिष्ठति। जन्म-कालादारभ्य मरणकालपर्यन्तं स समाज एव तिष्ठति। नहि समाजं समुपेक्ष्य मानवो मानवो भवितुमर्हति । यतः समाजे चैव जनो जन्म धत्ते, वर्धते, समुन्नतिं कुरुते, समाजमध्य एव लीयते, तत्रैव च सन्ततिरूपेण तेन स्थीयते च ।

अतएव च वाल्यादारभ्य मरणपर्यन्तं स्वकीयानां सर्वासां चेष्टानाम् आधार-भूतस्य समाजस्य सेवापि स्वत एव कर्तव्यश्रेण्यां समायाति। यथा समाजे घटितान् नियमान् समुपेक्ष्य समाजं तिरस्कृत्य सामाजिक-बन्धनानि च निहत्य चेष्टमानस्य जनस्य कृते स्वाभीष्ट-प्राप्तेस्तु कथैव का? स समाजं विना किमपि कर्तुं सर्वथाऽ-समर्थो हास्य-भाजनताम् एव उपयाति । तथैव समाजस्य समुन्नतिं स्वसमुन्नतिं स्वीकृत्य तदर्थमेव कर्म कुर्वन् जनः सर्वेषाम् एव आदर-पात्रताम् एति ।

अतएव महापुरुषैः सर्वैरेव सर्वथा समाजसेवा तथा कर्त्तव्या यथा सिन्धोः विन्दोरिव समाजात् तेषां पृथक्करणं कदापि न भवेत् । किम्वहुना समाज-सेवयैव जनानां महापुरुषता जायते । समाजरूपस्य भूभागं मण्डयतो जनता-जनार्दनस्य सेवनेन सर्वव्यापी सर्वेश्वरोऽपि पूजितो भवत्येव । विषयेऽस्मिन् सर्वेष्वेव देशेषु विवि-धानि निदर्शनानि दृश्यन्ते ।

कस्यापि समाजस्य समुन्नतिरवनतिः वा तद्घटितैः नियमैरेव जायते । अतएव समये-समये समाजसेवकैः सामाजिकाः कुरीतीः नाशयितुं सुरीतीः स्थापयितुञ्च सर्वतोभावेन प्रयत्ना विधीयन्ते । तदर्थं ते विविधान् क्लेशान् सहन्ते, अपमानं पुष्पमाल्यवत् स्वशिरसि संस्थापयन्तोऽपि न दूयन्ते, स्वीयां स्वार्थसिद्धिं तृणवत् परित्यजन्तोऽपि न शुचमावहन्ति। तेषां वलिदानं निरर्थकं भवति । अतएव समाजः सर्वदा तेषां स्मृतिमातनोति । तैः प्रदर्शितमार्गे च गच्छन् समन्नतिशिखरं संरोहति ।

आँग्लकाले प्रायः सर्वत्र भारते विशेषतो वङ्गदेशे सतीप्रथा प्रचलिता आसीत्। शरीररक्षां कुर्वन्तीं चितासङ्गं परिहरन्तीं विलापं विदधन्तीमपि निर्बलाम् एकाकिनीम् अवलां धार्मिकम्मन्या हृदयहीना भावनाशून्या जना पत्यौ मृते सति वलात् अग्निसात् कुर्वन्ति स्म, वह्निमध्याद् धावन्तीमपि तां पुनः दण्डवलेन चितामध्ये पातयन्तिस्म । तस्याः करुण-क्रन्दनस्य मनागपि प्रभावस्तेषां पाषाणमये हृदये न जायते स्म ।

अस्यामेव अवस्थायां स्वभ्रातृजायां विपन्नां दृष्ट्वा वालस्य राममोहनरायस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदयं शतशो विदीर्णम् । अनन्तरञ्च अधीतविद्येन समाज-सेवा-रसिकेन तेन "सती प्रथा" राज्य-नियम-विरुद्धा कारिता । येन च सहस्रशोऽवलानां प्राणरक्षा संजाता । "ब्रह्मसमाज" इति नामकस्य समाज-सुधारक-संघटनस्यापि संस्थापना तेनैव विहिता ।

स्तनन्धयानां वालिकानां विवाहोऽपि तस्मिन् समये प्रचलित आसीत् । भाग्याद् विनष्टे च पत्यौ संसारदर्शनेन सहैव वैधव्यस्य अनुभवमपि कुर्वन्तिस्म ता वराक्यः । अहो कीदृशीयं विडम्बना याभिर्यस्य दर्शनमपि जीवने कदापि न कृतम्, येन सह विवाहस्य स्मरणमपि न मतौ समायाति, तस्मिन्नेव पतिनामके जीवे मृते तदर्थं समाजार्थं वा यावज्जीवं विलपन्त्यो वाष्पवारिभिः स्वशोकशाखिनं वर्धयन्तः सर्वतोऽपमानविषं पिवन्त्यो वर्तन्ते स्म । तासां विपत्तिं विलोक्य यया वालविवाहस्य निषेधो राज्यात् कारितः, तां समाज-सेवा-विशारदां शारदां को न संस्मरेत् । एवमेव समये-समये समवतीर्णैः महापुरुषैः समाजसेवा विहिता विधीयते विधास्यते च ।

समाजस्य समुन्नत्यर्थं तत्र प्रसरन्त्या अव्यवस्थाया विनाशार्थं सर्वेषामेव स्वतन्त्रतया रक्षार्थं समाजस्य अवयव-भूतानां प्राणिनां परिपोषार्थं सामाजिकानां सन्नियमानां परिपालनं तद्विघटकानां दोषावहानां नियमानां समूलम् उन्मूलनं विधाय सर्वैरेव समाजसेवा करणीया ।

१६. देश-सेवा

विविधानि स्थानानि पावयन्ती लोकसन्तापं हरन्ती जनावलिं मोदयन्ती स्वादर्श-मार्गं दर्शयन्ती यथा भगवती जाह्नवी स्वावगाहितो जनान् कृतार्थयन्ती दृश्यन्ते, तथैव देश-तीर्थे भक्ति-भागीरथी कर्तव्य-भावनां वहन्ती शत्रुगणान् सन्तर्जयन्ती जनान् समाकर्षन्ती प्रत्यक्षमेव पुनाति स्त्रावगाहिनः स्वाभिमानिनो मनीषिणः ।

स्वपूर्वजानां स्वधर्मस्य संस्कृतेः सदाचारस्य जीवनस्य च सत्ता यद्वशाद् विद्यते, तां जननीमिव जन्मदायिनीं लालन-पालनादि-कारिणीं देशभुवं प्रति कस्य विचारकस्य भक्ति-भावना निर्वाधं न प्रसरेत् ।

वैदिककालाद् आरभ्य आधुनिक-काल-पर्यन्तं समस्तेऽपि संसारे समस्तेष्वपि देशेषु अनेके देशभक्ता अजायन्त जायन्ते जनिष्यन्ति च । भारतेऽपि स्वेतिहासाकाशे तादृशानि देशभक्ति-भरितानि तानि नक्षत्राणि देदीप्यन्ते येषां भासा विभाति विश्वमिदम् ।

यवनाक्रमण-काले पुरु-चन्द्रगुप्त-चाणक्यादीनां मोहम्मदीयाक्रमण-वेलायां दाहर-पृथ्वीराज-प्रभृतीनां मुगलकाले च राणासांगा-राणाप्रताप-शिवराजादीनां आँग्लकाले च प्रथम-स्वातन्त्र्य-संग्रामे नानाफड़नवीस-लक्ष्मीबाई-मंगलपाण्डेयादीनां तदनन्तरं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्रशेखर-भगतसिंह-सुभाष-सदृशानां महात्मनां वीरमूर्धन्यानां देशभक्तानां नामानि पवित्राणि चरित्राणि कर्तव्यपूतानि कार्याणि च सश्रद्धं सहर्षं च सदैव संस्मरन्ति। किञ्च यथा देशभक्तानां पावनी परम्परा पावयति देशमिमं तथैव देश-भक्त-रत्नाकरे देशद्रोहि-हालाहलस्य समुत्पत्तिरपि स्वाभाविकी। अत एव चाम्भीक-जयचन्द्र-जाफर-प्रभृतीनां देशद्रोहिणां नामानि सहेलं सतिरस्कारञ्च श्रूयन्त एव। केवल-स्वार्थमात्र-परायणैः पामरैः तैः स्वजननीव भारतभूमिः वैदेशिक-दास्य-शृङ्खलायां प्रतिवद्धा।

सम्प्रति देशोऽयं महति संकटे प्रचलति। अतएव वर्तमानकाले देशभक्तेः महत्या-वश्यकता वर्तते। केचिदर्थ-पिशाचा भारतीयानि गुप्तानि सैनिक-विवरणोपेतानि पत्राण्यपि शत्रुदेशे विक्रीतवन्त इति संचिन्त्य कस्य नाम देशभक्तस्य शिरो लज्जया अवनतिं न भजते।

यथा देश-भक्ति-पवित्रान्तःकरणा जना स्वीयं सर्वस्वमपि समुपेक्ष्य देशोन्नतिं विदधन्ति, तथैव कुत्सिताचरणा देशद्रोहिणः स्वीयं यत्किञ्चिदपि क्षुद्रस्वार्थं साधयितुं देशविनाशकार्ये समुद्यता भवन्ति। स्वातन्त्र्य-युद्धकाले स्वीयं समुज्वलं भविष्यं परिपूर्णं परिवारं सर्वविधं-सुख-साधनोपेतं गृहं विविधान् अनन्यान् सांसारिक-प्रलोभनान् च तृणवद् विगणय्य देश-भक्ति-परायणैः परतन्त्रता-विनाशार्थं विविधा यातना उपभुक्ता कारावास एव निवासः कृतः। किम्बहुना प्राणदण्डमपि माल्यवत् स्वीकृतानां तेषां संख्या नास्ति परिमिता। वहवस्तु तादृशा महापुरुषा येषां नामानि कार्याणि च कालगर्ते पतितानि जनैश्च विस्मृतानि। स्वदेशमपि विहाय यावज्जीवं विदेशे निवसतां तत्रापि देशोद्धार-चेष्टा-तत्पराणां देशभक्तानां संख्या अपि अपरिमिता वर्तते।

सर्वैरेव जनैर्यदि तादृशानि चरित्राणि स्वादर्शतया स्वीकृत्य सततमेव देशोन्नतौ चेष्टा क्रियेत तर्हि न तादृशं किमपि कारणं पश्यामो येन प्राचीनभारतो भारतोऽयं भूयो विश्वगुरुपदं समलङ्कृतं न कुर्यात्। यथा स्वार्थ-निरतोऽपि जनः स्वगृहस्य समुन्नत्यर्थं सर्वथा सर्वदा च चेष्टते तस्य विनाशकं कारणं दूरत एव परिहरति, तथैवास्माकमपि पावनमिदं कर्तव्यं यद् देशस्य समुन्नतिं स्वसमुन्नतिं देशावनतिं च स्वावनतिं संकलय्य सर्वाः चेष्टा विधातव्याः। एवं कृते पुनरेव भारतं भारतं भवेत्।

परतन्त्रता-तमिस्रा-विनाशे स्वातन्त्र्य-सूर्योदये जाते देश-भक्त-हृदय-सरोरुहे विकसिते स्वकर्तव्यपथे सुस्पष्टतया प्रकाशिते सति को नामाधन्यो जनो भवेत् यो तां सरणिं न समनुसरेद् यथा स्वलक्ष्यस्य प्राप्तिरनायासेन यशसा सार्धं सहसैव भवति। अत एव च चाणक्य-मति-गुप्तं चन्द्रगुप्तं विहितौचित्यं वीरविक्रमादित्यं संग्रामसिंहं वीरसंग्रामसिंहं प्रथित-प्रतापं राणाप्रतापं स्वधर्मानुरागिणं वन्दावैरागिणं देशभक्त-शेखरं श्रीचन्द्रशेखरं स्वातन्त्र्य-युद्धसिंहं वीरभगतसिंहं भारत-भू-तिलकं लोक-मान्यतिलकं सर्वथा सुभाषं नेताजीसुभाषं संचिन्त्य एषां पावनानि चरित्राणि च संस्मृत्य कस्य नाम पाषाण-हृदयस्य जनस्य मनो देश-भक्ति-रसेन परिप्लुतं न भवेदिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

स्नेहास्पदेषु विविधेषु पदार्थेषु "जननी" सर्वातिशायिनी इति जानन्त्येव जगति जनाः। "मातृदेवो भव" "नास्ति मातृसमो गुरुः" "माता परं दैवतम्" "माता गुरुतरा भूमेः" इत्यादिकैः प्रामाणिकैः मान्यैः वाक्यैरेव न केवलं जननी-गौरवं सिद्धयति, अपितु सन्तानस्य धारणे जनने भरणे पोषणे लालने पालने च मातुर् गौरवं स्वयं सिद्धं भवति ।

जननीव जनान् जनयन्ती धारयन्ती भरन्ती शस्यादिभिः पोषयन्ती लालयन्ती पालयन्ती च जन्मभूरपि मातृवत् समेषाम् जनानां मान्या वर्तते। या जन्महेतोः जन्मदात्री इति निगद्यते। यां समधिगम्य नान्यां भुवं वाञ्छति जनः। यया सुत-निर्विशेषेण स्नेहरसेन सिक्ता वयम्। यस्यै स्वर्णमय-लङ्कागतोऽपि भगवान् रामः स्पृहयति स्म। यस्या विनिर्गता जना यावज्जीवनं शुचं वहन्ति। यस्या अङ्के जानु-चङ्क्रमणाद् आरभ्य महापथ-पथिकता-पर्यन्तं क्रीड़ा क्रियते ।

यस्यां निर्बाधं स्वत एव प्रेमरसः प्रसरति। तां सकल-मनोरथ-भुवं स्नेह-मङ्गलसुवं जन्मभुवं को नामाधन्यः सतां विनिन्द्यो जनो न वन्देत् ? विवेकशालिनां मनुजानां तु का कथा, किन्तु तिर्यञ्चः पशवः पक्षिणोऽपि प्रत्यक्षं स्वजन्मभुवः स्नेहरसेन परिपूरिताः सायंकाले तां प्रति त्वरितं धावमाना दत्तसम्माना प्रत्यहं दृश्यन्त एव। अतएव मातृ-भूप्रेम-परिप्लुत-मानसैः बहुभिः देशभक्तैः मातृभूमेः चरणनलिने स्वीय-शिरांसि समर्प्य तस्याः सेवा कृता ।

भारतभूमेः परतन्त्रता-समये तस्याः पारतन्त्र्य-शृंखला-नाशाय भगतसिंह-चन्द्रशेखर-प्रभृतिभिः अनेकैः वीरपुङ्गवैः अनेकानि वीरतामयानि कार्याणि विधाय मातृ-भू-चरणेषु स्वीयं बलिदानं विहितम्। एवमेव लोकमान्य-बालगङ्गाधरतिलक-मदन-मोहनमालवीय-मोतीलालनेहरू प्रभृतिभिः विज्ञवरैः स्वीयं सर्वमेव लौकिकसुखं, समुन्नतिं च संत्यज्य देशसेवा विहितेति विदन्त्येव न केवलं भारतीया एव, परन्तु सर्वमेव विश्वं जानात्येतत्। क्रान्तिकारिषु वीरेषु 'नेताजीति' पदवाच्यं वीरं सुभाषं को न जानाति, येन विदेशे सेना-संघटनं विधाय भारतभूमेः समुद्धारार्थं सर्वांशेन चेष्टा कृता। एषाम् अनेकेषाम् अन्येषाञ्च पावनानि चरितानि देशभक्तेः रसमयीं सरितां नीरस-हृदयेष्वपि प्रवाहयन्ति ।

न केवलं गौराङ्गानां राजकाले किन्तु तत्पूर्वमपि यवन-राज्य-काले विविधैः मातृभूमि-प्रणय-परायणैः जनैः दास्य-निवारणार्थं प्राणपणेनापि स्व-सर्वस्व-समर्पण-पुरस्सरं कष्टनिवहं समुपेक्ष्य विविधानि कार्याणि कृतानि। अतएवैषां राणाप्रताप-शिवाजी-प्रभृतीनां वीरश्रेष्ठानां नातानि भारतीय-जनानां जिह्वाग्रे नृत्यं विदधन्तो विलोक्यन्ते। एषां सर्वेषां मनःसु स्वीयं स्वार्थं नासीत्, परन्तु सर्वदा चेमे मातृभूमेः सुखं स्वीयसुखं मातृदुःखञ्च स्वीयं दुःखममन्यत। अतएव च एभिः स्वीयं सर्वमेव सुखं तृणवत् परित्यज्य मातृभूमेः सेवैव यावज्जीवं विहिता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वस्तुतोऽपि मातृभूमेर्महिमा वर्तत एवैतादृशोऽद्वितीयो येन समाकृष्टो जनो विस्मरति स्वान् पुत्रकलत्रादीन् धनविभवादीन् सर्वमेव लौकिक-सुखसाधनञ्च। यतो हि कृतघ्नानपि कृतार्थयन्ती, अपराधिनोऽपि रक्षन्ती पापिनोऽपि पोषयन्ती, स्वनाशिनोऽपि भोजयन्ती जन्मभूमिः न स्वसदृशं किमपि निदर्शनं विभर्त्तीति विस्मयास्पद् वस्तु। न केवलं जीवनकालेऽपि तु मरणानन्तरमपि जन्मभुव एव निरातङ्के पुनीताङ्के पर्यङ्क इव विश्रान्तिम् अनुभवति मनुजः।

अतएव च भगवती श्रुतिरपि **"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** इति सुस्पष्टमेव जन्मभूमेः मान्यताम् उपदिशति। पुराणसाहित्ये मातृभूमेः माहात्म्य-वोधकाः कथा-प्रसङ्गा वहुधा दृष्टिपथम् आयान्ति।

भारतीयेतिहासस्य सर्वस्वे महाभारतेऽपि निरावाधं वर्णितं जन्मभूमेः महत्त्वं मोदयति मनांसि। युधिष्ठिर-यक्ष-सवाद-प्रसङ्गे "कः मोदते" इति प्रश्नस्योत्तरे विविधान् कष्टान् धारयन् यथाकथंचिदुदरं पूरयन् स्वगेहे निवसन्नेव जनः सुखमेधत इति युधिष्ठिर-समुत्तरं स्वमातृ-भू-निवासमेव सुखस्य साधनं समुपदिशति।

भारतीय-जन-हृदय-कैरव-कुलचन्द्रेण सर्वथा निस्तन्द्रेण भगवता रामचन्द्रेण वाल्मीकरामायणे रावणवधानन्तरं सर्वजनाभीष्टस्य स्वर्गस्याप्यपेक्षया प्रकृष्टतया प्रतिपादितं जन्मभूमेर्माहात्म्यम् अद्यावधि मोदयति मनांसि मनस्विनाम्—

"अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वार्गादपि गरीयसी॥"

१८. सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्
(संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति)

विविध-वैचित्र्य-परम्परा-वाहिनि संसारेऽस्मिन् समेषामेव एव समीहा भवति यद्वयं कथमपि समुन्नतिं संश्रयेम। समुन्नति-शिखरिणं समारोढुं संसृतेषु सरणि-निवहेषु सत्सङ्गतिरेव सर्वप्राधान्यम् विद्यते। सतां संगतिरिति विग्रहधारी शब्दोऽयं स्वत एव स्वीयं श्रेष्ठत्वं प्रतिपादयति। मानवो यदृशीं सङ्गतिं कुरुते तादृश एव जायत इति जानन्त्येव जनाः। अनुकरण-शीलता मानवस्य सहजो धर्मः, अतः एव स स्व-समीप-वर्त्तिनाम् अनुकरणं वाल्यादेव कुरुते, तत एव च समुन्नतिम् अवनतिं गुणशालित्वं वा दुर्गुणत्वं संप्राप्नोति। तदाधारेणैव च समाजे तस्य प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा यशोऽपयशो वा जायते।

दस्यु-कर्म-प्रवृत्तेन परधनापहारिणा पापनिरतेन वाल्मीकिना यद् दिव्यम् आर्षं चक्षुः प्रतिलभ्य रामायणम् आदिकाव्यं निर्माय आदिकवि-पदवी प्राप्ता, दासीपुत्रेण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनाथेन इतस्ततः परिभ्रमता नारदेन यद् देवर्षिता समवाप्ता, मातापितृ-हीनेन वाल्ये लालन-पालन-विरहितेन कबीरदासेन यन्महत्ता अधिगता, पितृ-विहीनेन लौकिक-व्यवहार-दिशा-दीनेन चन्द्रगुप्तेनापि महामनीषिणः चाणक्यस्य सङ्गाद् यद् साम्राज्य-प्रभुता अधिगता, स सर्व एव सत्सङ्गतेरेव प्रभावो भासते। एतादृशानि विविधानि समुदाहरणानि सर्वेष्वेव देशेषु सर्वेष्वेव कालेषु सर्वेष्वेव इतिहासेषु दृश्यन्ते।

न केवलं चेतनेष्वेव सत्सङ्गतेः प्रभावः परिलक्ष्यते, किन्तु अचेतना अपि निम्बा-दयो वृक्षाः चन्दन-वृक्षस्य सङ्गेन चन्दनवत् सुगन्धं धारयन्तः स्वीयं श्रीखण्ड-खण्ड तामेव दर्शयन्तः सत्सङ्गतेः महत्त्वं व्यञ्जयन्ति। एतामेव सत्सङ्गजां समुन्नतिं निभाल्य नीति-कारेण भर्तृहरिणा सृष्टेयं सूक्तिः—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिता हि तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कङ्कोल-निम्ब-कुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥

सत्सङ्गेन समुन्नतिः सर्वथा सर्वदा च जायत एवेति वर्णयतो न केवलं जीवनकाले, अपितु मरणेऽपि सत्सङ्ग-माहात्म्यं प्रकटयतः, करुण-रसापगां प्रवाहयतो भवभूतेः उत्तररामचरिते श्रीरामचन्द्र-शास्त्रधारा-भागीरथ्यां स्नानं विधाय स्वर्गसुखानुभवाय गच्छतः शम्बूकमुखेनोद्गरिता सूक्तिरियं संरञ्जयत्येव सहृदयहृदयानि—

"सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति"

अचेतनोऽपि पाषाणो महापुरुषैः महात्मभिः प्रतिष्ठापितः पूजितः सन् देवत्वं संप्राप्य सर्व-जन-सभाजनीयतां प्राप्नोति। यथोक्तम्—

"अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः"

सर्वजन-समभिलषणीये शातकुम्भे संस्थितं काचखडं रत्नताम् अवाप्नोति महनीयमपि रत्नं निकृष्ट-धातोः पित्तलस्य संगेन काचतामेव अवाप्नोति। लौहन्तु एकाविधं भवति, किन्तु तदेव पूजागृहे संस्थितं सर्व-जन-नमनीयतां भजते, तदेव च बधिक-हस्तगतं बलहीनान् दीनान् पशून् मारयद् धिक्कृति-पात्रताम् एति।

एकमेव वस्त्रं राष्ट्र-ध्वज-रूपेण यदा प्रतिष्ठतं भवति तदा तत्सम्मान-रक्षार्थं शतशः सैनिकाः स्वानि प्रियतमानि प्राणानि तृणवत् परित्यजन्ति। दोष-दरीयांसो गुण-गरीयांसो महीयांसो विद्वांसोऽपि स्तुति-कुसुमाञ्जलिं तच्चरणे समर्पयन्ति। सम्मान-भाजिनोऽपि शासकाधिकारिणः तस्य समादरे स्वीयानि शिरांसि नमयन्ति। तदेव वस्त्रखण्डं शवस्य सङ्गात् सर्वजन-परिहरणीयताम् एति। एतदपि सत्सङ्गजस्य सत्कारस्य दुःसङ्गजस्य तिरस्कारस्य च उदाहरणमेव। ज्ञान-सत्य-मान-यशः-प्रभृतीनां गुण-गणानां कुलवसतेः सत्सङ्गतेः यथार्थमेव स्तवनं कृतं नीतिकृता—

"जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं
सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं च प्रथित-समुन्नतेः सत्सङ्गतेः प्रभावस्य सविधे चिन्तामणेः काचता, सुरधेनोः पशुता, कल्पद्रुमस्य च वृक्षता स्वत एव समुदेति। यथोक्तम्—

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते सा कामधुक् कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते सतान्तु संगः सकलं प्रसूते॥

"संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति" इति वदता केनापि विदुषा प्रतिपाद्यते सतां सङ्गस्य गरिमा दुर्जनसङ्गस्य च लघिमेति।

१९. परोपकाराय सतां विभूतयः

नानाविध-चरित्र-चित्रिते विचित्रेऽस्मिन् जगतीतले जनानां मध्ये दुर्जन-सज्जन-रूपेण यो विभागो भासते, तेषु विभाजकगुणेषु यो गुणो मूर्धन्यताम् उद्वहति, स एव परोपकार-शब्देन निगद्यते। स्वोदरं पूरयन्तः स्वकुटुम्बं पालयन्तः स्वीयाम् उन्नतिं कुर्वन्तश्च सन्ति सर्वत्र सर्वे, किन्तु वसुधानिवासिनः सर्वानेव जनान् स्वकुटुम्बिनो मत्वा तेषां समुन्नत्यर्थं चेष्टन्तः विरला एव महापुरुषाः। न तेषां मनसि जातिकृतो देशकृतोऽन्यभेदकृतो वा कश्चिदपि विभागो वर्तते, किन्तु ते तु सर्वानेव स्वानेव मन्यन्ते। यथोक्तम्—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वस्तुतस्तु जनुषा वपुषा वा न कस्यचन महापुरुषता भवति, किन्तु परोपकार-प्रभृतयो गुणनिधयो यत्र समुल्लसन्ति, तत्रैव महापुरुष-पद-वाच्यता विराजते। परोपकाररूपे निकषे यदि मनुज-सुवर्णानां परीक्षा विधीयते तर्हि तत्र सर्वथा शुद्धानां सतां विहगवृन्देषु हंसानामिव संख्या न्यूनैव विद्यते। यतः मनसा वचसा शरीरेण च समेषामेव एषां जनानां कल्याणं कुर्वतां परगुणानां गौरवं दर्शयतां महापुरुषाणां सज्जनानां दुर्लभता नीतिकारेण महाविदुषा श्रीभर्तृहरिणा वर्णितेत्थम्—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

जगति मनुष्याणां त्रिधा श्रेण्यः समुल्लसन्ति। तत्र सर्वप्रथमास्तु ते, ये स्वार्थ-हानिम् अपि विधाय परोपकृतये चेष्टन्ते, द्वितीयाश्च ते, ये स्वार्थहानिं विना परोपकृतिं कुर्वन्ति, इतरे तु ते, ये परार्थहानिं कृत्वा स्वार्थसिद्धिं कुर्वन्ति। नीतिकारेण क्रमशः प्रथमकोटीनाम् उत्तमता द्वितीयकोटीनां मध्यमता निरूप्य तृतीय-कोटि-पतितानां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानुषरूपेण राक्षसता प्रोक्ता, परन्तु ये निरर्थकमेव परार्थं नाशयन्ति ते के सन्तीति विषये स्वबुद्धेः अगम्यतैव प्रोक्ता––

एके सत्पुरुषाः परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परिहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥

येन भगवज्ज्ञानावतारेण महाभारत-सदृशस्य ग्रन्थस्य रचना कृता, येन च अष्टादश-पुराणानां निर्मितिं कृत्वा स्वस्य अद्वितीयता प्रदर्शिता, तेनैव भगवता कृष्ण-द्वैपायनेन सर्वशास्त्राणां सारसारोऽयमेव निरूपितो यत्पापजनकेषु कार्येषु परपीडनं पुण्य-जनकेषु च कर्मसु परोपकार एव सर्वश्रेष्ठताम् उद्वहति । यथोक्तम्––

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

परोपकारार्थं स्वीयं सर्वस्वं तृणवत् संत्यजन्ति परोपकार-रस-रसिका महात्मानः सन्तः । सर्वेषामेव महापुरुषाणां पवित्राणि चरित्राणि इमामेव शिक्षां दिशन्ति, यत्सर्वेषु कार्येषु गुणग्रामेषु वा परोपकारस्य समक्षं मरीचिमालिनः समक्षं दीपकप्रभेव न कोऽपि विराजते, सर्वे एव निष्प्रभा भवन्ति, वर्णयन्ति च परोपकारस्य महिमानं तदपेक्षया च च स्वस्य लघिमानम् ।

परोपकारार्थमेवं परतन्त्रता-निगडितां स्वमातृभूमिं स्वतन्त्रतां विधातुं लोकमान्य-बालगङ्गाधर-प्रभृतिभिः मान्यैः नेतृधुरीणैः स्वं परिवारादिकं परित्यज्य मातृभूसेवा विहिता । परोपकारविषये नदीनां मेघानां वृक्षानाञ्च निदर्शनानि कविभिः मनोहारि-रीत्या वर्णितानि––

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति शस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

क्षुद्रा जनास्तु स्वल्पस्यापि धनादेः संप्राप्तौ विषविन्दु-मात्रसम्पत्त्या वृश्चिक-पुच्छवत् स्वं शिरोऽभिमानेन समुन्नतं कृत्वा कमपि किमपि न गणयन्ति; किन्तु सज्जनास्तु परोपकारार्थमेव स्वीयां सम्पत्तिं वहन्तो विनयेन स्वं शिरोऽवनमयन्ति । यथोक्तम्––

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः

(नास्त्युद्यमसमो बन्धुः)

गणनीयेषु गुणाग्रामेषु बन्धुवन्मनुष्यस्य समुन्नतिसाधकः कर्तव्यमार्गे सहायको गुण उद्यम एव वर्तते। उद्यमस्यैव साहाय्येन परिश्रमं कुर्वन् जनः समाप्नोति सिद्धिम्। प्रायः संसारेऽस्मिन् द्विविधा जना दृश्यन्ते प्रथमास्ते ये सर्वं भाग्येनैव भवति इति वदन्तः भाग्यमेव सर्वस्वं मन्यन्ते। तेषामयं सिद्धान्तो यदयं जीवो भाग्यपराधीनः तदनुसारमेव सिद्धिमसिद्धिं वा लभते "दैवाधीनं जगत्सर्वम्" इति। "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्" इत्यादीनि वाक्यानि पुरस्कृत्य विविधानि उदाहरणानि च समुपस्थापयन्ति। द्वितीयास्ते ये कर्तव्यमेव श्रेष्ठं मत्वा उद्योगं कुर्वन्ति। तेषामयं सिद्धान्तो यत्तु पूर्वोपात्त-कर्मातिरिक्तं किमपि भाग्याख्यं वस्तु नास्ति, भवतु वा किमपि दैवं भाग्यं वा, परन्तु तस्मिन् किं निहितमस्ति कर्मणैव प्रतीयते।

"पूर्वजन्मकृतं कर्म दैवमित्यभिधीयते।
तस्मात् पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति॥"

इत्यादीनि विशिष्टानि शिष्टोपात्तनि वाक्यानि अस्यैव सिद्धान्तस्य श्रेष्ठताम् उपदिशन्ति। न केवलं योग्य एव अपितु अयोग्योऽपि जनो यदर्थमभिलक्ष्य परिश्रमं विदधाति, स निश्चितमेव तदर्थं प्राप्नोतीति कर्मवाद-प्राधान्यस्य प्रदर्शको सिद्धान्तः केनापि कविना साहित्य-सरणिम् अनुसरता इत्थं सोदाहरणोपन्यासं वर्णितः—

"उद्यमी लभते सिद्धिमयोग्योऽपि सुनिश्चितम्।
अनुरूर्गगनस्यान्तं प्रयात्येव दिने दिने॥"

दैवाधीनमेव सर्वं विधेर्विधानं चक्रवत् स्वयमेव परिवर्तते, नहि कापि आवश्यकता कस्यापि उद्यमस्य। यद्भावि तत्स्वयमेव भविष्यति। न हि तत् किमपि सहाय्यमपेक्षते इत्यादि निश्चित्य कर्म-परित्याग-परान् जनान् "सदैव विधेयं कर्म" इति प्रेरणाप्रदं समुपदेशं "चरैवेति चरैवेति" इति रूपेण प्रददाति भगवती श्रुतिः।

अर्जुनव्यपदेशेन प्राकट्यं नीता मोहात्मक-बन्धनैः अभीता गुणगरिम्णा उपनिषत्समकक्षतया प्रगीता गोविन्द-मुखारविन्दाद् गीता भगवद्गीतापि कर्मण एव सिद्धिप्रदतां प्रदर्श्य सततमेव कर्म कर्तव्यमिति समुपदिशन्ती उद्योगस्यैव प्राधान्यम् प्रतिपादयति।

"कर्मणैव हि संसिद्धिमस्थिता जनकादयः
कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।"

आदिकविना श्रीवाल्मीकिना समुद्रपार-गमनविषये वर्णितं यत् कल्लोलिनीपतेः शासनाय रघुचन्द्रस्य श्रीरामचन्द्रस्य धनुर्धारणं विप्रवेषेण समुद्रस्य समागमनं सेतुबन्धप्रकारस्य प्रदर्शनञ्च दैवस्य धिक्करणं समुद्योगस्य प्रशंसनमेव प्रतिभाति। उद्योगस्य बलेनैव भारतीयैः वीरैः समधिगता स्वतन्त्रता, तेनैव च सोवियतदेशेन समवाप्ता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वातिशायिनी समृद्धिः, तेनैव च अमेरिकादेशेन सा समुन्नतिः संप्राप्ता यस्याः समक्षे नान्ये देशाः समावहन्ति साम्यलेशमपि ।

उद्योगबलेनैव वसुधा-वासिभिः मानवैः विधीयते च शशिनः शिरसि संचारः । उद्योगबलेनैव सहस्रशो दरिद्रतोपहताः कोटाधिपतितां समाश्रयन्ते । बुद्धि-मन्दता-दोष-ग्रस्तेन गुरुणा तिरस्कृतेन पाणिनिना स्वोद्योगस्य बलेनैव व्याकरणाब्धिता समवाप्ता । भवतु वा दैववशात् कस्याप्यर्थस्य समुपलब्धिः, परन्तु तस्योपयोगार्थन्तु वर्तत एव पुरुषार्थस्य अपेक्षा ।

न केवलं मनुष्येष्वेव परन्तु तदितरेष्वपि प्राणिषु वर्तत एव समुद्योगस्यैव प्राधान्यम् । यतः सर्वाधिक-शक्ति-सम्पन्नोऽपि मृगाधिपो विना समुद्योगं स्वोदरस्य पूर्तिमपि कर्त्तुं न शक्नोति । उद्योग-समापन्नो जनो सर्वाभीष्टाया श्रियो वास-भूमिर् भवति, समुद्यमहीनश्च दरिद्रतापन्न एव भवतीति वर्णितं वृत्तं केनापि कविना—

उद्योगिनः करालम्बं करोति कमलालया ।
अनुद्योगिकरालम्बं करोति कमलाग्रजा ॥
निपानमिव मण्डूकाः सरःपूर्णमिवाण्डजाः ।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्वसम्पदः ॥

अन्ते च दैवाधीनमेव सर्वं नास्त्यतः कर्मण आवश्यकतेति विपक्षस्य खण्डने स्वसिद्धि-समवाप्तये सरणीया समुद्यमसृतिरिति पक्षस्य मण्डने प्रवृत्ता साहित्यिक-समाजे प्रसिद्धा सूक्तिः समुपन्यस्यते—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ॥

२१. विधिरहो बलवानिति मे मतिः
(भाग्यं फलति सर्वत्र)

सन्ति जगतीतलेऽस्मिन् द्विविधा जनाः, केचिद् भाग्यमेव प्रमाणयन्ति, केचिच्च पुनः पुरुषार्थ-प्राबल्यमेव समुपघोषयन्ति । पुरुषार्थ-भाग्ययोर्मध्ये को बलवानिति विवादः पुरातनः परिलक्ष्यते ।

भाग्यवादिनाम् अयं मन्तव्यो यदनेक-विधि-साहाय्य-सम्पन्नोऽपि गुणगणान्वितोऽपि मूर्धन्यो मानवो भाग्यस्य प्रातिकूल्ये विफलतामेव प्राप्नोति । सति च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाग्य-साहाय्ये साधारणोऽपि साधन-विरहितोऽपि जनः असाधारणीं सफलताम् अवाप्नोति। एतद्विषयकं प्रसिद्धमेव पद्यमिदम्––

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ।।

महामतेः चाणक्यस्य मुद्राराक्षसोद्धृतं "दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति" इति वाक्यं प्रमाणयन्तः पुरुषार्थ-वादिनो वदन्ति यत्कार्यभीरूणाम् आलस्य-ग्रस्तानां भाग्यमिति। नहि पुरुषार्थं विना भाग्येन किमपि भवितुमर्हति। एतद्विषयकं पद्यमिदं प्रसिद्धमेव––

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।।

किन्तु विचारे विहिते तत्त्वमिमं संयाति सान्मुख्यं या समये-समये भाग्यस्य पुरुषार्थस्य वा प्राबल्यं प्रतीयते। यथा हि भाग्य-प्रतिकूलतायां कार्यसिद्धिर् असम्भवा तथैव पुरुषार्थं विनापि कार्यसिद्धिरसम्भवैव ।

अतो जीवनयात्रायां रथे चक्रयुगमस्येव उभयोरेव वर्तते समं प्राधान्यम् । द्वयोरेव ग्राह्यत्वं परमावश्यकमिति प्रतिपादनपरेण केनापि कविवरेण साहित्ये शब्दार्थयोरिव द्वयोरनयोः उपादेयता प्रतिपादितेत्थम्––

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ।।

अपरे विद्वांसो वदन्ति यत्पूर्वजन्मोपार्जितं कर्मफलमेव प्रारब्धमिति प्रतिपाद्यते तच्च शब्दान्तरैः पुरुपार्थमेव पुष्णाति ।

यद्यपि सन्त्यत्र बहूनि मतानि, तथापि गार्हस्थ्ये सत्यपि स्त्रीपुंसयोः साम्ये यथा पुरुषस्य प्राधान्यं दृश्यते, यथा वा सत्यपि शरीरे दक्षिण-वामाङ्गयोः साम्ये दक्षिणाङ्गस्य श्रेष्ठता दृश्यते, तथैव भाग्य-पुरुषार्थयोः मध्ये भाग्यस्य प्राबल्यं सिद्धमेव। पश्यन्तु भवन्तो यत्समानज्ञानवतां विद्यार्थिनां मध्ये केचित् कर्तव्य-क्षेत्रे सत्पदमुपलभ्य कार्यं कुर्वाणा अर्थस्य यशसोऽधिकारस्य च भागिनो भवन्ति ।

अपरे च तदपेक्षया समधिकविद्यावन्तोऽपि न तादृशीं पदाधिकृतिं संप्राप्तुं समर्था भवन्ति, न वा तेषां कृते यशसोऽर्थस्य सुखस्य वा तादृशी प्राप्तिः जायते। विपणि-क्षेत्रे समानमेव वस्तु समानमूल्येन समानया रीत्या विक्रेतारो बहवो दृश्यन्ते किन्तु केषांचित् सविधे संदृश्यते सदैव जनसम्मर्दः, अपरे च मक्षिका-हननं विकुर्वाणाः समयम् अतिवाहयन्ति ।

भाग्यादृते कोऽन्न हेतुरुभयोः वैलक्षण्यायेति । स्वातन्त्र्य-युद्धे परम-पुरुषार्थ-परैः बहुभिः नेतृभिः न मनागपि राज्यसुखम् अवाप्तम्, अपरैश्च तदपेक्षया स्वल्पपुरुषार्थैः यावज्जीवं सुखमनुभूतम् । विचारयन्तु विज्ञा यन्महामतिः साक्षाद्भगवतोऽवतारत्वेन परिगणितो मर्यादापुरुषोत्तमो रामोऽपि पञ्चवटीक्षेत्रे समागतं हरिणं विलोक्य नैसर्गिकं नियममिमं विसस्मार, यत्कथंकारं सुवर्णमय-शरीरस्य कुतोऽप्यदृष्टपूर्वस्य अश्रुतस्य वा हरिणस्य समुत्पत्तिरत्र भवितुमर्हति ।

"असम्भवं हेममृगस्य जन्म" ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदनुगमनेन च प्राणप्रियाया वनवास-दुःख-भागिन्याः सीताया वियोगम् अवाप। एतत्सर्वं भाग्यचेष्टितम् एव । साक्षाद्भगवतः श्रीकृष्णस्य पितृस्वसा महाराजस्य पाण्डोः सहधर्मिणी कुन्ती सत्यपरेण युधिष्ठिरेण महाबलेन भीमेन शूरशिरोमणिना धनञ्जयेन परमपण्डिताभ्यां नकुल-सहदेवाभ्यां च सह वने कालम् अतिवाहितवतीति प्रसिद्धे पुरातने वृत्ते प्रतीयते भाग्यप्राबल्यम् । अतएव स्वजीवनानुभूतेन भाग्यप्राबल्येन प्रभाविता सा स्वपौत्रवधूम् अन्तर्वत्नीम् उत्तरां प्रति यथार्थामिव आशिषमिमां व्याजहार—

भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा वीरं मा च पण्डितम् ।

अपि च वधार्थं पितृव्येन घातकैः सह वनं प्रेषितो बालः सकल-साधन-हीनः पितृविहीनो दीनो भोजो यन्महद् राज्यसुखम् अनुभूतवान्, यच्च कीर्तिविस्तारं विहितवान्, तत्र भाग्यमेव निदानम् ।

समये-समये समाचारपत्रेषु वायुयान-वाष्पयानादीनां दुर्घटनानां वृत्तानि प्रकाशितानि भवन्ति, तेषु पठन्ति सर्वे यज्जातेऽपि सुमहज्जन-विनाशे कश्चिज्जनः सर्वेषु सहयात्रिषु काल-कवलितेष्वपि सत्सु क्षतेतरोऽवशिष्यते । अस्या अपि समस्यायाः समाधानं विधीयते विधिनैव । मनुष्याधीनं कर्मफलन्तु भाग्यायत्तमिति भावनया कर्मरतो जनो वैफल्ये न विदह्यते दुःखदहने, यतो हि सन्तोषसुधा शमयति तत् स्वान्तं नितान्तम् । अतएव सोदाहरणेयं सूक्तिः शोभते—

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं, गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां, विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥

२२. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य

अस्मिन् शक्तिसारे संसारे शक्तिनामकापरपर्यायस्य बलस्य द्वेधा विभागो भवितुं शक्यते । तत्र शरीर-प्राधान्येन शारीरिकबलं बुद्धि-प्राधान्येन च बुद्धिबलमिति द्विविधं नामकरणं दृश्यते। भेदयोरुभयोर्मध्ये शारीरिकबलापेक्षया बुद्धिबलस्यैव प्राधानता प्रत्यक्षे प्रथते । शारीरिक-बल-सम्पन्ना क्षणेनैव मनुष्यं महायात्रा-पथिकं विधातुं सक्षमा सिंहादयो महावीर्य-सम्पन्नाः पशवः बुद्धिबल-गरिम्णा सम्पन्नस्य कृशकायस्य मनुष्यस्य संकेतमात्रेणैव क्रीड़ां कुर्वन्तो स्वक्रीड़ा-कौशलेन दर्शक-मनांसि रञ्जयन्तो दृश्यन्त एव । निशित-खड्गादि-शस्त्र-प्रहारैरपि अभेद्येन त्वचा परिमण्डिता महाबलोद्धताः खड्गिनोऽपि मनुष्यनिर्देशम् अनुसरन्तः शारीरिकबलस्य बुद्धिबलापेक्षया न्यूनतामेव दर्शयन्ति ।

प्रायः पशुषु शारीरिकबलस्य सत्ता मनुष्यापेक्षया समधिकमात्रायां वर्तते, परन्तु तदपेक्षया अतिन्यूनमात्रायां शारीरिक-बल-सम्पन्ना मनुष्याः तेषु शासनं कुर्वन्तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वौद्धिकवलस्य महत्तां प्रकटयन्ति । कार्येष्वपि सर्वविधेषु वयं पश्यामो यच्छारीरक-वलोपजीवी साधारणः श्रमिको वौद्धिक-वलोपजीविनो जनात् अधिकमात्रायां कार्यं कुर्वन् स्वेदविन्दुभिः संस्नातोऽपि न्यूनेन वेतनेन सार्धं न्यूनामेव सामाजिक-प्रतिष्ठां संलभते । राजकीय-कार्येष्वपि कर्मचारिणां विविधासु विभक्तासु श्रेणीसु प्रायः चतुर्थी श्रेणी द्वारपालादीनां श्रमोपजीविनामेव भवति ।

वलापेक्षया वुद्धेः महत्तायां हेतुभूतं तत्त्वमिदं वर्तते यदितरजीवा जन्मत एव वलेन संभृता भवन्ति, किन्तु तद् वर्धयितुं न क्षमन्ते । मनुष्यस्तु गुणादस्मादेव जन्मतो न्यूनशक्ति-सम्पन्नोऽपि स्वतो वुद्धिवलेन सर्वविधं वलं वर्धयते । मानुषः शिशुः प्रायः द्विवर्षदेशीयो गमने समर्थो भवति, परन्तु पशुशिशुस्तु जन्मदिवस एव चलति, द्वि-त्रि-दिनानन्तरञ्च इतस्ततः कूर्दनम् उच्छलनं वेगतो धावनञ्च विधत्ते, किन्तु मनुष्यस्य यथा-यथा वुद्धिः वर्धते तथा-तथा स सर्वविधां शक्तिम् उत्कर्षयन् समुन्नतिं प्राप्नोति । पशुस्तु जन्मन आरभ्यैव जले तरति, स स्वाभाविकरीत्यैव जलतरणं कुरुते । मनुष्यस्तु जन्मतो न जानाति जलतरणविद्यां, किन्तु शिक्षया तां समधिगत्य विविध-विधानैः जलतरणं कुर्वन् स्वीयं वैशिष्ट्यं व्यनक्ति ।

पशूनां साहाय्येन विविधानि कार्याणि सम्पादयन् तेषामेव श्रमेण स्वीयाम् उन्नतिं कुर्वन् तेभ्योऽन्न-पानादिकं दिशन् स्वञ्च श्रमात् परिहरन् मनुजो वुद्धिवलस्य गौरवं गायन् दृश्यते—

वध्नन्ति सिंहान् रमयन्ति सर्पान् दन्तावलान्निर्मदयन्ति कामम् ।
श्रयन्ति साम्राज्यपदं प्रभुत्वं वुद्धिप्रभावैकसमेधितार्थाः ।।

श्रमेण च शरीरं कष्टमेव अनुभवति अस्मादेव हेतोः समेषामेव श्रमापहरणाय स्वाभाविकी समभिलाषा समुदेति, तदर्थमेव मनुष्यैः "**आवश्यकताविष्काराणां जननी भवति**" इति न्यायमनुसृत्य विविधानां साधनानाम् आविष्कारो विहितो विधीयते विधास्यते च । पुरा गमने अश्वादीनामेव साधनता आसीत्, तदनन्तरञ्च शकटादीनाम् आविष्कृतिः जाता ।

शताब्दीयं विषयेऽस्मिन् महता महत्त्वेन सभाजितो वर्तते, यतोऽस्यां विविधा आविष्कारा एतादृशाः सञ्जाता, यान् दृष्ट्वा स्वत एव आश्चर्यानुभूतिः सञ्जयाते । वाष्पयान-शकटस्य वायुयानस्य मोटरादि-यन्त्राणां च आविष्कारोऽपि अस्यामेव शताब्द्यां जातः । स्वतन्त्रतानन्तरं भारतेऽपि सर्वत्र यन्त्राणां विस्तारो दृश्यते । रूसामेरिकादीनां देशानां या सर्वातिशायिनी प्रतिष्ठा वर्तते, तत्रापि यन्त्राविष्करण-मेव निदानम् ।

किम्वहुना कथासु गल्पेषु वा यस्य चर्चा विद्यते, तमेव चन्द्रं समधिगत्य चङ्क्रमणं विधाय तद् धूलिना सह सकुशलं ततः परावर्त्य मनुष्यः स्वस्याः वुद्धेः चरमोत्कर्षस्य पराकाष्ठाम् एव समुद्घोषयति । मन्ये तां काल-कलां प्रतीक्षते मनुजः, यस्याम् एकपत्तनाद् अपरपत्तनम् इव ग्रहगणेषु चन्द्रलोकेन सह यात्रां करिष्यति स ।

पूर्वं प्रकृतिलीलया पश्यत एव जनस्य सर्वस्व-नाशोऽभवत्, मनुष्यश्च सर्वथा असमर्थवत् स्वसर्वस्व-विनाशम् अपश्यत्, परन्तु सम्प्रति विज्ञानवलाद् नदीवेगस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूकम्पस्य वर्षावेगस्य वातप्रकोपस्य इतरस्य प्राकृतिककोपस्य वा सूचनाम् अधिगत्य मनुजः सावधानो जायते, स्वरक्षणञ्च तस्मात् कुर्वन् न क्षतिम् अवाप्नोति।

एवमेव भीष्मे ग्रीष्मे तपने तपति मारुते दाहमिव वितरति विद्युद्यन्त्र-साहाय्येन शीतलताम् अनुभवन् सीकर-सार्ध-संवासितमिव मारुतं सेवन् शीतर्तुमेव अनुभवति। भयङ्करे दन्तवीणा-वादन-विशारदे शीतकाले च यन्त्रवलेननैव स्ववसतिम् उष्णां विधाय शीतं समुपेक्ष्य उष्णताम् अनुभवन् प्रकृतिं स्ववुद्धिवलेन निर्जितां दर्शयति।

एवमेव इमे विविधा आविष्काराः वौद्धिक-वल-महत्त्वं निदर्शयन्ति। विषयेऽस्मिन् सर्वाधिक-शारीरिक-शक्ति-सम्पन्नस्य गजस्योपरि संस्थितं डिण्डिमं वादयन्तं हस्तिपकम् अभिलक्ष्य विरचिता वर्णना मोहयतीव मनः—

मतिरेव वलाद् गरीयसी यदभावे करिणामियं दशा।
इति घोषयतीव डिण्डिमः सततं हस्तिपकाहतः क्वणन्॥

२३. त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले
(धैर्यं हि महतां धनम्)

नानाविध-चरित्र-चित्रिते परिवर्त्तनशीले महीतलेऽस्मिन् सन्ति विभिन्न-स्वभावाः विभिन्न-प्रकृतयश्च वहुविधाः मानवाः। तत्र केचन धीराः गम्भीराः विद्वांसः महात्मानश्च सन्ति, अन्येऽधीराः प्रगल्भा अविद्वांसश्च सन्ति, इतरे सरसाः कोमलाः सहृदयाः दयालवश्च सन्ति, तत्र च सर्वे एव प्राणिनः प्रायः सुखदुःखोदधौ निमज्जमानाः दृश्यन्ते। सुखदुःखे च जीवनशकटस्य चक्रद्वयम्। उक्तं च यथा—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

अपरं च—

"चक्रवत्परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च।"

सुखस्यानन्तरं दुःखम्, दुःखस्यानन्तरं सुखमित्थं चक्रवत्परिवर्तन्ते सुखदुःखानि। तत्र सुखदुःखे समे मन्यमानाः ये जनाः सुखावस्थायां प्रसन्नाः, दुःखावस्थायां च उद्विग्नाः न भवन्ति, त एव धीराः महान्तः विद्वांसश्च उच्यन्ते। दिवाकरश्च प्रतिदिनमुदेति अस्तं च गच्छति। तत्रोदयकालेऽपि स ताम्रवर्ण एव उदेति, अस्तमन-वेलायाम् अपि ताम्रवर्ण एव अस्तं गच्छति। यथा चोक्तम्—

"उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥"

एवं सम्पत्तौ विपत्तौ च एकरूपताम् आपन्नाः धैर्यशालिनः महान्तः पुरुषाश्च लोके ख्यातिं कीर्तिं यशः सम्मानं च लभन्ते। धैर्यालम्बनेन च मानवानां व्यक्तित्वम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तिष्ठिति, सुखं शान्तिः प्रसन्नता उत्साहश्च जायते । सुखशान्त्यादि-सद्भावेन तेषां मतिः विवेकशक्तिश्च वर्धते । मत्या विवेकशक्त्या च ते दुष्कराण्यपि कार्याणि सुकराणि विधातुं प्रभवन्ति । एवं च धैर्यावलम्बिनो शान्तचेतसो जनाः यत्सुखं, या शान्तिः, यादृशी सफलता च अधिगच्छन्ति, नान्यसाधनैश्च तल्लब्धुं शक्यते ।

तत्र नानाविधैरसुखकरैः विपद्भिश्च मुहुर्मुहुः प्रतिहन्यमाना अपि जनाः स्वधर्मात् स्वकर्त्तव्याच्च यद्विमुखाः न भवन्ति तद्धैर्यमिति । केचित्तु सर्वासां सिद्धीनां साधकं साधनं धैर्यं कथयन्ति । धैर्यं हि नाम नानाविध-विपज्जाल-ज्वालावलीढानां दुःखोदधि-निमज्जमानानां लोकानां तरणिः प्रोक्ता । यथा च पयोनिधौ निमज्जमानानां जनानां कृते तरणिः तरणशक्या भवति, तथैव आपत्पयोधौ निमज्जमानाः जना धैर्यतरण्या आपत्पयोधिं तरितुं समर्थाः भवन्ति । यथा चोक्तं केनचिद्धीमता—

"भग्नस्य व्यसने कृच्छे धृतिः श्रेयस्करी नृप !"

'स्वस्थे को वा न पण्डितः' इत्युक्त्या सुखकाले तु सर्व एव जनाः सुखेन तिष्ठन्ति, परस्योपदिशन्ति च सुखेन । तेषां वास्तविकी परीक्षा तु दुःखकाले एव भवति । तथापत्समय एव ये जनाः कष्टं सहमाना अपि धैर्यं न त्यजन्ति, त एव धीरा उच्यन्ते । यथा चोक्तं कालिदासेन—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।"

धैर्यं हि ऐहिकामुष्मिकं सर्वविधं श्रेयःसाधकं साधनमस्ति । यानि च कार्याणि धनेन न सिद्धयन्ति, तानि च ततोऽपि दुष्कराणि कार्याणि च धैर्याश्रयणेनैव साधयितुं शक्नुवन्ति धीराः । वेदेष्वितिहासपुराणेषु धर्मशास्त्रादिषु सर्वत्र च जगति धैर्यस्य महत्त्वं प्रतिष्ठितम् । तत्र वेदेतिहास-पुराणादिषु वर्णितानां लोकोत्तरचरित्राणां महापुरुषाणां यन्महत्त्वं प्रतिपादितं तद्धैर्यस्यैव माहात्म्यम् । धैर्यबलाश्रणेनैव ते महत्विपत्ति समुल्लंघ्य निजाभिलषितं च सम्पाद्य लोकोत्तरामतुलां कीर्ति प्राप्तवन्तः ।

युधिष्ठिरादि-प्रभृतिभिः लोकमान्यैः नृपतिभिरपि धैर्यबलम् आश्रित्यैव निजं राज्यम् अतुला विभूतिः विपुला कीर्तिश्च समासादितेति । न श्रूयते कदापि धैर्यस्खलनं धैर्यधनानां मानवानाम् । महत्सु विपत्स्वपि ते धैर्यं न परित्यजन्ति । धैर्यधना हि स्वनिश्चयार्थात् कदापि न विरमन्ति । विधुरेऽपि काले ते धैर्यं न त्यजन्ति । उक्तं च यथा—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले,
धैर्यात् कदाचिद् गतिमाप्नुयात् सः ।
याते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे,
संयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२४. न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

(न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः)

परस्पर-वैचित्र्य-विशिष्टेन गुणत्रयेन विनिर्मितेऽस्मिन् जगति परस्पर-वैचित्र्यं नैसर्गिकमेव। अतएव मानवा अपि परस्पर-विलक्षण-स्वभाव-संभरिता दृक्गोचरतां प्रयान्ति। केचिज्जनाः केवलं स्वार्थमेव विचार्य कुर्वन्ति सर्वमेव कार्यकलापम्। न हि ते स्वार्थसाधने परार्थ-विनाशस्य मनागपि चिन्तां विदधति मानसे। स्वार्थ-परायणास्ते तन्निरुद्ध-विचार-विवेक-शक्तयः स्वीय-सूचिका-लाभार्थमपि परस्य कटाहविनाशने प्रवृत्ता भवन्तो न संकोच-लेशमपि धारयन्ति।

तद् विपरीता सन्तो महन्तो परार्थमेव वहन्तः न्यायेन पथा प्रचलन्तो जनानां मनांसि हरन्तो यशोवितानं विदधन्तो विलोक्यन्ते विरला एव। न्याय-सूर्य-समुद्भासिते तेषां मनोमन्दिरे स्वार्थान्धकारस्य लवमपि पदप्रक्षेपेन सामर्थ्यम् अनुभवति।

लोकेषणया धनेषणया च सर्वथा पराङ्मुखानां तेषां प्रत्येकमपि कार्यं न्याय-सरणावेव समापतति। नीर-क्षीर-विवेक-विचक्षणस्य सुलक्षणस्य प्रथितवंशस्य राजहंसस्य मानसं मानसं विना यथा न रमते, न हि तन्मानसं भेकादि-प्रिय-वसति-भूते कर्दमावासे क्षुद्रपल्वले प्रीतिम् आधत्ते, तथैव स्वार्थ-परायण-प्रिये क्षुद्रे कार्ये परार्थ-प्रवणानां न्याय-प्रियानां जनानां समुत्साहः न सम्भवति।

यथैहिक-पारलौकिक-सुख-विरतानां मोक्ष-मार्ग-निरतानां यम-नियमादि-तत्प-राणां ज्ञान-धनानां जनानां समाकर्षणं स्वरूप-सौन्दर्येण अप्सरोभिः, वित्तबलेन निधी-श्वरैः कुवेरादिभिः, स्वर्ग-सुख-प्रलोभेन गीर्वाणैः वा विधातुं न शक्यते। किन्तु ते जनसम्मान्याः सिद्धीः अन्तराय-बुद्धया समुपेक्ष्य स्वाभिलषिते मार्ग एव अनवरतं प्रचलन्ति, न किञ्चिदपि लक्ष्य-परिवर्तनं कल्पन्ते।

एवमेव धीरा महामानवा विचित्रायां जीवनयात्रायां लोभगर्तान् मोह-मृग-तृष्णां प्रलोभन-कण्टकान् मिथ्या-स्तुतिं च सर्वथा समुपेक्ष्य तैरप्रभाविता किमपि क्लेशानुभवम् अकुर्वन्तः स्वान्तःसुखेन परमानन्दम् अनुभवन्तः निरन्तरमेव अग्रगा-मिताम् एव भजन्ते।

परोपकारं ध्यायं ध्यायं जनता-जनार्दन-सेवनं स्मारं स्मारं न्याय-मार्गे प्रचलतां तेषां समक्षे वारम्वारं वहुविधानां स्वार्थादि-महदन्तरायाणां समुपस्थितिः स्वाभाविकी भवत्येव।

क्षुत्क्षामोऽपि जराजीर्णोऽपि विगलित-प्रखर-नखरोऽपि कलित-दंष्ट्रा-भङ्गोऽपि मृगाधिपो यथा जीवन-परित्यागमेव सहर्ष स्वीकरोति, किन्तु सम्मुखागते घासग्रासे दृष्टिनिक्षेपमपि नैव कुरुते, तथैव नीतिमार्गानुसारिणो वीरवरा अपि न्यायरक्षार्थं स्वीयान् प्रियतमान् प्राणान् सहजमेव परित्यजन्ति, किन्तु स्वीयान्मार्गात् मनागपि न प्रचलन्ति।

अनेकेषां पवित्र-चरित्राणां जनानां निदर्शनरत्नानि भारतीयेतिवृत्ते सम्मिलन्त्येव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वत्र। भगवता लोकभद्रेण श्रीरामभद्रेण वाक्जाल-प्रवद्धस्य पितुराज्ञां सत्यां कर्तुं वनवासादि-कष्टततिः सहर्षं सोढा। पतिव्रता-कुल-देवतया श्रीसीतया सहगामिनी-शब्दं सार्थकं विदधत्या महती पीडा अनुभूतैव।

तिष्ठतु तावदेषा प्राचीना हरिश्चन्द्र-शिवि-दधीचि-युधिष्ठिरादीनां प्रसिद्धा कथा, पश्यन्तु नवीनम् इतिहासम्। हंस-वंशावतंसेन प्रथित-तापेन महाराणा-प्रतापेन त्रस्तीकृतावरंगजीवेन हिन्दू-धर्म-रक्षण-धीरेण महावीरेण श्रीशिववीरेण वा सामन्तादि-पद-प्रलोभनं तृणवत् परित्यज्य प्रतिपदं समागतां विपत्तिं पुरस्कृतिमिव स्वीकृत्य विदेशीयानां मुगलवंशजानां शासनस्य विनाशार्थं यावज्जीवं यथाशक्ति चेष्टितमेव। भगवतोऽनुग्रहेण सिद्धिरपि संप्राप्तैव।

व्यापारच्छलेन भारतभुवम् अपहरतां कृष्णमानसानां गौराङ्गानां इंगलैण्ड-देशवासिनां शासनस्य विनाशार्थं भारतीयैः वीरैः बहूनि निदर्शनानि शताब्द्याम् अस्या-मपि प्रदर्शितानि।

कारावास-कष्टं कैलास-वासमिव, शारीरिक-क्लेशं तूललेशमिव, गृह-परिजनादि-परित्यागं विदेश-त्यागमिव, प्राण-मोक्षणं सुक्षणमिव मन्वानानां श्रीसावरकर-लोकमान्य-तिलक-सुभाषचन्द्रादि-नेतॄणां पवित्राणि चरित्राणि ख्यातान्येव, किन्तु सन्ति तानि बहूनि कथानकानि यानि विस्मृति-गर्त-गतानि नाममात्रेणापि न श्रुतानि।

अतएव "वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा" इति विधया स्वोन्नति-साधन-धुरीणां राजनीति-निपुणानां निन्दया स्तुत्या वा विरहितानां धनलोभेन सर्वथा पराङ्मुखानां जगत्कालस्य कालस्य भयेन मनागपि असंस्पृष्टानां धीरजनानां न्यायो-पेतस्य मार्गस्य परित्याग-कल्पना कल्पनैव, किन्तु पदमात्रमपि प्रत्यावर्तनम् असम्भवमिति सम्यगुक्तं कविरविना श्रीभर्तृहरिणा—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

२५. सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्
(सन्तोषः परमं सुखम्)

स्वीये वस्तुनि तुष्टिः परपदार्थेऽभिलाषाभावो वा सन्तोष इति पदेन प्रोच्यते विज्ञैः। यदा मानवः स्वाधिकृतं वस्तु श्रेष्ठं स्वानुरूपं स्वोपयोगयोग्यं च मनुते, तस्मिन्नेव मनसस्तुष्टिं कुरुते, परपदार्थपेक्षया पराङ्मुखो भवति तदा तस्य मनो-वृत्तिः सन्तोष इति पदस्य व्यपदेशं लभते। यथोक्तं योगसूत्रभाष्ये भगवता श्रीव्यासेन——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा ।

योगदर्शने प्रदर्शितेषु मनःशुद्धि-साधनेषु समाधि-लाभ-प्रदेषु नियमेषु सन्तोषस्य गणना सन्तोषस्य माहात्म्यं व्यनक्ति ।

प्रवृत्ति-निवृत्ति-विधया द्वे मार्गे दृश्येते संसारयात्रायाम्, तत्र निवृत्तिमार्गे तु पदे पदे सन्तोषस्य परमोपादेयता प्रतिपादितैव । यतो हि स्वस्मिन्नसंतुष्टः परकीय-पदार्थ-जिघृक्षुः जनो न मनसः समाधाने कथमपि समर्थो भवति । तदभावे परात्परस्य तत्त्वस्य साक्षात्कृतिः न जायते । अतएव समेऽपि योगिनो मुमुक्षवो वा सन्तोषस्य माहात्म्यं बहुधा वर्णयन्ति ।

यो जनः सन्तोषनियमवान् भवति तस्मै तस्य सुखस्य संप्राप्तिः जायते यदपेक्षया कोऽपि सुखलाभ उत्तमो न भवतुमर्हति । सर्वश्रेष्ठ-सुख-सम्पन्नस्य जनस्य कृते दुःखस्य अवकाश एव नास्ति । तदभावे च सर्वथा प्रसन्नोऽयं स्वं मानसं यदैवेच्छति, तदैव वशीकृतं तुरगं सत्सारथिरिव कर्तव्यपथे प्रेरयति तच्च प्रेरणामात्रेण सत्वरमेव अनुवर्तते तन्मार्गम् । एतत्सर्वं प्रोक्तं योगशास्त्रे—

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।

प्रवृत्तिमार्गेऽपि विहिते विचारे पश्यामस्तृष्णाख्यमेव दस्युगणाधीश्वरी, या स्वकटाक्ष-निक्षेप-मात्रेण शान्ति-धन-सहितस्य स्वमार्गे गच्छतो जनस्य तद्धनम् अपहाय तं विकलीकरोति । वैकल्यवान् मानवश्च स्वेष्टमार्गात् परिभ्रष्टो दिग्भ्रान्तसम इतस्ततो गच्छन् केवलं क्लेशमेव प्राप्नोति, लक्ष्यप्राप्तिस्तु दूर एव । यस्मिन् क्षेत्रे दृष्टिनिक्षेपो विधीयते तस्मिन्नेव तृष्णायाः साम्राज्यं दरीदृश्यते, न कोऽपि कैरपि साधनैः सम्पन्नो जनः तृष्णाया अवधिज्ञाने समर्थो भवति ।

तृष्णा-पिशाच्या निग्रहे केवलोऽयं सन्तोषाख्य एव मन्त्रो जागर्ति, यद्दर्शनमात्रेणैव सा तत्कालमेव कथाशेषताम् उपयाति । जाते च तृष्णा-विनाशे सर्वत्र सुखसाम्राज्यं समेधते । बहुकालं सर्वसुखम् उपभुज्य वार्धकेऽनिवृत्त-तृष्णा-पाशेन स्वपुत्रस्यापि पुरो यौवनं गृहीत्वा पुनः भोग-मार्ग-पथिकेन ययातिना पश्चाद् यदुक्तं तदनुभवसंवलितत्वाद् अक्षरशः सत्यमेव—

"या दुस्त्यजा दुर्मतिभिः या न जीर्यति जीर्यताम् ।
तां तृष्णां संत्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते ॥"

महाभारते प्रतिपादितमेवं यत्संसारे यावत्यः स्त्रियः, यावद् धन-धान्यादिकं च, ते नैकस्यापि जनस्योपभोगाय भवति, किं पुनः सर्वेषां जनानाम् । अतएव सांसारिकेषु सर्वेषु सुखेषु सन्तोषस्यैव सर्वसुखापेक्षया श्रेष्ठत्वम् उद्घोषितम्—

"अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम्"

धनादिविहीना साधारणरीत्या जीवनयात्रां निर्वाहयन्तः स्वे पदार्थेऽभिरमन्तः सन्तो मुनयो महर्षयश्च सन्तोषबलादेव परमसुखिनो निस्पृहाः पूज्यतमाश्च अभवन् । यथा स्वाशा-विनाशे दुखं निश्चितमेव उपजायते, न तथैव स्वीय-काम्य-पदार्थ प्राप्तौ सुखमपि निश्चितमेव उपजायते । किन्तु लोके यत् स्वकाम्य-प्राप्ति-जनितं कामसुखं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यच्च स्वर्गादि-प्राप्यं दिव्यं सुखं, तदुभयमपि तृष्णा-क्षय-सुखस्य लब्वीमपि तुलां नाधिरोढुं समर्थमिति प्रोक्तं श्रीविष्णुपुराणे—

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

संसारेऽस्मिन् साधारणोऽपि श्रमिकः सर्वं दिवसं श्रमेण अतिवाह्य सायंकाले यत्किमपि भुञ्जानो यत्सुखम् अनुभवति, लक्षाधीशेन अपि तत्प्राप्तुं न शक्यते । यथा विशालायां वसुधायां सर्वत्र कण्टकादीनां समुन्मूलनं सर्वथा सम्भाव्यमेव, इति विज्ञाः स्वस्मिन् पादयुगले स्वीकृत्योपानहौ सुखेन सर्वत्र विहरन्ति, न तेषां कृते कण्टकादिबाधा मनागपि उदेतुं शक्यते । एवमेव चतुरा विचक्षणा सन्तोषवर्म परिधाय जीवनसंगरे समायान्ति, न हि तत्कृते तृष्णा-शस्त्र-भय-लेशोऽपि जायते । यथोक्तम्——

सर्वतः सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥

एतत्सर्वं विमृश्य श्रीभर्तृहरिणा युक्तमेव प्रोक्तं नीतिशतके——

सर्पाः पिबन्ति पवनं नहि दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवराः गमयन्ति कालं
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥

++

२६. धर्मो रक्षति रक्षितः
(धर्मतत्त्वम्)

प्राचीनकालत एव भारतदेशः धर्मेण आचारेण विचारेण संस्कृत्या च निखिलस्यापि विश्वस्य श्रद्धाकेन्द्र आसीत् । भारतीयसंस्कृतौ च धर्मस्य सदाचारस्य महत्तमं स्थानम् अस्ति । तत्र च कोऽसौ धर्मः ? इति विचिकित्सायां **'यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः'** इति महर्षिणा कणादेन प्रतिपादितम् । येन च मानवस्य अभ्युदयस्य निःश्रेयसस्य च सिद्धिर्भवति सः धर्मः । व्युत्पत्त्या तु धारणार्थकात् 'धृ' धातोः 'धर्म' शब्दस्य निष्पत्तिर्भवति । तथा च 'यश्च वस्तुस्वरूपं धारयते' वा 'यो धृतः सन् धारयते' स धर्म इति । एतदेव अभिलक्ष्य महाभारते धर्मस्वरूपं निगदितम्—

"धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत् स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥"

वस्तुतस्तु यस्य पदार्थस्य यत्स्वाभाविकम् आचरणं तदेव तस्य धर्मः । यथा च अग्नेर्दाहकत्वं स्वाभाविकम् आचरणम्, तदेव तस्य धर्मः । हीयमाने च तस्मिन् तस्य स्वरूपहानिः स्यात् । एवं च भूमेः गन्धवत्त्वम्, वायोः स्पर्शवत्त्वम् अपां च शीतस्पर्शवत्त्वम्, सूर्यस्य प्रकाशकत्वम्, चन्द्रस्य आह्लादकत्वम्, खलानां सर्पाणां च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खलत्वम्, सतां च सौजन्यम् इत्येतेषां स्वाभाविकान्याचरणानि, धृताश्चैते एतान् धारयन्तेऽतो धर्मा इमे । एभिर्धर्मैर्युता एते स्व-स्व-व्यापाराणि कर्तुं शक्नुवन्ति ।

एवं च यो जनः धर्मं पालयति, कृतज्ञमित्रवत् रक्षितः धर्मोऽपि तस्य पालनं करोति, यश्च धर्मम् अपहन्ति, हतः धर्मश्च तं हन्ति । अत एवोच्यते—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

एवं चास्य धर्मस्य द्वैविध्यं प्रतिपादितं धर्मविदा केनापि साधारणधर्मो विशेषधर्मश्चेति । अन्यैश्च चतुर्विधत्वमुक्तं धर्मस्य साधारणधर्मः, विशेषधर्मः, असाधारणधर्मः, आपद्धर्मश्चेति । तत्र साधारणधर्मस्य प्रायेण त्रीण्यङ्गानि भवन्ति—यज्ञो दानं तपश्चेति । जातिविशेषाणां विशेषाधिकारानुसारेण विशेषरूपेण विहितो धर्मो विशेषधर्म उच्यते । यथा मानवस्य मानवधर्मः, नार्याः नारीधर्मः, गार्हस्थ्यस्य गृहस्थधर्मः, वानप्रस्थस्य वानप्रस्थधर्मः, सन्यासिनां सन्यासधर्मश्चेति । ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणां च पृथक् पृथक् ये धर्माः निरूपिताः, ते सर्वे 'विशेषधर्म' शब्दैः व्यवह्रियन्ते । विशेष-शक्ति-समन्वितो धर्मः असाधारणधर्मः । स चालौकिक-शक्ति-सम्पन्नानाम् ऋषीणामेव सम्भवति । आपत्काले आत्मरक्षार्थं विहितो धर्मः 'आपद्धर्म' कथ्यते । यथा च विश्वामित्रः कदाचित् सम्पतिते दुर्भिक्षे स्वात्मरक्षणाय उच्छिष्टं भोजनमपि कृतवान् ।

धर्मशास्त्रकारैर्महर्षिभिः जीवनेऽनुष्ठीयमानानि दशलक्षणानि प्रोक्तानि धर्मस्येति । यथा—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

सर्वेषाम् अचाराणां विचाराणाम् आहाराणां व्यवहाराणां सदाचाराणां च नियामको धर्म एव । धर्मेणैव च ऐहलौकिक-पारलौकिक-सुखावाप्तिश्च भवति । शिवि-दिलीप-प्रभृतयः राजानः धर्मेणैव संसिद्धिमास्थिताः । धर्माश्रयणेनैव मानवाः संसारस्य बन्धनानि मुक्त्वा मुक्ति भजन्ते । अतएव धर्मस्य आचरणं पालनं व सर्वेषां मानवानाम् आवश्यकं कर्त्तव्यमस्ति । तदनुष्ठानेनैव मानवानाम् अभ्युदयः श्रेयः प्रेयश्च भवति । एवं च सततम् आचरणीयो धर्मः मनसा वाचा कर्मणा चेति । मनुनाप्युक्तं यद्धर्मानुष्ठानेन अनुत्तमं सुखं लभन्ते मानवाः । यथा—

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥

लोके मानवः महता प्रयत्नेन अनेकानि वस्तूनि संगृह्णाति, रक्षति, च, किन्तु परलोक-यात्रा-समये किमपि वस्तु एकं पदमपि न गच्छति । धर्म एव एकः तादृशोऽस्य सुहृद् यः परलोक-यात्रा-कालेऽपि तम् अनुसरति, तत्र साहाय्यं विदधन् तारयति च मनुजम् । सत्यमुक्तं केनापि नीतिविदा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य—
मापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।
प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां
धर्मः परमसखा परमहो परलोकयाने ॥

अतएव धर्मस्य महत्त्वं प्रतिपादयन् धर्ममनूच्य आचार्योऽन्तेवासिनम् अनुशास्ति—

"धर्मं चर", "धर्मान्न प्रमदितव्यम् ।"

२७. नहि सत्यात् परो धर्मः
(सत्यमेव जयते नानृतम्)

विविधेषु देशेषु विविधेषु कालेषु विविधेषु जनेषु च विविधरूपेण विविधपरिभाषाभिश्च परिदृश्यमाने धर्मे सत्यस्य प्राधान्यं तु सर्वमान्यमेव वर्तते । दृष्टस्य श्रुतस्य वा पदार्थस्य यथावत् प्रतिपादनं सत्यम् इत्युच्यते । अतएव योगसूत्रभाष्ये श्रीमता व्यासेन "सत्यं यथार्थे वाङ्मनसी" इति सत्य-पदस्य निर्वचनं कृतम् ।

यथा हि शाखा-पत्र-पुष्पादि-विधया प्रतीयमानस्य शाखिनो निदानन्तु बीजमेव भवति, तथैव विविध-लक्षण-लक्षितस्य धर्मशाखिनः कारणं सत्यमेव वर्तते । अतएव सर्वेषु धर्मेषु सत्यस्य मान्यता अक्षुण्णैव प्रतिभाति । कायिक-वाचिक-मानसिक-भेदैः विभक्तेषु तपःसु सत्यस्य गणना वाचिक-तपसि स्वयं भगवता श्रीकृष्णेन स्वगीतायां भगवद्गीतायामित्थं कृता—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितञ्च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

मनुस्मृतिकारेण श्रीमनुनापि धर्मस्य लक्षणेषु सत्यस्य गणनेत्थं कृता—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

सर्वेषु युगेषु कृतयुगस्यैव सर्वदिशा प्राधान्यं वर्णितं सर्वेष्वेव ग्रन्थेषु, किन्तु कृतयुग-माहात्म्यस्य कारणं सत्यमेवेति सत्यमूलकत्वं कृतयुगस्य वर्णितं तत्रैव । उपनिषत्सु वर्णिता सत्य-भाषण-प्रार्थना सत्यभाषणस्य महत्त्वमेव द्रढयति । किम्बहुना सम्प्रति सर्वकारस्य मुद्रासु समङ्कितं "सत्यमेव जयते" इत्यौपनिषदीयं वाक्यं सत्यस्य सर्वापेक्षया श्रेष्ठतां सम्यक्तया दर्शयति ।

मनुजानां मानसिक-दोषोपशान्त्यै करुणा-वरुणालयेन महर्षिणा पतञ्जलिना प्रणीते योगसूत्रे योगाङ्गे यमनामके "अहिंसासत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति सूत्रे सत्यस्य गणना कृता । सदा सत्य-भाषण-शीलस्य मनुष्यस्य वाग् सत्य-बलात् अप्रतिहत-शक्ति-सम्पन्ना जायत इति **"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"** इति सूत्रेण तत्रैवोपदर्शितम् । एवं संस्कृत-वाङ्मये सत्य-महिमा-प्रदर्शनपराणि विविधानि वाक्यानि दृश्यन्ते । अतएव सत्यस्य पालनं कुर्वन्तः प्रायः सर्व एव जना महात्मपदवीं धारयन्तो लोकपूज्यताम् उपयान्तो दृश्यन्ते ।

भारते सत्यवादिनाम् अपूर्वाणि निदर्शनानि विस्मयम् आवहन्ति । सत्य-रक्षार्थमेव राजोडुगणचन्द्रेण महाराज-हरिश्चन्द्रेण स्वसर्वस्वं विश्वामित्राय निवेद्य प्रियतमां शैव्यां प्रियपुत्रं रोहितं च विक्रीय वाराणस्यां स्वमपि विक्रयार्थं सन्नद्धं कृत्वा चाण्डालसेवा अङ्गीकृता । तद्रक्षार्थमेव अकाल-काल-कवलितस्य सुतस्य शव-कर्पटादपि नियमानुसारं तदर्धभागो गृहीतः ।

सत्यस्यैव-रक्षार्थं विश्व-विश्रुत-यशसा श्रीदशरथेन स्वप्राणप्रियं रघुकुलचन्द्रं श्रीरामचन्द्रं राज्याभिषेकाद् वनं प्रेष्य स्वप्राण-परित्यागोऽपि विहितः । पितुः वचनानां सत्यताया परिपालनार्थमेव भगवता श्रीरामचन्द्रेण वनवसतिम् अङ्गीकृत्य विविधैः कष्टैः सह जानकी-विप्रयोगोऽपि समवाप्तः । रामभद्रस्य **"रामो द्विर्नाभिभाषते"** इत्येषा सूक्तिः अद्यावधि तस्य सत्यभाषणे दृढां निष्ठां पूर्णतया व्यनक्ति ।

महाभारतकाले राजश्रेष्ठस्य पाण्डवज्येष्ठस्य युधिष्ठिरस्य सत्यभाषणाभिरुचिः सत्य-भाषण-नियमश्च प्रसिद्ध एव । वर्तमानेऽपि काले स्वातन्त्र्य-संग्राम-सेनापतेः महात्मनो गान्धिनः सत्य-भाषण-नियमं जानन्त्येव जनाः ।

न केवलं मनुष्याणामेव सत्य-पालन-नियमो दृश्यते परन्तु तदितराणामपि सत्य-भाषण-नियमस्य उदाहरणानि सन्ति, येषु विन्ध्याचलस्य तु निदर्शनम् अद्वितीयमेव । श्रूयते यत्सुमेरोरीर्ष्यया स्वशरीरस्य वृद्धि कुर्वता विन्ध्येन विहिते भुवनभास्करस्य भास्करस्य गत्यवरोधे सुरनिवहाभ्यर्थनया समागताय स्वगुरवे महामुनये अगस्त्याय यद् वचनं प्रदत्तं तदेव परिपालयन् सोऽद्यापि नीचैरेव तिष्ठति । अतएव देवापेक्षयापि विन्ध्याचलस्य महात्म्यं वर्णितं केनापि कविना—

कुर्वन्ति देवा अपि पक्षपातं न सज्जना वाचि कदापि किञ्चित् ।
तथेत्यनुज्ञाय हि हन्त विन्ध्याचलोऽपि नह्युन्नमतीति दृष्टम् ॥

अनेकेषां दुर्लभानां पदार्थानां संप्राप्तिः सत्यवादनेन अकस्मादेव भवतीति । अतएव सज्जन-हृदय-चकोरान् समाह्लादयन्ती कुवलये कोविद-कुमदानि रञ्जयन्ती राजतेऽसौ सूक्ति :—

नहि सत्यात्परो धर्मः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२८. अहिंसा परमो धर्मः

विविधेषु धर्मेषु विविधेषु सम्प्रदायेषु अहिंसाया मान्यता, तस्या श्रेष्ठता च स्वत एव अहिंसाया गौरवं गायति । नहि कश्चिदपि सो धर्मप्रवर्तको धर्मप्रचारको वा वर्तते, योऽहिंसायाः सर्वथा आवश्यकतां न स्वीकुरुते ।

वेदार्थम् एव अनुसृत्य विरचितायां स्मृतौ मनुरपि धर्मलक्षणेषु दशसु सर्वप्रथमम् अहिंसाम् एव गणयन् तस्या सर्वमूर्धन्यं गरिमाणं प्रदर्शयति, स्वस्य वेदानुगामितां च व्यनक्ति । अतएव च स्मृतीनां वेदानुगामिता कविकुलगुरुणा कालिदासेन "श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्" इति विधया वर्णिता । योगसूत्रेषु च योगाङ्गानां निरूपण-प्रस्तावे सर्वप्रथमे योगाङ्गे यमनामके सर्वप्रथममेव अहिंसा-परिगणनं सर्वेष्वेव योगाङ्गेषु अहिंसाया प्रमुखतां प्रतिपादयति । "अहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोहः" इति परिभाषा तत्रैव व्यासभाष्ये दृश्यते ।

वस्तुतः सर्वेषामेव यमानां नियमानां च मूलभूता अहिंसा एव । **"अहिंसा-प्रतिष्ठायां वैरत्यागः"** इति सूत्रमपि अहिंसाया महत्त्वं प्रदर्शयति । प्रायः सर्व एव महात्मानो महापुरुषाश्च अहिंसां सेवित्वा लोकपूज्यताम् अवापुः । स्व-पुत्र-वित्तादि-विनाशकं विश्वामित्रं प्रति अहिंसायाः समाश्रयेण वशिष्ठस्य वरिष्ठता पुराण-प्रसिद्धैव ।

भगवता बुद्धेन अहिंसाया महान् प्रचारो विहितः । न केवलं भारते वर्षे, किन्तु-चीन-जापान-लङ्का-वर्मा-प्रभृतिषु देशेषु बौद्ध-धर्म-धारा अद्यापि प्रवहन्ती लोक-सन्तापं हरन्ती जनमानसं रञ्जयन्ती शान्ति-सुधां वर्षयन्ती स्व-श्रेष्ठता-सौरभं विकिरन्ती विराजते । तस्मिन् समये धर्म-व्यपदेशेन महत्सु यज्ञेषु महती पशुहिंसा क्रियते स्म । तां विनिभाल्य नवनीतसदृशं बुद्धहृदयं करुणया आर्द्रं सञ्जातम्, अतएव तेन महता प्रयत्नेन पापकर्मणस्तस्य विरोधो विहितः । शतशः सहस्रशो वा समनुयायिनः तस्य सञ्जाताः ।

बुद्धोपदेशं वेदविरुद्धाद् अमान्यं घोषयन्तोऽपि वैदिक-धर्म-निष्ठावन्तः सन्तो यद् बुद्धस्य गणनां नवमावताररूपेण कुर्वन्ति, तत्सर्वं वस्तुतो वर्ततेऽहिंसाया एव माहात्म्यम् । वर्तमान-समयेऽपि सत्याग्रहरूपेण असहयोगरूपेण च शस्त्रेण विश्व-व्यापिनी सर्व-विध-शक्ति-सम्पन्ना आङ्ग्लानां साम्राज्यशक्तिः यत् कृशकायेन सैनिकबलासहायेन महात्मना गान्धिना बलाद् भारतात् परावर्तिता, तत्सर्वं विद्योतते अहिंसाया एव प्रभावः ।

विश्वस्य विश्वस्येतिहासे नैतादृक् किमप्युदाहरणं वर्तते, यस्मिन् महतः साम्राज्यस्य पराजयोऽहिंसयैव विना शस्त्र-बल-साहाय्येन केनापि विहितः । कलिङ्गसङ्ग्रामे जनग्रामे निहिते यदा दुर्दान्तस्य अशोकस्य हृदये कारुण्य-कल्लोलिनी-प्रवाहो भरितस्तदा तेन परम-कारुणिकस्य भगवतो बुद्धस्य अहिंसामयो धर्मोऽङ्गीकृतः । अनन्तरञ्च तेन स्थाने स्थाने बुद्धोपदेशाः पाषाणेषु समुट्टङ्किताः । अवशिष्टञ्च सर्वमेव स्वजीवनं बौद्ध-धर्म-सेवायामेव समर्पितम् । अहिंसा-बले-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नैव अद्यापि सम्राट् 'अशोकः' सर्वेषामेव जनानां श्रद्धास्पदताम् आश्रयते। यदि वयं शान्तेन चेतसा विचारयामस्तर्हि संसारेऽस्मिन् नास्ति हिंसासदृशं किमपि पापम् । स्वास्वाद-निमित्तं परान् शरीर-वियुक्तान् कुर्वतां जनानां राक्षसानाञ्च मध्ये न किमप्यन्तरं प्रतिभाति । यथोक्तम्—

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥

किन्तु कदापि केनापि कस्यापि वधः न करणीय एव इति प्रकारेण अहिंसाया अर्थकरणं सर्वथा अनुचितमेव। यतो यदि सर्वथा हिंसाया अभाव एव भवेत्तर्हि सर्वैव राज्यव्यवस्था विच्छेदम् आप्नुयात् । अतएव दुष्टानां पापिनाम् अपराधिनाञ्च वधः करणीय एव । धर्मारक्षार्थं देशरक्षार्थञ्च कृता हिंसा हिंसा न भवति । तदर्थमेव शास्त्रेषु श्रूयत आततायिनां वधव्यवस्था, तत्र स्त्री-बालादेरपि विचारो न विहितः ।

अशोक-राज्यकाले अहिंसाया एष एव अर्थो विहितस्तत एव देशस्य सैन्यबलं सर्वथा शून्यतां गतम् । यवनैश्च सर्व-शस्य-सम्पन्ना वसुन्धरेयं समाक्रान्ता । भारतीयां दुरवस्थां राज्ञश्च अकर्मण्यतां विलोक्य पुष्यमित्रेण पुनः सैन्यबलस्य महत्ता समुद्घोषिता । ततश्च पुनः स्वातन्त्र्य-सुखम् अनुभूतवती इयं भारत-वसुधा । अतो निष्कर्षोऽयं समायाति यत् स्वास्वादार्थं स्वोपभोगार्थं स्वव्यसन-पूरणार्थं च निरपराधानां पशूनां जीवानां वा वधः सर्वथा विगर्हित एव । एष एव अहिंसापदेन प्रोच्यते । अस्याः समाश्रयणेन समायाति जनः सर्व-जन-सभाजनतामिति । अत इह-लोक-परलोक-कल्याण-कामिभिः जनैः सा सर्वथा समाश्रयणीयेति ।

२९. आचारः परमो धर्मः

धन्येयं भारतभूमिः । यत्र च प्रवहति पुण्यसलिला भागीरथी, या च निखिल-लोक-विश्रुता देवैः वन्दिता च, स्पृहयन्ति च यत्र वासाय देवा अपि, यस्य च गौरवम् उद्घोषयन्ति वेदाः स्मृतयश्च, यस्य च धर्मेण आदर्शेन आचारेण चारित्र्येण गौरवेण च गौरवान्विताः वयमपि सम्मानं भजामः । अस्ति चास्य प्रधानं कारणं सदाचार-प्रतिष्ठा । सदाचारेण, स्वचारित्र्येण च अभ्यर्चितेयं वसुन्धरा सर्वत्र लोके।

समस्त-विश्व-वन्दिता पूजिता चेयं वसुन्धरा अनेकेषां सच्चरित्रवतां पुरुषाणां जननी । चरित्रवन्तो महापुरुषाः स्वकीयेन पावनेन चारित्र्येण सदाचारेण च पावयन्ति लोकान् । तेषां महापुरुषाणां आचारश्च अनुकरणीयः समाचरणीयश्च लोकैः । सोऽयमाचारः भारतीयसंस्कृतेः मूलं धर्मस्य व्यावहारिकरूपं चास्ति। अत एवोच्यते परमधर्मवत्त्वम् अचारस्य । उक्तं च वसिष्ठधर्मसूत्रे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ।
हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥

एवमेवाचारस्य महत्त्वं प्रतिपादयता मनुनाप्युक्तम्——

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥

सतां सज्जनानां आचारः सदाचार उच्यते इति सदाचारशब्दस्य व्युत्पत्तिलभ्योऽर्थः । केनचिद्विदुषा उक्तम्—— यत्र च यम-नियमौ संगच्छेते स एव सदाचारः । यथा गङ्गा-यमुने संगच्छेते, संगत्य च लोकान् पावयतः, तथैव यम-नियमावपि परस्परं मित्रवत् संगत्य सदाचाररूपेण आत्मानं प्रकटयन्तौ लोके सुखं शान्तिश्च स्थापयतः । नीतिशास्त्रविदश्च सदाचारं सम्मानस्य, दीर्घ-जीवनस्य, सुखस्य, धर्मस्य च साधनं स्वीकुर्वन्ति । उक्तं च केनचिन्नीतिविदा——

आचारो भूतिजननः आचारः कीर्तिवर्धनः ।
आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

मनुनाप्युक्तम्——

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

इत्थं च सदाचारस्य प्रशंसा सर्वत्र लोके सर्वेषु शास्त्रेषु च कृता दृश्यते । न केवलं मानवानां कृत एव, किन्तु देवानां कृतेऽपि सदाचारस्य महत्त्वमस्ति । आचारबलेनैव मानवाः देवाश्च परमतत्त्वम् अधिगन्तुं शक्नुवन्ति ।

यश्च आचारम् उल्लंघते स पापभाग् भवति । तथा प्रायश्चित्तेनैव स तस्मान्मुक्तो भवति । एवं च आचारहीनेभ्यः नास्ति पारलौकिकसुखम् ऐहलौकिक-सुखं च । नास्ति आचारहीनानां पुरुषाणां लोके स्थितिः । आचारहीनाः जनाः वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गता अपि न सुखमेधते, न शान्तिम्, न च कामपि प्रीतिं प्राप्नोति । अतएव च प्रोच्यते—'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' इति । धर्मशास्त्रेषु प्रतिपादितं यदाचारहीनं पितरमपि त्यजेत् । मनुना सदाचार-हीनस्य दुराचारिणो जनस्य निन्दां कुर्वता कथितम्——

'दुराचारी हि पुरुषः लोके भवति निन्दितः' ।

यथा पुत्र-पौत्रादि-समन्वितानां बल-सम्पत्ति-समाहितानां विद्यावतामपि दुराचारिणां लङ्केश्वराणां कंसादि-प्रभृतीनां च दुष्टानाम् आचरणं चरित्रं वा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निन्दन्ति लोकाः । प्रशंसन्ति च सन्मार्ग-प्रवर्त्तकानां गो-ब्राह्मणादि-पालकानां दुष्टकुल-संहारकाणां धर्म-प्रवर्त्तकानां रामादीनां चारित्र्यम् । अस्माकं धर्मशास्त्राणि काव्यशास्त्राण्यपि समुदघोषयन्ति––'यद् रामादिवदाचरणीयं न रावणादिवदि त' । अत एवास्माभिरपि सदैवाचरणीयः सतां पन्था इति ।

३०. शीलं परं भूषणम्

सर्वेषामेव जनानां चित्तेषु जागर्ति कामनेयं यत्कथमपि मे भवेदभ्युन्नतिः । अभ्युन्नति-शिखरिणं समारोढुं सन्ति सहस्रशः साधनानि; तेषु सर्वेषु शीलमेव विशिष्यते । विशिष्ट-गुणानां संघातरूपस्य शीलस्य साम्यं न केनापि साधनेन विधातुं शक्यते ।

सद्वृत्तापरपर्याये शीले समेषामेव गुणानाम् अन्तर्भावः स्वभावत एव संजायते । नहि दुर्गुणवतां व्यसनिनां दुष्टानां पापकारिणां लोकापकारिणां चरित्रं सदिति कथयितुं शक्यते; किन्तु लोकोपकार-व्रतानां सततमेव सर्व-सहाय-निरतानां जनानां चरित्रं तु पवित्रमिति मन्यन्ते मनीषिणः । आहार-विहार-स्वरूपादि-समतायामपि गुणाधारतयैव सदिति विशेषणेन विशेष्यन्ते ते महामानवाः ।

अत एव तेषामाचारोऽपि सदाचारः सद्वृत्तमिति वा प्रतिपाद्यते । तस्यैव अपरं नाम "शीलम्" इति वर्तते । अस्य शीलस्य महिमा प्रायः सर्वेष्वेव ग्रन्थेषु बहुधा वर्णितः ।

महाभारते प्रसंगोऽयं समायाति तद् धर्मराजो युधिष्ठिरः सर्वज्ञाननिधिं गुण-गण-महोदधिं भीष्मपितामहः पप्रच्छ यत्सर्वे जना धर्म-निरूपण-प्रस्तावे प्रथमं शीलस्य प्रशंसामेव कुर्वन्ति, अतएव धर्माग्रगण्यस्य शीलस्य स्वरूपं भवता निरूपणीयम् । भीष्मपितामहेन प्रोक्तं यत्पुरा इन्द्रप्रस्थे निवसतां भवतां महतीं श्रियं विलोक्य दोदूयमान-चेतसा दुर्योधनेन धृतराष्ट्रं प्रति विहित एवैष प्रश्नः । धृतराष्ट्रेण सर्वलोकजयः शीलेन भवितुं शक्यत इति रीत्या तन्महत्त्वं सर्वश्रेष्ठरूपेण प्रतिपादयता प्रोक्तमिदम्––

शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः ।
नहि किञ्चिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत् ॥

अस्मिन्नेव कथाप्रसङ्गे समायाति द्वितीया कथेयं यत् पुरा दैत्येश्वरेण श्रीप्रह्लादेन शीलसाधनम् उररीकृत्य देवेन्द्रस्य दिव्यं राज्यं स्वायत्तीकृतम् । राज्यापहरण-खिन्नश्च महेद्रो देवगुरुं सर्वशास्त्राधिपतिं श्रीवृहस्पतिं शरणं सत्वरं जगाम । वृहस्पतिना प्रोक्तं निश्रेयसं ज्ञानं श्रुत्वा तदपेक्षया अधिक-श्रेयस्करस्य ज्ञानस्य जिज्ञासा सहस्राक्षेण यदा विहिता, तदा तेन तदुपदेष्टृतया दैत्याचार्यः श्रीशुक्राचार्यो निर्दिष्टः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुक्राचार्य-निर्देशात् प्रह्लादः सेवनपटवे शतक्रतवे निजं शीलं प्रददौ। प्रह्लाद-शीलञ्च इन्द्र-शरीरं प्रविष्टवान्। ततः शीलरहितात् तच्छरीरात् क्रमशः तेजो-धर्म-सत्य-बलाः निर्गताः। अनन्तरञ्च प्रह्लादेन पृष्टा राज्यलक्ष्मीः निःसरन्ती शील-महत्वम् इत्थं प्रतिपादितवती—

शीलेन हि त्रयोलोकास्त्वया धर्मज्ञ निर्जिताः।
तद्विज्ञाय सुरेन्द्रेण तव शीलं हृतं प्रभो ?॥

अतीवप्रसिद्धे शीलनिरूपणपरे प्राच्येतिहासेऽस्मिन् समेषामेव गुणगणानां कारणं शीलमेव निर्दिष्टम्। स्वमतस्य पोषणार्थं प्रह्लादादिकथा लक्ष्मीप्रभृतीनां प्रश्नोत्तरादीनि च विशदतया दर्शितानि। तत्र प्रदत्ता शीलविषयिणी परिभाषेयं सर्वथा हृदयग्राहिणी वर्तते—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानञ्च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

इत्थं पर्यालोचनेन निश्चीयते यद् यानि वेदप्रतिपादितानि स्मृतिभिः अनु-मोदितानि कर्माणि तेषाम् आचरणमेव शीलमिति संज्ञां लभते। तदनुपालनेन च लोकेऽस्मिन् सर्वविधाभ्युदयस्य परत्र दिव्यसुखानां मोक्षस्य वा प्राप्तिः संजायते। अस्मादेव कारणाच्च शीलस्य सर्वश्रेष्ठता मनुष्यग्राह्यता च संसिद्धयते।

आस्माकीने प्राचीनेतिवृत्ते प्रायः सर्वत्रैव एषा पुरातनी पावनी परिपाटी प्रतीयते, यदाचार-रतानामेव जनानां माहात्म्यम् आसीत् विशेषतया। प्रायः सर्वे सदाचारपालने निरता एव यथाशक्यम् आसन्। नहि धनादीनां लौकिकोन्नतिप्रदानां पदार्थानां किमपि महत्त्वम् आसीत्। विषयेऽस्मिन् महाभारतस्येदं पद्यं प्रसिद्धमेव—

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

एतामेव परिपाटीं परिपालयतां विदुषां ग्रन्थेषु सदाचारस्य सुमहन्निरूपणं कृतम्। सर्वसामर्थ्यसम्भृतापि भगवती श्रुतिः आचार-हीनस्य जनस्य रक्षणेऽसमर्थैव भवति। अस्मादपि कारणात् विद्यते सदाचारस्य महत्त्वपूर्णं स्थानम्। यथोक्तम्—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता खलु षड्भिरङ्गैः।

एवमेव शीलस्य सर्वभूषणता-प्रतिप्रादन-परा सूक्तिरेषा प्रसिद्धा राजते—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमः
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयः वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुः धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषां सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३१. दानमहिमा

असारेऽस्मिन् संसारे सारभूतानि यानि तत्त्वानि सतां संस्पृहणीयानि सन्ति, तेषु दानस्य महिमा अनिर्वचीय एव। गुण-ग्रामेषु तारका-निचयेषु सुधाकरस्येव दानस्य प्राधान्यं पश्यन्ति विद्वांसः, यतोऽस्मात् समुद्भूता कीर्ति-कौमुदी कुवलय-वलयमिव विकासयति कुवलयम् । कस्यापि स्वीयस्य पदार्थस्य स्व-स्व-निवृत्ति-पुरस्सरं पर-स्वत्व-स्थापन-पूर्वकं प्रदानं दानमिति भण्यते ।

परिवर्तनसारे संसारे द्रव्यं सर्वतोऽधिकं परिवर्तनशीलं यतो हि पद्मसहभूकण्टकेन अधिष्ठित-चरणेव पद्म-वल्लभा नैकत्र सन्तिष्ठते। अत एव अस्याः "चञ्चला" इति नाम प्रसिद्धमेव । अतो विचारवन्तः परदुःखमसहन्तः स्वात्मानन्दे रमन्तः संग्रह-सदृशं सुखं त्यागेऽनुभवन्तः पीड़ाजालं परिहरन्तः सन्तः चञ्चलया श्रिया निश्चलं यशोऽभिलषन्तो मुक्तहस्तं वितरन्ति ताम् ।

ये सर्वश्रेष्ठा मानवाः ते द्रव्यस्योपयोगं परस्मै जनायेव कुर्वन्ति, मध्यमाश्च मनुजाः स्वस्मै सुखाय द्रव्यविनियोगं विदधति, किन्तु ये लोभग्रस्ता जना न परस्मै स्वस्मै व तदुपयोगं कुर्वन्ति तेषां धनं स्वयमेव विनश्यति । अतस्तेषां कृते धनं दुःखदमेव जायते । एतामेव वस्तुस्थितिं विचार्य कविरविणा श्रीभर्तृहरिणा नीति-शतके सम्यगेवोक्तम्––

दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवेत् ॥

अतएव च दानभोगविरहितायाः सम्पदो वैयर्थ्यं प्रतिपादयन् कश्चित् कविः तस्या असम्पत्तित्वं युक्तमेव अभिहितवान्––

दानोपभोगरहिता या सुहृद्भिर्न भुज्यते ।
पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीरलक्ष्मीः कतमा भवेत् ॥

आस्मीकीने प्राचीने नवीने चेतिहासे बहूनां दातॄणां नामानि प्रसिद्धानि । नीति-मार्ग-निपुणेन कुलगुरुणा श्रीशुक्राचार्येण बारम्बारं प्रतिषिद्धमानोऽपि महाराजो बलिः कपटबटवे पटवे श्रीविष्णवे सर्वस्वं समर्प्य विश्वविश्रुतं यशो लेभे । महर्षिणा दधीचेन स्वीयान्यस्थीनि देवेभ्यो वितीर्य दानि-शेखरता समवाप्ता ।

शरणागत-वत्सलं शिविं को वा न जानाति, येन स्वाङ्कगतस्य कपोतस्य रक्षार्थं श्येनरूपधारिणे सहस्राक्षाय स्वमांसं स्वहस्तेनैव प्रदत्तम् । भगवतो लोकाभिरामस्य श्रीरामस्य दानं तु प्रसिद्धमेव, यदेकदा ततो गृहीत्वा धनं पुनर्भिक्षवे नास्ति कस्मादन्यस्माद् ग्रहणस्य काप्यपेक्षा । यथोक्तम्––

"द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते"

बाल्य-काल-मित्राय सतीर्थ्याय दारिद्रवते सुदाम्ने स्वसम दारिद्र-दारिद्र्यं दिशन् द्वारकानाथो न विस्मर्तुं शक्यते कथमपि। महाभारते कर्णस्य दानकथा प्रसिद्धेव.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

येन स्वजनकस्य भुवनभास्करस्य भास्करस्य प्रतिषेधं समुपेक्ष्य स्वप्रबलतमशत्रोः अर्जुनस्य पित्रे द्विजरूपाय देवराजाय जन्मजातं मरणशरणं वर्म प्रदत्तम्। प्रसङ्गेऽस्मिन् जीमूतवाहनस्य कथापि नोपेक्षणीया वर्तते, येन सर्पभक्षणरताय गरुडाय शंखचूडाख्य-सर्पस्थाने स्वीयं शरीरं प्रदाय प्राप्ता कीर्तिरक्षुण्णा। एवं विधानि विविधानि कथानकानि दृश्यन्ते, यानि पठित्वा जनो जानाति त्यागस्य माहात्म्यम्।

दाने विहिते द्रव्यस्य न्यूनता भवितेति चिन्ता न विधेया, यतो हि यथा मानवैः विहङ्गैः पशुभिश्च पीयमानं सरोवरसलिलं न क्षीयते, तथैव दीयमाने द्रव्ये न मनागपि न्यूनता भवितुं शक्यते, यतः परमपिता प्रसन्नः पूरयत्येव सदा तत्। अतो विधातुः प्रातिकूल्ये आनुकूल्ये च सर्वथा देयमेव सयुक्तिकमाह कश्चित् कविः--

अनुकूले विधौ देयं यतः पूरयिता हरिः।
प्रतिकूले विधौ देयं यतः सर्वं हरिष्यति॥

मनुजानां कृते सर्वावस्थासु देयमिति शासन्ती भगवती श्रुतिरपि **"ह्रिया देयम्। भिया देयम्"** इत्यादि घोषयति। उपनिषत्सु "द द द" इति रूपेण दकारत्रयोपदेशस्य कथा परम-प्रसिद्धैव, यस्यां दकारेण दानग्रहणं दानस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वदति। आकाश-विहारिणो द्विजराजस्य सर्वाः कलाः कालक्रमेण क्षीयन्ते, किन्तु या तन्वी कला तेन भगवते शम्भवे प्रदत्ता सैव सर्वदा संस्थिता दानगौरवं गायति। एवमेव यद् वित्तं परस्मै प्रदीयते, तदेव ऐहिक-पारलौकिक-सुख-साधनत्वात् तिष्ठति। अन्यत्तु सर्वं नश्यत्येव--

"न परं सैव विनश्यति तनुरपि, या श्रीर्निवेशिता सत्सु।
अवशिष्यते हिमांशोः सैव कला या स्थिता शम्भौ॥

अतएव दानस्य सेवने सर्वैः सदैव विधेया चेष्टा, समागते यस्मिन् नास्ति कस्याप्यन्यस्य गुणस्यावश्यकता। यतो हि दानमहिम्नेव पशुजातिरपि कामधेनुः वृक्षोऽपि कल्पवृक्षः पाषाणोऽपि चिन्तामणिः लोकपूज्यैः देवैरपि वन्द्यते—

दानेन श्लाघ्यतां यान्ति पशुपाषाणपादपाः।
दानमेव गुणः श्लाघ्यः किमन्यैर्गुणकोटिभिः॥

❖❖

३२. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्

(शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्)

इह बहुविध-चर्चा-चर्चिते संपद्विपद्बहुले संसारे मानव एव सर्वाधिकप्रभावशालितां भजते सवषु इतर-जीव-निवहेषु। तस्य सर्वेऽपि व्यापारा शरीराधीना एव वर्तन्ते। शरीरं च सर्वेषां सुखदुःखादीनां सांसारिक-भोग्य-वस्तूनां च भोगायतनम्। एव मेव सर्वेषामेव पुण्यापुण्यकर्मणां धर्मार्थकामानां त्रिवर्गाणां सकलनिःश्रेयसकरस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मोक्षस्यापि साधने शरीरमेव हेतुर्विद्यते । यदि च दोषविरहितं यन्त्रमिव त्रिदोष-रहितं शरीरं च स्वस्थं भवेत्तर्हि सर्वाण्यपि कार्याणि सुखेनैव साधयितुं शक्यते । अस्वस्थे शरीरे तु न किमपि कार्यं कर्त्तुं पार्यते । एवं च धर्मार्थकाममोक्षा अपि स्वस्थशरीरेणैव साधयितुं शक्यन्ते ।

किंच धर्मार्थकाममोक्षाख्येषु पुरुषार्थचतुष्टयेषु जीवनस्य प्रथमपुरुषार्थो धर्माख्यः सर्वेषाम् आचार-विचाराणां लोकव्यवहाराणां च मूलं वर्तते । तच्च धर्म-साधनं स्वस्थ-शरीराधीनमेव विद्यते । रुग्णो मानवश्च धर्मसाधने सर्वथाऽसमर्थ-तामेव भजते । एवं च व्याधि-व्याली-ग्रसितो दुर्वलो जनः समर्जितं धनमेव रक्षितुं न प्रभवति, कुतोऽर्थस्य समर्जने प्रभुः ? तथैव सांसारिक-भोग्य-विषयाणाम् उपभोगाय सततं चेष्टमाना अपि तेऽस्वस्थशरीराः पुरुषा नोपभोक्तुं शक्ता असमर्थतया । कथमस्वस्थस्य मोक्षोपलब्धिः ? नहि तेऽस्वस्थतया मोक्षोपयोगीनि प्राणायामादि-साधनानि साधयितुं क्षमा । एवं सर्वेषां धर्मार्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थ-चतुष्टयानां साधनाय स्वास्थ्यमेव मूलभूतं तत्त्वम् उपलक्ष्यते । अत एवोक्तं केनापि विदुषा—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

तत्र स्वास्थ्यस्य लाभाय वर्तते युक्ताहारविहारस्य महत्यावश्यकता । युक्ता-हारविहारेणैव शरीरस्य स्वास्थ्यलाभो भवितुं शक्यते । अतएव स्वास्थ्यलाभाय प्रयासः कर्त्तव्यः सदाऽस्माभिरिति । यतश्च स्वस्थशरीरो जनः लोकमिमं स्वर्लोकं विधातुं शक्नोति । अस्वस्थशरीरश्च जनः स्वस्य लालनं पालनञ्चापि कर्त्तुं न शक्नोति । किंच धर्माचरणार्थमपि स्वस्थ-शरीरस्य अपेक्षा वर्तते । न ह्यस्वस्थो जनः धर्मसारं तपः साधयितुं शक्यते । अतएव तपश्चरणसमये भगवतीं पार्वतीं प्रति वटुवेषधारिणा भगवता शङ्करेण गिराऽनया सुष्ठु चोक्तमित्थम्—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

तत्स्वास्थ्यं च व्यायामेनैव साधयितुं शक्यते । व्यायामस्तु शरीरस्य स्वास्थ्यस्य च कृतेऽपूर्वमेव रसायनं विद्यते । यथा रसायनं नियमपूर्वकं सेवनेनैव रोगानपसार्य शरीरस्वस्थ्याय सम्पद्यते तथैव नियमित-व्यायामादेव शरीरस्वास्थ्यं जायते रोगश्च अपाक्रियते । व्यायामेनैव शरीरस्य आलस्यम् अकर्मण्यता शक्तिहीनता दुर्वलता च नश्यति व्यायामादेव च जायते शरीरेऽपूर्वशक्तिसंचारः, वर्धते बुद्धिः बलञ्च । व्यायामादेव मनसि प्रसन्नता शरीरे तेजस्विता स्फूर्तिश्च समायाति, भवति च वलवद् शरीरम्; जायते जीवने नवोत्साहश्च । अत एवोक्तं व्यायामस्य प्रशंसां कुर्वता धीमता केनापि——

व्यायामपुष्टगात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशो बलम् ।
प्रवर्तन्ते मनुष्यस्य तस्माद् व्यायाममाचरेत् ॥

संसारेऽस्मिन् जाता अनेके महापुरुषाः, यैश्च व्यायामबलेनैव महती सफल-ताऽद्वितीया कीर्त्तिरपूर्वा शक्तिश्च समासादिता । सन्ति च निदर्शनभूतानि भीमा-र्जुन-प्रताप-पृथ्वीराज-शिवराज-प्रभृतयोऽनेके वीरप्रवराः । अधुनाऽपि वास्कोडिगामा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गामा-राममूर्ति-प्रभृतयोऽनेके वीरपुङ्गवाः, ये च व्यायाम-बलेन अतुलां शक्ति समुपलभ्य विस्मयकराणि कार्याणि अकुर्वन् । तेषां चरितं चाद्यापि व्यायामस्य महत्त्वं स्मारयति । छात्राणां कृते तु व्यायामः परमावश्यको वर्तते । व्यायामशीलस्य जनस्य सर्वत्रैव आदरो भवति । एवं व्यायामस्य महत्त्वं सर्वत्रैव दृश्यते ।

कश्च व्यायामः ? इति विचारचर्यायां शारीरिकश्रम एव व्यायामत्वेन परिगण्यते । शारीरिकश्रमश्च धावनेन, क्रीडनेन, कूर्दनेन, भ्रमणेन, मल्लयुद्धेन, कन्दुकक्रीडया, 'कबड्डी' इति क्रीडया च सम्पादयितुं शक्यते । इमे च सर्वे व्यायामशब्देनोच्यन्ते । तत्र 'कबड्डी' नामकेष व्यायामे स्वास्थाय महांल्लाभो दृश्यते । शरीरे स्फूर्तिः बलं च वर्धतेऽनया क्रीडया । धैर्यसाहसयोरपूर्वं सम्मेलनं वर्ततेऽस्यां क्रीडायाम् । यदैकः पक्षो विजयश्रीः लभते तदास्य द्विगुणोत्साहो वर्धते । शास्त्रेषु प्रतिपादितानि आसनानि चापि व्यायामेषु परिगण्यन्ते । श्रेष्ठश्च व्यायामः सूर्यनमस्कार इति प्रतिपादितम् । तत्र सूर्यनमस्कारस्य विधयोऽपि बहुधा प्रतिपादितं शास्त्रेषु । सूर्यनमस्कारेण च नश्यन्ति सर्वे रोगाः स्वास्थ्यलाभश्च जायते । किन्तु नियमपूर्वकं मुक्ते वातावरणे च प्रतिदिनं व्यायामः कर्त्तव्यः ।

एवं च शरीरे व्यायामस्य महत्यावश्यकता अनुभूयते । व्यायामाभावे तु शरीरस्य स्वास्थ्यं प्रतिदिनं क्षीयते, स्वास्थ्य-क्षये तु शरीरे रोगोदयो जायते । रोगाच्च शनैः-शनैः शरीरं नाशमुपयाति । 'जीवन्नरः भद्रशतानि पश्यति' इति विचार्य शरीरस्य रक्षायै प्रयत्नो विधेयश्च । तत्र शरीररक्षाया व्यायाम एव सुकरं साधनं वर्तते । व्यायामस्तु शरीरं रक्षति, रोगान् अपसारयति, वीर्यम् उत्पादयति, तेजस्वितां विदधाति, शक्तिं वर्धयति, दौर्बल्यं नाशयति, सफलता ञ्च प्रददाति । अतएव सर्वदा सर्वथा च व्यायाममाचरणीयं सुधीभिरिति ।

३३. चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च

(सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते)

इह सतत-परिवर्तन-शीले जगति कदाचित् सु स्य कदाचिद् दुःखस्य च प्राप्तिर्भवति इति जानन्त्येव सर्वे विद्वांसः । अतएव '**चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च**' इति नियमानुसारं मानवजीवने रथचक्रवत् सुखदुःखानि च क्रमशः आयान्ति यान्ति च । तत्र 'अनुकूलवेदनीयं सुखम्' इति लक्षणलक्षितं सुखं स्वभावत एव सर्वेषां स्पृहणीयतां 'प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्' इति लक्षणलक्षितं दुःखं सर्वेषां त्याज्यतां भजते । समये-समये च तत् सर्वान् जीवान् सुखयति पीड़यति च । किन्तु 'कालनियमो बलीयान्' इति नियमानुसारं स्वभावत आनन्द-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रदमपि सुखं यदा दुःखानुभवानन्तरं समायाति, तदा ग्रीष्मसंतापानन्तरं वृष्टि-समागमनमिव विशषतः सुखदं हर्षोल्लासप्रदं च भवति ।

प्रचलति प्रचण्डमारुते चण्ड-किरण-निकर-संतापिते सलिल-विरहिते मरुस्थले वर्षाया या महत्ता भवति, सा सतत-सलिल-संभृते अनूपे प्रदेशे न भवति । क्षुत्क्षामकण्ठो वुभुक्षितो जनः भोजने यादृशम् आनन्दम् अनुभवति, विविध-प्रकारकैः सुस्वादुभोजनैः आकण्ठं सम्यक् तृप्तो जनः तस्मिन्नेव भोजने न तादृशस्य आनन्दस्य अनुभूतिः कुरुते । जन्मत एव सुवर्णपात्रे दुग्धं पिबन् रजत-क्रीडनकैः वालक्रीडाम् अनुभवन् धनकुवेरसूनुः न वित्ताय महत्त्वं ददाति । किन्तु स्वेदधाराः प्रवाहयन् धर्मे श्रमं विदधन् येन केनापि प्रकारेण यथाकथञ्चित् जठरपिटकं पूरयन् श्रमिक एव जानाति वित्तस्य महिमानम्

एवं च इतस्ततः स्वच्छन्दं परिभ्रमन् यदृच्छया फलास्वादं कुर्वन् पक्षी स्वातन्त्र्यं जन्मसिद्धमिव मन्वन् न तादृशं सुखं गणयत, यादृशं पिञ्जर-मध्यवर्ती पालनकर्तुः कृपोपजीवी तदिच्छित-पदार्थोपभोक्ता खगो गणयति । एवं विचार-चारेण तत्त्वमिदं प्रतीयते यत् स्वभावत एव आनन्दप्रदता दुःखानुभवानन्तरं शतगुणा सहस्रगुणा वा जायते ।

किञ्च सुखं द्विविधं भासते प्रथमं स्वेष्ट-प्राप्ति-निमितं यथा वुभुक्षिताय भोजनप्राप्तेः, विरहिताय प्रियावाप्तेः, ग्रीष्मसंतापिताय तापनाशात्, रोगिणे स्वस्थतायाः समवाप्तेः, दरिद्राय नधिसान्निध्यात् । द्वितीयञ्च स्वानिष्टविनाशाद् यथा अत्यन्त-भार-पीडितो जनो भारापगमेऽहं सुखी संजात इति वदति । अतएव केचन दार्शनिका दुःखाभावमेव सुखस्य लक्षणं मन्यन्ते ।

वस्तुतः दुःखानन्तरं सुखमेव सुखपदवाच्यताम् अवलम्बते । स्वभावतः सुखी जनो न तादृशमानन्दंः मन्यते स तु तन्नैसर्गिकमेव मन्वन् यदा कदोपेक्षामपि तनुते । अतएव दुःखानन्त सुखस्य अनुभवकर्ता जनो यदा कमपि दुःखपीडितं पश्यति तदा स्वपूर्वावस्थां स्मरन् तस्य दुःखे दुःखमनुभवन् समवेदनां प्रकटयन् तस्य साहाय्यमपि कुरुते ।

एतामेव परिस्थितिं पर्यालोच्य दीपेन सह सुखस्य साम्यं वर्णयन् कवि-र्युक्तमेव भणति--

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।

किञ्च यथा कूपखानकः कूपं खनन् भृशं पांशुमृदावलिप्तः जातेन कूपजलेन सुस्नातः सुखं लभते । यथा च मतङ्गजानां गण्डस्थलानां भेदकः मृगेन्द्रः वृद्धा-वस्थामुपगतः अङ्कागतं लघुसत्त्वमपि हन्तुं न समर्थो भवति । एवमेव कश्चन सुखसम्पन्नोऽपि जनः पूर्वं सुखमनुभूतोऽपि दैवदुर्विपाकात् विपन्नावस्थामुपगतः कष्टमनुभवति । एतेन ज्ञायते सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखञ्च अनुभवन्ति मनुजाः । अत वोक्तम्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च ।

केचन विद्वांसः अस्मिन् विषये भाग्यमेव प्रबलं मन्वानः भाग्यचक्रमेव सुखदुःखयोः हेतुं वदन्ति—

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना,
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तः ॥

३४. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः

इह चराचर-प्राणि-संकुले विचित्रे जगति संदिग्धेषु विषयष्वेव भवति प्रमाणस्य आवश्यकता। यतश्च संदेहतरुमारूढो जनः न किमपि कार्यं निश्चितरूपेण कर्त्तुं शक्यते। संशयात्मा च मानवः कर्त्तव्याकर्त्तव्यं निश्चेतुं न शक्नोति। स च वारम्वारं शोचति यदनया रीत्या कार्यमिदं सम्पादनीयम्, उताहो अपरया रीत्या कार्य-विधानं श्रेयस्करं वा काचिदपरैव रीतिर्ग्राह्येति। चतुष्पथं समासाद्य दिग्भ्रान्तो मानवो यथा कया सरण्या गन्तव्यमिति स्वानुरूप-सरणि-निश्चये असमर्थः तत्रैव समुपविशति। तस्य गतिः रुद्धा भवति, न हि स पादविक्षेपमपि कुरुते। तत्रैवो-पविष्टस्य तस्य कालो व्यर्थमेव विगलति।

एवमेव संशयापन्नो जनो न हि किमपि विधाने समर्थो भवति। स तु किंकर्तव्य-विमूढतापरवशो जालबद्धो विहंगम इव क्रियाविहीनो जायते। तस्य गतेः संरोधे जाते लोकयात्रापि रुद्धा संभवति। अतएव भगवता प्रदर्शित-सन्मार्गावगतिना पार्थसारथिना प्रोक्तमेव—

"संशयात्मा विनश्यति"

पशु-खगाद्यपेक्षया बुद्धि-वैभव-बलेन सर्वश्रेष्ठस्य जीवस्य मानवस्य विशिष्ट-तेयमेव यदयं प्रत्यक्षदृश्यं लोकममुं प्रत्यक्षं वेदबोध्यं परलोकञ्च साधयति। यथोक्तम्—

या लोकद्वयसाधिका तनुभृतां सा चातुरी चातुरी।

किन्तु संशयाविष्टो जनो लोकस्य अस्य संसिद्धौ परलोकस्य च संसिद्धौ हताश एव भवति। किमिदं कार्यं न कार्यंवेति विकल्प-ग्राह-ग्रस्ते किमपि कुर्वन् वृथैव जीवनं यापयति। नास्य लोक-द्वय-हानिरेव जायते, अपितु यावज्जीवं चिन्ता-तुरोऽयं सर्व-संस्पृहणीयं सुखमपि न लभते। यथा च भगवद्गीतायामुक्तम्—

"नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः"

अतएव विज्ञानां जनानामिदं सर्वप्रथमं कर्तव्यं यत्तैः ज्ञानप्रदीपेन संशयध्वान्तं विधूय स्व-लक्ष्य-प्राप्तये समुद्योगो विधेय एव। अतएव भगवता मुकुन्देन प्रोक्तम्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमा तष्ठोत्तिष्ठ परन्तप !॥"

अत्रेदमवधेयं यज्ज्ञानिनः स्वज्ञानेन अल्पज्ञानां मोह-जनितं . शयं कामं छिन्दन्तु नाम परन्तु यदा ज्ञान-विशिष्टाः सन्त एव संशय-सम्पन्ना भवेयुः, तर्हि कथंकारं तदज्ञानस्य निवृत्तिर्भविष्यति । अस्यां परिस्थतौ सन्तः स्वान्तःप्रामाण्येन कर्तव्य-विनिश्चयं प्रकुर्वन्ति

अवेदं तत्त्वं यत् पामरस्यापि जनस्य हृदिस्थ आत्मा तं पापपरायणं विलोक्य तत्पूर्वमेव प्रतिषेधति । कश्चिदपि साधारणोऽपि मानवो यदा पापकर्मणि प्रवृत्तौ विचारयति, तदैव ब्रह्मस्वरूपो विज्ञानमय आत्मा तस्मै सन्मार्गं प्रदिशन् तस्मात् कुकृत्यात् तं पराङ्मुखीकर्तुं समादिशति। पापपरायणो जनो लोभ-काम-क्रोधादि-ग्रस्तः तमात्म-निर्देशम् अशृण्वन्निव समुपेक्ष्य प्रवृत्तो भवति दुष्कार्ये ।

एवं सिद्धयतीदं तत्त्वं यदात्मा सर्वस्मै सन्मार्गोपदेशं करोत्येव। सतां तु मानसं रजो-दोषादि-विहीनं मानसमिव निर्मलं विराजते । यस्मिन् प्रतिविम्बिते कार्ये सदसतोः सुस्पष्टा प्रतीतिः भासते । तां भासमानां प्रतीतिं विचार्य सन्तः कार्य-करणे प्रवृत्ता भवन्ति ।

शास्त्रेषु सर्वत्रैव दृश्यतेऽयं पन्था यत्संदेहकाले जनाः स्वीयानां पूर्वजानां गुरूणां महात्मनां सदाचारवतां सतां सरणिमेव अनुसरन्ति ।

अत्रायमेव हेतुः यन्मनो-दूषकयोः रजस्तमसोरभावात् तेषां निर्मले सत्त्व-गुण-मये मनसि सत एव तत्त्वस्य मानं जायते, अतएव सन्तः सन्देहकाले मनो-मन्दिरे सावधानतया शास्त्र-विचाराणां गुरूपदेशानां सदाचाराणां सम्मेलनं कुर्वन्ति तद-नुरोधेनैव तदाज्ञया कर्तव्य-निर्धारणं विधाय प्रवृत्ति-परायणतां गच्छन्ति ।

यथा कमलिनी भुवनभास्करं भास्करं विना कदापि विकासं न भजति, यथा वा कुमुदिनी सुधाकरं विना न स्मितं करोति, तथैव सतां मानसं स्वतोऽपि दुर्जनाचरिते पथि न चेष्टते गन्तुम् । यथा कमल-विकासेन सूर्योदयस्य अनुमितिः जायते, तथैव स्वमनसः प्रवृत्या तत्कार्यस्य स्वानुरूपतामपि निश्चिन्वति सन्तः । यतो हि तेषामयं दृढ़ो विश्वासो विजृम्भते, यदस्माकं मनः न असन्मार्गे गन्तुं कदापि प्रवृत्ति लभते ।

अभिज्ञानशाकुन्तले अज्ञात-कुल-शीलायां शकुन्तलायाम् अनुरक्तं स्वीयं स्वान्तं विनिभाल्य किमयं क्षत्र-ग्रहण-योग्या न वेति सन्देहे राजर्षिणा दुष्यन्तेन स्वमनो-ऽनुवृत्या तस्याः क्षत्र-ग्रहण-योग्यता निश्चितेति सर्वं प्रतिपादितं कविकुलगुरुणा श्रीकालिदासेन—

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः

अमुष्मिन् परस्पर-रुचि-वैचित्र्य-चर्चिते संसारे प्रायः सर्वेषामेव जनानां चेतसि संदृश्यते निराबाधा स्वीया सम्मानेच्छा । यथा विविध-क्षेत्रेभ्यः विनिःसृतानां सर्वथा विलक्षण-स्वभावानां विभिन्न-दिग्गामिनीनां सर्वासामेव स्रोतस्विनीनां सागर एव संगमस्थानम्, तथैव सम्मानस्याभिलाषोऽपि सर्व-जन-कामनानां संगम-स्थानमिति निःशङ्कं कथयितुं शक्यते । किन्तु विरला एव ते जना ये विचारयन्ति तत्त्वमिदं-यत् पूजा वयसा वपुषा वाचा जन्मना लिङ्गेन देशेन वा न भवति, किन्तु पूजा-निदानीभूता गुणा एव वर्तन्ते ।

अस्मादेव कारणाद् ये जन्मादिना स्वस्य आदरम् अभिलषन्ति, ते निराशा-भाजनताम् एव अवलम्बन्ते । यतो हि कलङ्काङ्कितेन क्षयशीलेन दोषाकरेण स्व-शैत्य-गुणाधारतया भगवतो शङ्करस्य शिरःस्थितिं संप्राप्य तस्मै "चन्द्रार्ध-चूडामणिः, मृगाङ्कमौलिः" इत्यादि-नामानि प्रदत्तानि । अतो निज-सम्मानाभिला-षिभिः गुण-ग्रहण-प्रयत्नो विधातव्य इति प्रतिपादयन् कविवरो युक्तमेवाह—

"गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् ।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोरलङ्घ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम् ॥"

विषयेऽस्मिन् सन्ति बहूनि तानि पुराणानि नवीनानि च निदर्शनानि । उपनिषत्सु मैत्रेयी-गार्गी-वाचक्नवी-प्रभृतीनां ब्रह्म-ज्ञानवतीनां नारीणां सम्मानं महर्षिभिरपि विहितम् । क्षत्रिय-कुल-सम्भवेन विश्वामित्रेण तपोविद्या-बलादेव दुर्लभा ब्रह्मर्षि-पदवी समवाप्ता । दस्यु-कर्म-निरतेन पाप-परायणेन वाल्मीकिना गुणगौरवा-देव भुवन-वन्दनीया आदिकविता समधिगता । विविधेषु वयोवृद्धेषु ब्राह्मणेषु मुनिमण्डलेषु विद्यमानेष्वपि षोडश-वर्ष-देशिकस्य श्रीशुकदेवस्य परीक्षितेन कृतं सम्मानं वयोविहितां पूज्यतां रुणाद्धि । महत्कुरूपस्य अष्टावक्रस्य विदेहेन श्रीविदेहेन विहितो महान् आदरो वपुःसौन्दर्यस्य महत्त्वम् अधरयति ।

एवमेव चाणक्यं कुरूपं मत्वा मध्येसभं धन-मदान्धेन नन्देन यदपमानं कृतं तेनैव सकुलं नन्दं स्मृतिशेषं विधाय शारीरक-सौन्दर्यापेक्षया आन्तरिक-गुणानां गौरवं प्रमाणितम् । बालस्य अभिमन्योः, ध्रुवस्य, शंकराचार्यस्य च अद्यावधि निरवच्छिन्नं प्रवहन्ती पावन-कथा-मन्दाकिनी वयोकृतं गौरवम् अविचारित-रमणीयं प्रतिपादयति ।

यदि च कश्चिज्जनो वेषादिगौरवेण जनाकर्षणं कर्तुं प्रयतते तर्हि वेषादि-मान्यतया प्रथमं समायान्ति सविधे मुग्धा मानवाः, किन्तु यथा-यथा याथार्थ्येन परिचिता जायन्ते तथा-तथा तेषां हृदये श्रद्धायाः स्थाने घृणा शनैः-शनैः संजायते ।

अतएव वस्तुतः पूजेच्छुना जनेन गुणसंग्रहः कार्यः, एतदनन्तरं विकसद-मन्द-मरन्दारविन्द-सौगन्ध्येन चञ्चरीका इव गुण-ग्राम-गरिम्णा समायान्ति शरणं शतशः सहस्रशो मनुजा, ये पूजया स्वं सौभाग्यं मन्वाना तद् दर्शनमपि देवदर्शनमिव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्यन्ते । गुणाभिरामाय जनाय नास्ति प्रदर्शन-प्रचारादेः मनागप्यपेक्षा, तेषां तु स्वयमेव जाते विकासे कथनादिकं निष्फलमेवेति युक्तमभिहितं केनापि—

यदि सन्ति गुणाः पुंसां प्रकाशन्ते तदा स्वयम् ।
नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते ॥

कदाप्यदृष्टपूर्वस्य नाममात्रणैव श्रुतस्य भगवतो रामचन्द्रस्य लोकोत्तरैः गुणैः समाकृष्टो विभीषणो निजसहोदरं प्रवल-पराक्रमिणं लोकरावणं रावणं विहाय शरणागतिम् आजगामेति कथा पारिवारिक-सम्बन्ध-निवन्धनां पूज्यतां प्रतिषेधयन्ती गुणास्पदत्वमेव तस्याः सुस्पष्टं ब्रूते ।

न केवलं भारतीयानां विदुषामेवात्र सम्मतिः, किन्तु विषयेऽस्मिन् सर्वेषामेव विचारवतां जायते स्वयमेव ऐकमत्यम् । यतो सर्वेष्वेव देशेषु कालेषु च तादृशानि निदर्शनानि निभाल्यन्ते यानि विनाशयन्ति विमतानि । प्रदर्शित-सुनय-सृतौ मनुस्मृतौ महत्त्वविषये सुस्पष्टमेव मतमिदम् उट्टङ्कितं यत्केवलमेव महत्त्वकारणं विद्यादि-गुणवत्वमेव नहि वयोवृद्धया श्वेतकेशैर्धनैः वान्धवादिभिः वा किञ्चिदप्यस्ति तत्—

"न हायनैर्न पलितैः न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥"

अतएवोत्तररामचरिते भगवत्या अरुन्धत्या पतिव्रत-पङ्क्ति-पावन्या जानक्या विषये यत् कथितं तत् सयुक्तिकं सुनिश्चितमेव—

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।"

✦✦

३६. सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति

इह सुख-दुःख-समवाये वहुविध-वैभव-विभूषिते संपद्विपद्बहुले जगतीतले दृश्यन्ते वहुविधाः मानवाः । तत्र केचन वैभवैः विभूषिताः सुखेप्सवः सुखैक-साधन-पराः वित्तार्जन-तत्पराः सन्ति सुवहुशो दिवानिशम् । अपरे च वित्ताभावाद् दीनदीनाः, क्षीणक्षीणाः कृपणकृपणाः, मलिनमलिनाः, धनासादनाय चेतस्ततो भ्रमन्तः सीदन्तश्च दृश्यन्ते । "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गं न च वयः" इति यदुक्तं तद् व्यभिचारि वचः । यतश्चाधुनिके युगे न गुणवतां क्वचिदादरः सम्मानञ्च दृश्यते, दृश्यते च सर्वत्र धनवतामेव समादरः सम्मानं पूजा च । किंच आधुनिके वैज्ञानिक-युगे सिध्यति च सर्वमपि कार्यं विज्ञानवलेन, विज्ञानञ्च विपुल-वैभव-साधन-साध्यम् । एवं च दया-दान-दाक्षिण्य-वैदुष्य-कौलीन्यादि-गुणाः वित्तवत्सु एव दृश्यते । एतत्सर्वं विचार्यैव भर्तृहरिणा प्रोक्तम्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ।।

अत्र च काञ्चनशब्दो धनस्योपलक्षणमेव । अर्थो वित्तं काञ्चनञ्चेति धनार्थवाचिनः शब्दाः । एवं च सर्वेषां लोक-व्यवहारणाम् आहार-विहारादीनां शिक्षा-दीक्षादीनां च मूलसाधनं वित्तमेव । किं च महतोऽपि महीयसाम् लघोरपि लघीयसां कर्मणां सिद्धिः वित्तायत्तैव । सर्वे उद्योगाः, सर्वाणि विकास-साधनानि, सर्वाणि निर्माणकार्याणि, सर्वे च वैज्ञानिका आविष्काराः वित्तसाध्या एव सन्ति। किं बहुना सर्वमपि समीहितं कार्यं च साधयितुं शक्यते वित्तेनेति ।

किञ्च धर्मार्थकामाख्येषु त्रिवर्गेपु वित्तस्यैव प्राधान्यं विद्यते । यतश्च अर्थादेव धर्मकामौ सिद्धचतः । अर्थाधीनान्येव सर्वाणि धर्म-साधनानि । यावन्ति च धर्म-कार्याणि सन्ति तत्सर्वाणि धनेनैव सिद्धचन्ति । इष्टापूर्तानि दान-यज्ञादीनि वापी-कूप-तडागादि-निर्माणादीनि च कार्याणि, अतिथिसेवादयो मानवधर्माश्च धनेनैव पूर्यन्ते ।

वित्तात् कामसिद्धिश्च प्रत्यक्षैव, भोग-विलास-साधनानि शृङ्गारादि-प्रसाधन-द्रव्याणि अन्यदुपभोग-योग्यानि पदार्थजातानि च वित्तेनैव प्राप्यन्ते । निखिल-सौख्यकराणि सर्वानन्दमयानि दुःख-निवृत्ति-कराणि च साधनानि वित्ताधीनान्येव । चेतोहराः रतिरूपा अपि सुन्दर्यो युवतयो वामलोचनाश्च गुणहीनमपि कुरूपमपि वित्तवन्तं पुरुषमेव कामयन्ते । वित्तमेव मानवजीवनं मधुरयति रसयति रमयति तरलयति च ।

नास्ति किमप्यासाध्यमर्थवताम् । वित्तबलेन ते दुष्कराण्यपि सुकराणि विधातुं शक्नुवन्ति धर्मार्थकामानपि सेवितुमभिलषन्ति । वित्तवन्तो जनाः निर्बला अपि सबलाः, निष्कुलीना अपि कुलीनाः, कुरूपा अपि सुरूपाः, अदर्शनीया अपि दर्शनीयाः, निरलङ्कारा अपि सालङ्काराः, विगुणा अपि सगुणाः, अपण्डिता अपि पण्डिताः भवन्ति । गुणिनः कलाविदो विद्वांसः कवयो बलिनः कुलीनाः निर्धनाश्च धनाशया धनिनमेव समाश्रयन्ति । किञ्च नीचकुलोद्भवानामपि वित्तवतां सर्वत्र समादरः सत्कारश्च भवति । तस्य सर्वे मित्राणि बान्धवाश्च जायन्ते । यथा चोक्तम्—

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थः स पुमाँल्लोके यस्यार्थः स च पण्डितः ।।

निर्धनता तु सर्वापदामास्पदम् । यतश्च ते दरिद्रयानल-पीडिताः दारिद्रय-दानव-ग्रसिताः क्षुत्क्षामकण्ठाश्च इतस्ततो भ्रमन्तः क्रन्दन्तश्च दृश्यन्ते सुबहुशो दिवा-निशम् । धनाभावाच्च ते नानाविधान् कष्टान् अनुभूयमानाः परेषाम् अवमानना अपि तूष्णीं सहमानाः महता श्रमेण सततसेवारताः निकृष्टमपि कार्यं कुर्वन्तोऽवलोक्यन्ते । गुण-गण-गरिमालङ्कृता अपि सद्विद्या-विभूषिता अपि सदाचार-निरता अपि कुलीना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपि ते धनाभावाद् असम्मानिताः भवन्ति । किञ्चार्थवन्तोऽपि जनाः पश्चदर्थविकलाः तामेव दुरवस्थां लभन्ते । यथा चोक्तं भर्तृहरिणा—

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
ह्यन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

एवं च लोके वेदे सर्वत्रैव दृश्यते वित्तस्य महत्त्वम् । वित्तवन्तो जना कृतापराधा अपि, विहितपापाचारा अपि, नित्याकार्यकार्यानुष्ठानपरा अपि स्वीयानपराधान् पापाचारांश्च धनबलेन तिरोहितुं शक्नुवन्ति, स्वांश्च सदोषानपि निर्दोषान् प्रख्यापयन्ति, अलीकानपि सत्यापयन्ते, यथा चोक्तं ईशावास्योपनिषदि—

'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखम् ।'

सुवर्णमयेन पात्रेण अर्थात् सुवर्णादिधनेन उत्कोचादिदानेन सत्यस्य मुखं तिरोहितं भवति । एवं च सर्वत्रैव वित्तस्य महत्त्वं वर्णयता केनचिदुक्तम्—

टका धर्मः टका कर्म टका हि परमं तपः ।
यस्य गेहे टका नास्ति हा टका टकटकायते ॥

३७. कः परः प्रियवादिनाम्

नाना-जीव-जालावृते जगतीतले निवसतो विरक्तिमनुरक्तिं वा भजतो जनस्य केचित् सुहृदः, अपरे शत्रवः, इतर उदासीनाः इति त्रयः पक्षाः स्वत एव जायन्ते । नहि केनापि विधिना प्रक्रियैषा प्रतिकर्तुं शक्या । एतामेव नैसर्गिकीं प्रवृत्तिं निभाल्य निर्मितो बहुचर्चितोऽयं श्लोकः समायाति मनसि—

"मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कार्याणि कुर्वतः ।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः मित्रोदासीनशत्रवः ॥"

इत्युक्तदिशा सततमेव ब्रह्मास्वाद-परायणस्य मुनेरपि शत्रूणां विनिन्दकानां समुत्पत्तौ सत्याम् अनवरतमेव स्वार्थ-मात्र-परस्य संसाररतस्य जनस्य स्वाभाविक्यैव शात्रव-सम्पत्तिः । नहि कोऽपि तादृशो भाग्यवान् विरचितो विधात्रा, यं प्रति समेषाम् एषां जनाना स्नेहप्रवाहः प्रसरति, यं प्रति सर्वे श्रद्धां संधारयन्ति, यं प्रति च सर्वे प्रेम-पीयूष-पूर्णा भवन्ति ।

किन्तु सज्जनैरेका प्रिय-भाषण-रूपा सा राजसरणिः समुपदिष्टा याम् अनुसरतो जनस्य सर्वे एव प्राणिनः स्वतः प्रणयपूर्णा भवन्ति । यः सर्वदैव सर्वान् प्रति प्रियमेव वक्ति तस्य न कोऽपि शत्रुः तिष्ठति, न वा कोऽप्युदासीनतां कलयति । किन्तु तत् प्रिय-भाषण-प्रसक्ता सर्व एवात्मरूपेण रक्ता स्नेहरसाप्लुता दृश्यन्ते । मनुष्यस्य तु वार्ता दूरे परं तिरञ्चोऽपि अत्रोदाहरणताम् भजन्ते । यतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोकिलो मयूरो वा न किमपि कस्मैचिदपि ददाति, न वा गर्दभः कस्यापि किमपि हरति, किन्तु मधुर-भाषणेन कोकिलादीनां सत्कृतिः क्रियमाणा दृश्यते। न केवलम् अस्मिन्नेव काले किन्तु प्राचीनकालेऽपि महीयसां विदुषां परमशक्ति-सम्पन्नानां राज्ञां च निवासस्थलेषु शुक-सारिकादीनां समुपस्थितिः तत्त्वमिदमेव द्रढयति, यत्सत्कृतेः मूलभूतं वीजं मधुरं-भाषणमेव। कटुभाषणेनैव काकस्य खरस्य वा स्थाने स्थाने क्रियमाणा कुत्सापि कटुभाषणं तिरस्कृति-निदानं वदति। सैषा परिस्थितिः केनापि विदुषा साहित्यरूपेणेत्थं वर्णिता—

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं
वाक्पारुष्याच्चोपकारोऽपि नेष्टः।
किं तद् द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं
को वा लोके गर्दभस्यापराधः॥

कटुभाषणे संरक्तस्य जनस्य वान्धवा अपि शात्रवत्वम् अवलम्वतो दृश्यन्ते तर्हि इतरेषान्तु वार्तैव का। अत्रेदं कारणं यन्निशितेन शास्त्रेण विहितस्यापि व्रणस्य सर्वथा सदैव गम्भीरता न भवति। गम्भीरोऽपि स समुचितौषधादिसेवनेन परिचर्याया च रोहति। किन्तु वाचा विहितस्य शल्यस्य सदैव गम्भीरतैव भवति यावज्जीवञ्च स दुनोति मानसम्। समये-समये च पीडयन् स मानसं विमानसं विधत्ते।

अतएव शस्त्रकृत-व्रणापेक्षया वाक्क्षतस्यैव अधिक-पीड़कता वर्णिता। यथोक्तं केनापि कविना—

"छिन्नं रोहति खड्गेन शरैर्विद्धञ्च रोहति।
वचो दुरुक्तं वीभत्सं वाक्क्षतं न प्ररोहति॥"

यथा कटुभाषणेन सर्वत्र दुःखमेव जायते, सर्वे शत्रव एव भवन्ति, तथैव मधुर-भाषणेन सर्वे शत्रवोऽपि सुहृद्भावं समाश्रयन्ते, सर्वत्र सुखमेव सरति। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" इति रीत्या विविधानां जनानां वशीकारो वाञ्छितश्चेत् तर्हि मनुजेन सदा मधुर-भाषणेनैव व्यवहारो विधातव्यः। साधुशिरोमणिना गोस्वामिना श्रीतुलसीदासेन इदमेव वर्णितम्—

"तुलसी मीठे वचन सों सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरन इक मन्त्र है तज दे वचन कठोर॥"

भारतीयं नीतिशास्त्रं सत्यभाषणस्य माहात्म्यं वर्णयन् सत्येन सह प्रियत्वस्यापि आवश्यकत्वं समुपदिशन् मधुरभाषणस्य सत्यभाषणेन सार्धं समतामेव वर्णयति—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्"

पाण्डवानां वनवासे राज्यापहरणे भयङ्करे महाभारताख्ये भारतभुवो रक्तस्नान-सम्पादके युद्धे च दुर्योधनं प्रति पाञ्चाल्याः कटुभाषणमेव वीजमिति न तिरोहितम् इतिवृत्तविदां विदुषां कृते। स्तुतिरूपेण मन्त्ररूपेण वा मधुर-भाषणेनैव मोहिता महनीया देवा अपि मनुष्यस्य समभीप्सितं दुर्लभं पदार्थमपि दिशन्तीति विदन्त्येव वुधाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्यत्रापि मधुर-भाषण-लाभस्य बहूनि निदर्शनानि दृश्यन्ते कटुभाषणेन च पदे पदे प्रस्खलन्तो दुःखम् अनुभवन्तो जना विलोक्यन्ते एव। इमां सर्वामेव वस्तुस्थितिं विचार्य सर्वजन-प्रियता-कामेभ्यो जनेभ्यो निखिल-वशीकरण-मन्त्रस्य मधुर-वचनस्यैव प्रयोगोऽभिहितो नीतिविशारदैः विद्वद्भिरिति।

३८. आर्जवं कुटिलेषु न नीतिः
(शठे शाठ्यं समाचरेत्)

विविध-वैचित्र्य-चर्चिते विश्वविपिने यया पद्धत्या जनः स्वाभीष्ट-सिद्धि-सम्पादने साफल्यभाग् भवति, सैव पद्धतिः तत्कृते विद्यते गमनीया सेवनीया च। यथा विविधेषु गन्तव्य-स्थलेषु विचित्राणि साधनानि यानानि च दृग्गोचरतां समायान्ति, तथैव व्यवहार-क्षेत्रेऽपि विविधिजनेषु विविधा व्यवहार-मार्गाः प्रकाशन्ते।

एवं सर्वत्र प्रशंसितमपि सारल्यापरपर्यायं 'आर्जवं' कुटिलेषु जनेषु सर्वथा-नुपयुक्ततया व्यर्थमेव। मानापमानयोः लाभालाभयोः सिद्धयसिद्धयोश्च समभाव-युक्तानां लोकातीतानां महात्मनां कृते भवतु नाम सर्वत्रैव आर्जवस्योपादेयता, किन्तु स्वसिद्ध-कामानां प्रयत्न-निष्ठानां सामान्यानां जनानां कृते तु तदग्राह्यमेव वर्तते। अतएव सत्यमेवोक्तम्—

'आर्जवं कुटिलेषु न नीतिः'

मर्यादापुरुषोत्तमेन लोकाभिरामेण श्रीरामेणापि बालिवधे एनामेव नीतिं स्वीकृत्य प्रदर्शितं यत्साध्यानुसारम् एव साधनं सिद्धिसाधने समर्थो भवति। महा-भारते युद्धे स्वाधीनकालस्य गङ्गासुतस्य भीष्मस्य, सम-विद्या बलस्य प्रबलस्य सूर्यसुतस्य कर्णस्य च वधार्थं युद्ध-नियमान् समुल्लंघ्य स्वलक्ष्य-साधनता समुपदिष्टा श्रीकृष्णेन पार्थाय। एवमेव जयद्रथ-वध-प्रतिज्ञां भग्नामिव विलोक्य कृत-मरण-वरणस्य त्यक्त-रणस्य विपर्यस्त-पणस्य सव्यसाचिनो रक्षणार्थं भुवन-भास्करस्य भास्करस्य भासां मायया समाच्छादनमपि पुष्णाति तथ्यमिदमेव।

विचारयन्तु विज्ञा यद् विश्वविश्रुतो राजनीतिज्ञः चाणक्यो यदि केवलमेव सारल्यानुगामी भवेत् तर्हि नहि भारत-भूमेरुद्धारो नन्दविनाशः चन्द्रगुप्त-साम्राज्यं कथमपि भवितुं शक्येत। राक्षस-सदृक्षे नीति-नय-दक्षे विपक्षे सत्यपि तेन तथैव कुटिलताङ्गीकारेण लोकातिशायिनी सफलता कीर्तिश्च समवाप्ता। अतएव साध्विदमुच्यते—

'शठे शाठ्यं समाचरेत्'

एवं च साध्यानुसारं साधन-चयन-चतुराणां जनानां हस्तगता सिद्धिः घुणाक्षर-न्यायेनैव भवति। अस्मादेव कारणात् सर्वत्रैव एकविधामेव व्यवहृतिं विदधन्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्यः कथमपि सफलता-सम्पन्नो भवितुं न पार्यते । "मोहम्मदगोरी" सदृशं कुटिलतमं शत्रुं परिलभ्यापि एकविंशतिवारं आर्जवेन व्यवहरता श्रीपृथ्वीराजेन न केवलं स्वीयैव, अपि तु भारतभुवो महती हानिर् विहितेति वदत्येव इतिवृत्तम्। स्वातन्त्र्य-प्रेम-पीयूष-पावितात्मना प्रबल-प्रतापेन महाराणाप्रतापेन आर्जवेनैव व्यवहरता न तादृशी सिद्धिः समधिगता, यादृशी सिद्धिः कुटिल-हृदयेषु दुर्दान्तेषु यवनेषु तदनुरूपमेव व्यवहारम् आचरता हिन्दूधर्म-रक्षण-परायणेन महाराजेन वीर-शिवराजेन समवाप्ता ।

वर्तमानकालेऽपि भारत-पाक-युद्धे पाकिस्तानेन सहसैव भीषणतमं महद् आक्रमणं विदधता विचारितमेव मनसि भारतभूः विपत्ति-सागरे मग्ना स्यात्; किन्तु प्रथममेव सावधानेन देशरक्षैकतानेन प्रबलेन भारतीयबलेन तदनुरूपामेव युक्तिम् आश्रित्य ततोऽपि भयङ्करं प्रत्युत्तरं तद् दत्तं येन विपन्नं पाकिस्तानं विगतमानं बभूव । तत्कालीनस्य सर्वेश्वरस्य सेनाधिनायकस्य याहियाखानस्य नामापि न श्रूयते, सहस्र-वर्ष-पर्यन्तं युद्धाकांक्षी वावदूक-विशारदोऽपि भुट्टो भेजे शरणागतिं शिमलायाम् ।

न केवलं राजनीतौ मानवेष्वेव नियमोऽयं प्रचलति, परन्तु सार्वत्रिकी वर्ततेऽस्य नियमस्य व्यवहारोपयोगिता । न हि प्रत्यहं पयःपानेन समाराधनेन स्तुत्या नमस्कृत्या वा पन्नगो वशताम् एति, दयां वा विधत्ते, किन्तु तत्प्रकृत्युपयुक्तेन दंष्ट्राभङ्गेन स यावज्जीवं वशताम् एति । शरीरे संलग्नं कण्टकं तावदेव रुजां विधत्ते यावद् द्वितीयेन कंटकेन तस्य समुद्धरणं न क्रियते । अतएव "**कण्टकेनैव कंटकम्**" इति प्रसिद्धा सूक्तिः राजते ।

सत्वरमेव विषस्य शान्तिः न केनापि उपायेन भवितुं शक्यते, किन्तु तदनुसारं तत्स्वभावमेव अपरं विषम् उपयुज्यमानं सहसा सर्वथा च शमयति । आयुर्वेद अतएव सर्वत्र विष-शान्ति-प्रकरणे विषस्यैव उपयोगो निर्दिष्टो वर्तते । अतएव '**विषस्य विषमौषधम्**' इति सूक्तिः समुल्लसत्येव राजनीतौ व्यवहारे लौकिक-जीवने च सर्वत्रैव ।

अतः सर्वेषामेव हितकामानां जनानामियं परमावश्यकी कर्तव्यप्रथा प्रथते यत्तैः कदापि कुटिलेषु कुटिलतामृते काप्यन्या कार्यप्रणाली न ग्राह्या । किन्तु कुटिल-सम्पर्के ध्येयम्, एतत् सर्वतोऽनवद्यं हृद्यं भारविपद्यमिदम्—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३९. वीरभोग्या वसुन्धरा

इह विविध-वैचित्र्य-चर्चिते परमात्म-लीलामये जगति अनेके प्रतापशालिनो नृपतयः समजायन्त । किन्तु ये नृपतयः शक्ति-सम्पन्नाः वीराश्च आसन्, त एव स्व-वाहु-वलेन वसुधायाः आधिपत्यम् अवाप्य समग्रस्यापि भूमण्डलस्य शासनं कुर्वाणाः परमानन्दम् अनुभवन्तश्च चिरकालं राज्यमकार्षुः । ये च शक्ति-विहीनाः नृपाः, ते स्वकीय-माता-पित्रादिभिः सर्माजितं राज्यमपि रक्षितुं न प्राभवन् । किं वहुना शक्ति विना तु धनवन्तः, बुद्धिमन्तः विद्वांसः, कलावन्तः तथान्ये केऽपि जनाः स्वसम्पत्ति-मपि रक्षितुं समर्था न भवन्ति ।

एवं च वलमेव मानवानां श्रेयः-प्रेयः-साधकं साधनमस्ति । वलवन्तस्तु सर्वदैव निर्वलानां शासकाः आसन् । वैदिककालेऽपि वलवन्तो निर्वलान् अपीडयन् । वलवन्तो वीरा एव शत्रूनाक्रम्य तेषां राज्य-सम्पत्तिम् अपहृत्य स्वायत्तं कुर्वन्तिस्म । किञ्च शक्तिमन्तो जना शक्तिहीनानां निर्वलानां सर्वस्वमपि अपहरन्ति । एवं शक्ति-हीनाः निर्वलाः पदे-पदे अपमानं विडम्वनां च प्राप्नुवन्ति, सुजन-समवाये तेषां गतिरपि न जायते, सर्वत्र च ते हीनतामेव अनुभवन्ति । अतः सर्वैरेव श्रेयोऽर्थिभिः जनः शक्ति-संचयोऽवश्यमेव कर्त्तव्यः ।

तत्र च सत्स्वपि वहुविधेषु साधनेषु ब्रह्मचर्यमेव वर्तते शक्त्युपार्जनस्य श्रेष्ठतमं साधनम् । अतएव ब्रह्मचर्येण शरीरे वलं वर्धते, उत्साहस्य आधिक्यं भवति, शरीरं नीरोगं कान्तिमयं च जायते । किं वहुना ब्रह्मचर्यवलेन देवाः मृत्युमपि अजयन् । यथा च उक्तम्—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।

किञ्च अस्मद्देशस्य रक्षणाय वीरपुरुषा एव अपेक्ष्यन्ते । धनिकान् विदुषश्च रक्षितुं त एव प्रभवन्ति, वीरा एव स्वदेशस्य गौरवं सम्मानं च वर्धयन्ति, धरायां धर्मं च प्रतिष्ठापयन्ति । एवं वीरतैव वर्तते जीवनस्य मूलभूतं वस्तु । वीराणामेव सर्वत्र समादरो भवति, सर्वे च वीरानेव अभिनन्दन्ति । वीरपुरुषाश्च यत्र कुत्रापि वसन्ति तमेव देशं स्व-बाहु-प्रतापार्जितं कुरुते । यथा चोक्तम्—

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥

संसारे ये च शक्तिसम्पन्नाः ते च साधनाभावेऽपि महन्महत्तरं कार्यं विधातुं शक्नुवन्ति । यथा एक एव सविता स्वकीयेन तेजसा सकलमपि विश्वं व्याप्नोति, एक एव अनङ्गः अङ्गरहितोऽपि सकलमेव भुवनं वशीकरोति, श्रीरामचन्द्रः एकाकी एव लङ्कां गत्वा सपुत्रकलत्रं लोकरावणं रावणं निहत्य लङ्काया राज्यं विभीषणाय प्रादात् । एवं च शक्तिमन्तो जनाः दुष्कराण्यपि कार्याणि साधयितुं प्रभवन्ति । सत्यमुक्तं च केनापि नीतिविदा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधिः,
विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद् राक्षसकुलं,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

अस्माकं देशः आदिकालादेव वीरताप्रिय आसीत् । साहित्येषु युद्धवर्णनेन ज्ञायत, यदस्माकं देशेऽनेके वीरपुरुषा अभूवन्, ये च स्व-बाहु-बलेन वसुधाया एकाधिपत्यमवापुः, येषां कीर्त्तिः देशे विदेशे चापि प्रस्फुरति, येषां वीरतामयं यशः सर्वत्र प्रसृतम् । एवं भूतानाम् अनेकेषां वीरपुरुषाणां चारित्र्येण विभूषितं जगदिदम् वर्तते ।

एवं दृश्यते लोके ये देशाः निर्बलाः शक्ति-विहीनाश्च सन्ति, तानेव देशान् वशीकर्त्तुं स्वकीये राज्ये स्थापयितुं च प्रयतन्ते शक्तिसम्पन्नाः वीरपुरुषाः । किन्तु ये शक्तिसम्पन्नाः सबलाः देशाः सन्ति, न तानाक्रमितुं कोऽपि चेष्टते ।

केचन नीतिविदः कथयन्ति––"यस्मिन् देशे वीरपुरुषाः स्थास्यन्ति, तत्र कोऽपि स्वप्नेऽपि दृष्टिपातमपि कर्त्तुं न प्रभविष्यन्ति, किन्नाम आक्रमितुम् ।" यतश्च वसुन्धरेयं वीराङ्गनेव सदैव वीर-पुरुषाणामेव वशे तिष्ठति, वीरानेव आलिङ्गते, वीरानेव उपभुङ्क्ते, वीरानेव सुखयति, वीरानेव रमयति । अतएव सत्यमुक्तं केनचिन्नीतिधुरन्धरेण––

वीरभोग्या वसुन्धरा

४०. विज्ञानस्य प्रगतिः

नाना-कर्म-प्रपञ्च-चतुरेऽस्मिन् विज्ञानयुगे वर्तते सर्वस्मिन्नपि क्षेत्रे विज्ञानस्य साम्राज्यम् । द्युलोकेऽन्तरिक्षे भूलोके पाताले स्थले जले दुर्गम-पर्वते दुरवगाहे सागरे भूगर्भे जलाभ्यन्तरे च सर्वत्रैव विज्ञानस्य गतिरवलोक्यते । नहि विज्ञानेन विना किमपि कार्यं साधयितुं शक्यतेऽधुना । मानवस्तु विज्ञानस्य दासोऽद्य संजातः। तेषां कृते तु विज्ञानमेव शरणम्, विज्ञानमेव मरणम्, विज्ञानमेव जीवनम्, विज्ञानमेवात्मा, विज्ञानमेव परमात्मा, विज्ञानमेव मनः, विज्ञानमेव इन्द्रियाणि, सर्वमपि जगदिदं विज्ञानमयम् एव संलक्ष्यते ।

अद्य तु जलान्तराद् विद्युत्शक्तिः निर्गृहीता विज्ञानेन । या तु परमात्मनः पराशक्तिः मायेव प्रकटित-विविध-स्वरूपा परिचारिकेव मह्यं प्रकाशं प्रयच्छति, स्नानाय जलम् उष्णयति, स्वल्पाहाराय सुष्ठु भोज्यं पाचयति, मनोविनोदाय ध्वनिवाहक-यन्त्रेण मधुरां गीतिं प्रसारयति, यातायात-साधनानि च सम्पादयति ।

यातायातक्षेत्रे च महती सफलता समधिगता विज्ञानेन । वैज्ञानिकैः विद्युत्साहाय्येन यात्रासौकर्याय द्रुत-गमन-शीलं वाष्पयानम् आविष्कृतम् । येन स्तोकेनैव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालेन दूरदेशान् अपि गन्तुं शक्नोति मानवः । आकाशचारिणां वायुयाना-नाम् आविष्कारेण च देशानां दुर्गमता दूरीभूता । वायुयानेन तु कतिपयैरेव अहोभिः विश्वयात्रा अपि विधातुं शक्यते । जलयानेन च दुस्तरमपि सागरम् उल्लंघ्य सहस्रयोजन-दूरान् देशान् गन्तुं शक्यते । विज्ञानस्यैव अयं प्रभावो यद्वयं स्थले मोटरयानेन धावामः, दुस्तरेऽर्णवे जलयानेन विहरामः, वायुयानेन अन्तरिक्षे खगवत् उड्डयनं कुर्मः, राकेट-यानेन तु ग्रहमण्डलेऽपि गृहाङ्गणवत् विचरामः ।

विज्ञान-प्रधानेऽस्मिन् युगे चलचित्रं मनोरञ्जनस्य महत्त्वपूर्णं साधनम् अस्ति । तत्र चित्रपटे विलोभनीयं दृश्यं विलोक्य श्रोत्रसुखदं मनोहरं गीतम् आकर्ण्य च परमानन्दम् अनुभवन्ति मानवाः । 'टेलीविजन' यन्त्रस्य आविष्कारेण निज-गृह-संस्थिता अपि निखिलस्य अपि विश्वस्य विभिन्न-क्षेत्रस्थं दृश्यं विलोकयितुं समर्था वयम् ।

एवमेव ध्वनि-वाहक-यन्त्रस्य आविष्कारेण वयं स्वभवनस्था एव दूरदेशानां विदेशानां स्वदेशस्यापि दैनिकान् समाचारान् शृणुमः । तथा च सुविख्यात-नेतॄणां भाषणानि मनोहराणि मधुरतराणि संगीतानि अपरान् अपि मनोरञ्जन-कार्य-क्रमांश्च श्रावं श्रावं मनो विनोदयामः । एवमेव स्वदेशस्य समाचारान् अपि देशान्तरेषु प्रसारयितुं शक्नुमो वयम् । दूरभाष-यन्त्रस्य आविष्कारोऽपि महल्लाभाय वर्ततेऽस्माकं कृते । तेन च सुदूरस्थैः जनैरपि निज-गृह-स्थितान् जनान् इव वार्तालापं कर्त्तुं शक्नुमः ।

चिकित्साक्षेत्रे तु भगवानेव वर्तते विज्ञानम् । मानवजीवने च चिकित्सा-शास्त्रस्य महत्यावश्यकता वर्तते । अतएव वैज्ञानिकैः सर्वेषां प्राणिनां कृते रोगाणां निदानानि विविधांश्च चिकित्सापद्धतय आविष्कृताः । चिकित्साशास्त्रेण च महा-मारी-विषूचिका-राजयक्ष्मादयोऽसाध्यरोगा अपि दूरीकर्तुं शक्यन्ते । शल्यक्रियायां तु महती सफलता प्राप्ता वैज्ञानिकैः । 'क्षकिरणम्' (एक्सरे) यन्त्रस्य आविष्कारेण शरीरस्थ-गूढ़-स्थानानां रोगाणां ज्ञानमपि सुकरं जातम् । 'एक्सरे' यन्त्रस्य साहा-य्येन भूमि-गर्भ-गतानां पदार्थानाम् अपि ज्ञानं जायते ।

कृषिक्षेत्रेऽपि महदुन्नतिः संजाता विज्ञानेन । कृषियोग्यानि वहुविधानि यन्त्राणि आविष्कृतानि वैज्ञानिकैरिति । तैः वैज्ञानिकयन्त्रैश्च महती सफलता समुपलब्धा कृषि-कर्मणि । कृषियन्त्रेण तु वृषभ-शत-कर्षण-योग्यानि क्षेत्राणि स्वल्पेनैव कालेन कृष्यते ।

विज्ञानस्यैव अयं महिमा यद् वयं विज्ञानबलेन सवृष्टि-झञ्झावातादीनां प्रकोपानां ज्ञानं पूर्वमेव ज्ञातुं शक्नुमः । मुद्रणकलाया आविष्कारेण सुदुर्लभानि महान्ति पुस्तकानि मुद्रयन्ते । वयन-यन्त्रस्य निर्माणेन च महर्घाणि वस्त्राण्यपि स्तोकेनैव कालेन वेतुं शक्यन्ते ।

युद्धक्षेत्रे तु महद्विस्मयावहा सफलता समधिगता । महायुद्धे प्रयोक्तव्यानि महान्ति दारुणानि प्रक्षेपणास्त्राणि विरचितानि वैज्ञानिकैः । एषु 'परमाणुबमः' दारुणतम आविष्कारः । तत्र परमाणुबमस्य प्रयोगेन स्वल्पेनैव कालेन शत्रुदेशान् नाशयितुं शक्यते । अनेनैव परमाणुबमेन द्वितीय-महायुद्धे जयप्राणस्य (जापानस्य) 'हिरोशिमा' महानगरी प्रध्वंसिता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततोऽप्यधिकं विनाशकारि पाशुपतास्त्रमिव जगत्संहारक 'उद्‌जनास्त्रं' विरचितम् । यस्य आविष्कारेण स्वदेशस्था एव वयं निखिलं विश्वमपि संहारयितुं शक्नुमः । तस्य उद्‌जनवमस्य विभीषकया समस्तमपि जगत् प्रकम्पते । तत्र खगवत् वियति समुत्पतन-शीलानां वृहत्परिमाणानां लघुपरिमाणानां च वहुविधानां युद्धोपयोगिनां वायुयानानां निर्माणमपि जातम् । वैज्ञानिकैस्तु 'राडार' नामकम् एकं नवीनं यन्त्रम् आविष्कृतम् । येन शत्रूणां वायुयानागमनं विज्ञाय मार्ग एव ध्वंसयितुं समर्था वयम् । तत्र युद्धोपयोगिनां दुर्गम-पथ-गमन-शीलानां दुर्ग-शकटानाम् (टैङ्कानाम्) आविष्कारोप्यभूत् । नौसेनाया प्रगतिरद्भुतैव वर्तते । तत्र दानव-निकायान् भीमकायान् युद्धपोतान् दृष्ट्वा वेपते मे हृदयम् । किंच जलाभ्यन्तर-सन्तरण-शीलानां जलनौकानाम् (पनडुब्बी) आविष्कारोऽतीव विस्मयावहः । एवं च सर्वविधेषु क्षेत्रेषु विज्ञानस्य प्रगतिरवलोक्यते ।

४१. चलचित्रम्

(मनोविनोदसाधनम्)

अस्मिन् विविधवैचित्र्याधारेऽपारे खलु संसारे नाना-चरित्र-शालिनां प्राणिनां मानव एव विवेकशालित्वेन श्रेष्ठः प्रेष्ठश्च वर्तते । तत्र सर्वेऽपि विवेकिनो जनाः श्रमार्ताः विश्रान्तये मनोऽनुरञ्जनार्थं च विनोद-साधनम् अन्वेषमाणा विलोक्यन्ते । तत्र च संसारिणो जनान् दुःखितान् शोकप्रपीडितान् चिन्ताग्रस्तान् कष्ट-पतितांश्च विलोक्य संजातदयः परमकारूणिको भगवान् परमेष्ठी तेषां मनोऽनुरञ्जनार्थं विविध-भाव-भासुरं लोक-विश्रान्तिदं श्रवणसुखदं मनोरमण-जननं नयनाभिरामं नाट्यं नामाद्वितीयं मनोरञ्जन-साधनं व्यरचयत् । यथा च नाट्य-शास्त्रे निगदितम्—

दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति ॥

कविता-कामिनी-हासेन कविकुल-विलासेन सरस्वती-कृत-दासेन कवि-कालिदासेन नाट्यस्य मनोविनोद-साधनत्वं वर्णयता साधूक्तम्—

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य वहुधाप्येकं समाराधनम् ।

किंच विविध-विचार-महितेऽस्मिन् वज्ञानिके युगे नाटककल्पं चलचित्रमेव सर्वाधिक-प्रचार-युतं मनोरञ्जनसाधनं विद्यत इति विदन्त्येव विज्ञा अविज्ञाश्च । प्रथमस्तु १८८९ ईसवीये वर्षे अमेरिकायां श्रीमता एडसिसमहोदयेन मूकं चलचित्रमाविष्कृतम् । १९१२ ईसवीये तु भारतवर्षे मूकं चलचित्रपटं निर्मितम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्ट्वा मूकं चलचित्रमिदं जनैः विचारितं यदि ध्वनिनाऽपि संयुतं स्याच्चलचित्र-मिदं, तर्हि कियत्समीचीनं भवेत् ।

एतदेव विचार्य वैज्ञानिकैः मूकभावम् अपास्य ध्वनिना संयोजितं चलचित्रम् । प्रथमस्तु अमेरिकायां ध्वनिसहकृतस्य चलचित्रस्य आविष्कारो जातः । तदनन्तरं १९२३ ईसवीये वर्षे भारते ध्वनि-सह-चरितं चलचित्रं विनिर्मितम् । तदात एव ध्वनिना संयुतं चलचित्रं सर्वान् जनान् मनोरञ्जयितुं प्रारभत् । शनैः-शनैः सर्वेषु देशेषु सर्वेषु नगरेषु च प्रचलितं चलचित्राणां प्रदर्शनम् ।

तत्र चलचित्रेषु गीतं नृत्यं वाद्यं हास्यम् अभिनयो क्रीडा हावभावादि-विलासा विविध-संग्रामा अन्यान्यपि प्राकृतदृश्यानि च याथार्थ्येन प्रदर्श्यन्ते । अधुना तु चलचित्रमेव कौतूहलस्य मनोरञ्जनस्य महत्त्वपूर्णं साधनं सञ्जातम् । तेन च मन्दादराः सञ्जाता नराः नाटकावलोकने । चलचित्र-पट-दर्शने च बद्धादरा अभूवन् सर्वे जनाः । यतश्चातीव रुचिकरं चित्त-विलोभनीयञ्च भवति चलचित्रम् ।

इदं चलचित्रन्तु दुःखोदधि-निमग्नानां शोक-सागर-निपतितानां श्रमार्तानां कौतुकिनां च कृते सञ्जीवनौषधितुल्यं सञ्जातम् । यतश्च ते सर्वाणि कर्माणि समस्तान् धर्मांश्च परित्यज्य सकौतुकं महता आदरेण चलचित्र-पटान् अवलोकयितुं गच्छन्ति । तत्र चलचित्रपटे च दृष्ट्वा मनोहरं रम्यं दृश्यं च प्रमुदिता भवन्ति सर्वे आबालवृद्धा युवानो नार्यश्च । तत्र च ते मधुर-मधुराणि संगीतानि शृण्वन्ति, मनोहारि नृत्यं विलोकयन्ति, नेत्र-विलोभनीयं प्राकृतिकदृश्यं च अवलोकयन्ति । एवं च श्रमकारिणो विद्या-व्यसनिनो विद्यार्थिनो बुद्धिजीविनो व्यापारिणश्च चलचित्र-पटानाम् अवलोकनेनैव मनोविनोदं कामयन्ते ।

इदं चलचित्रं तु न केवलं जनानां मनोरञ्जनाय एव, अपितु शिक्षाया प्रसाराय प्रचाराय चापि सुलभं साधनं विद्यते । अधुना तु चलचित्रद्वारा शिक्षा अपि प्रसार्यते । शिक्षालयेषु चित्रद्वारा शिक्षा वितीर्यते, सूचनाविभागेषु सूचना-प्रसारणाय चलचित्रस्य उपयोगः क्रियते, स्वास्थ्यविभागे च स्वास्थ्योपयोगि शिक्षाप्रदं च चलचित्रं प्रदर्श्यते, कृषि-कलोपयोगीनि साधनानि यन्त्राणि च साधु प्रदर्श्यन्ते चलचित्रेषु ।

बालानां कृते तु महदुपयोगि वर्तते चलचित्रम्, यतश्च तेषां बुद्धिः अपरिपक्वा भवति । तत्र चलचित्रेषु शिक्षासम्बन्धीनि चित्राणि प्रदर्श्य सारल्येन तेषां बुद्धिः परावर्तयितुं तथा च अध्ययनविषये तेषाम् अधिकां रुचि समुत्पादयितुं शक्यते । ग्रामेषु च चलचित्र-पट-प्रदर्शनेन प्रौढ़शिक्षायाः प्रचारोऽपि क्रियते । येन च अल्पज्ञा ग्रामीणा अपि शिक्षासु दक्षा भवितुं शक्नुवन्ति । एवं च चलचित्रद्वारा शिक्षाया प्रसारः प्रचारश्च यदि क्रियते, तर्हि सर्वेषां लोकानां महान् लाभो भवेदिति ।

अधुना च चलचित्रपटेषु अनभितम् अश्लील-चित्र-प्रदर्शनं क्रियते, केषुचित् चलचित्रेषु च नग्नचित्राण्यपि प्रदर्श्यन्ते । तानि लज्जाकराणि चित्राणि दृष्ट्वा युवत्यो युवकाश्च कुमार्गगामिनो भवन्ति । सम्प्रति तु सहस्रशो बालकाः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युवानो नार्यश्च चलचित्रपटेषु शृङ्गार-रस-परिपूर्णानि लोक-विनिन्दितानि दुर्गुण-मयानि अश्लीलानि चलचित्राणि विलोक्य स्वचरित्रमपि रक्षितुं न शक्नुवन्ति । यदि च अश्लीलादि-दोष-विर्वजितानि सदुपदेशपराणि सच्चरित्र-वर्धन-शीलानि चलचित्राण्येव प्रदर्शयेयुस्तर्हि महान् लाभो जायेत नास्त्यत्र सन्देहलेशोऽपि । तत्र चलचित्रस्य यथार्थतां वर्णयतोक्तं च--

चित्तं हि चयते यत्र लीयते विचिनोति च ।
त्रायते महतो त्रासात् चलचित्रं तत् कीर्तितम् ॥

४२. चन्द्र-यात्रा

(चन्द्रविजय)

'नास्ति किमप्यसाध्यं श्रमवताम्' इति विचार्य वर्धितोत्साहा मानवाः स्वबुद्धिवलाद् दुष्कराणि कार्याणि कर्त्तुं दुर्धर्षां च प्रकृतिमपि जेतुं नवनवानि दुःसाध्यकर्माण्यपि समाचरन्ति । न केवलं भूमण्डल एव किन्तु अन्तरिक्ष-मण्डलेऽपि विचरितुं तत्रस्थग्रहानपि जेतुं यतन्ते । तदर्थं सहस्रशो वैज्ञानिकाः रात्रिन्दिवं महता श्रमेण चेष्टमानाः दृश्यन्ते । अस्मिन्नेव उपक्रमे ते चन्द्रलोकमपि जेतुं प्रायतन्त । तत्र च ते सफलतामपि प्रापन् ।

१९६९ खीस्ताब्दे जुलाईमासस्य १६ तारिकायां नीलआर्मस्ट्रांग--माइकल कालिन्स--एडविनएलड्रिननामानः त्रयो वैज्ञानिका अपोलो-११ नामकेन यानेन चन्द्रमसं प्रति प्रस्थिताः । तत्र चन्द्रयानं (ईगलयानम्) मूलयानात् पृथक् भूत्वा १९६९ खीस्ताब्दे जुलाईमासस्य २१ तारिकायां चन्द्रवासर एव भारतीय-समयानुसारं पादोन-द्विवादन-वेलायां नीलआर्मस्ट्रांग-एडविनएलड्रिन-महोदयाभ्यां सह चन्द्रमसः निर्जले प्रदेशे शान्तिसागरेऽवातरत् । तदानीं माइकलकालिन्समहोदयः मूलयानोपर्यैव स्थित्वा चन्द्रमसः परिक्रमां कुर्वन्नासीत्

ततश्चन्द्रतलम् अवतीर्य आर्मस्ट्रांगमहोदयैः पृथ्वीं प्रति सन्देशः प्रहितः--"अस्माकं चन्द्रयानं सकुशलं चन्द्रतलेऽवातरत् । कुशलिनो वयं च । न कापि चिन्ता कार्या ।" पुनश्च चन्द्रतलात् पृथिव्याः वर्णनं कुर्वन्नाह--"इतः पृथ्वी अतिमहती चमत्कृता दिव्या च दृश्यते । चन्द्रतले तु स्थाने-स्थाने महत्महती शिला अवलोक्यते । कठोरश्च चन्द्रतलोऽत्र ।" तदनन्तरमेल्ड्रिनमहोदयोऽभाषत--"अतीव रमणीयं दृश्यम् । सर्वमपि वस्तु रमणीयं दृश्यते । इतोऽविदूर एव शोभते चित्रितं शिला-तलम् । चन्द्रमृत्तिका चन्द्रशिला च दीप्येते सूर्यस्य प्रकाशे ।"

ततः किञ्चिद् विश्रम्य भुक्त्वा च यान्त्रिकं नेपथ्यं परिधाय जीवनरक्षिकां रजतपेटिकां च पृष्ठोपरि निधाय आर्मस्ट्रांगमहोदयः एव प्रथमं चन्द्रतले स्वपदं न्यधात् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स च वामपादं चन्द्रतले निधाय अकथयत्––'यद्यपि मानवस्येदं लघु-कार्यं तथापि मानवतायाः कृते इदं महत्कार्यं विद्यते।' स च द्वाभ्यां हस्ताभ्यां चन्द्रयानं गृहीत्वेव कियद्दूरं प्राचलत्। तदनन्तरं एलड्रिनमहोदयोऽपि चन्द्रयानाद् बहिरागच्छत्। ततश्च द्वावेव महापुरुषौ कियत्कालं तत्रोषित्वा यन्त्रसाहाय्येन ततो धूलिं पाषाणादिकञ्च नीत्वा पृथ्वीं प्रत्यावृत्तौ। तत्र चन्द्रतले च एकं धातुफलकं स्थापयामास, यत्र लिखितमासीत्––'अत्रैव १९६९ खीस्ताब्दे जुलाईमासे पृथ्वीतलादागत्य मानवः प्रथमं चन्द्रतले पदं न्यधात्। सर्वेषां मानवानां शान्तिकामाः वयम् अत्रागताः।' तस्मिन् फलकोपरि त्रयाणाम् अन्तरिक्ष-यात्रिणां अमेरिकायाः राष्ट्रपतेः निक्सनमहोदयस्य च हस्ताक्षराणि सन्ति। ताभ्याञ्च तत्र भूकम्पयन्त्राणि लेसर-परावर्त्तक-यन्त्राण्यपि स्थापितानि।

तदनन्तरं १९६९ ईसवीये वर्षे नवम्बरमासस्य १४ तारिकायां चार्ल्स कोनरेड––एलनवीनरिचर्ड––एफ. गोर्डनमहोदयाश्च अपोलो-१२ नामकेन चन्द्रयानेन पुनः चन्द्रलोकं गताः। तेषु चार्ल्सकोनरेड-एलनवीन-महोदयौ तद्मासस्य १९ तारिकायां चन्द्राभूमाववतीर्य तत्रोपकरणानि स्थापयित्वा पुनश्च ततः प्रस्तरादिकम् आनीय रिचर्डगोर्डनमहोदयेन सह २५ दिनाङ्के पृथ्वीं प्रत्यागतौ।

पुनश्च एलन बी. शेपर्ड––स्टुअर्ड ए. रुसा––एडगरडी. मिचेलमहोदयाः अपोलो-१४ चन्द्रयानेन १९७१ खीस्ताब्दे फरवरी मासस्य १ तारिकायां चन्द्रलोकं प्रतस्थुः। तेषु एलनशेपर्ड-एडगरमिचेल-महोदयौ तद्मासस्य ५ दिनाङ्के 'फ्रामोरा' क्षेत्रे चन्द्रतले पदं निहितवन्तौ। ततश्च तावपि प्रस्तरादिकम् आदाय पृथ्वीं प्रत्यावृत्तौ। एवमेव १९७१ ईसवीयेऽगस्तमासे अपोलो-१५ चन्द्रयानेन चन्द्रलोकं गत्वा यात्रिणो मोटरयानेन चन्द्रधरातले भ्रमणे समर्था अभूवन्। अधुना तु वैज्ञानिकाः तत्र प्रयोगशालां स्थापयितुं सयत्नाः सन्ति। तत्र चन्द्रयात्रा-शृंङ्खलासु अपोलो-१७ नामकस्य यानस्य चन्द्रयात्रा मानवानाम् अन्तिमचन्द्रयात्रा आसीत्।

तत्र चन्द्रलोके जलं वायुश्च न वर्तते। तत्र तु धूलिः पाषाणमण्डलानि विवराणि च सन्ति। चन्द्रतलस्तु कठोरः, तत्रत्या धूलिश्च मरुभूमिरिवास्ति। अधुना तु वैज्ञानिकाः चन्द्रतलादानीतानां प्रस्तरादीनामन्वेषणे परीक्षणे च रताः सन्ति। इयं च सफलता मानवानां साहसस्य धैर्यस्य परिश्रमस्य विज्ञानस्य च महदुपलब्धिरस्ति।

++

४३. अस्माकं देशः
(भारत-महिमा)

समस्तस्यापि महीमण्डलस्य विद्यमानेषु विविधेषु देशेषु मूर्धन्योऽयं भारतवर्षः भारतवासिनां चरित्र-सुगन्धेन जनमनांसि मोदयन् राजते। भारतस्य महिमा न केवलं कपोल-कल्पितम् एव, अपितु संस्कृति-दृष्ट्या अपि वर्त्तते तस्य महत्त्वम्। यस्मिन् काले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सभ्य-मूर्धन्यानां देश-वासिनां पूर्वजाः दिगम्बराः आसन्, तस्मिन्नपि काले परम-पवित्रं साधु-चरित्रं सुसंस्कृति-संस्कृतं जीवनं यापयन्तिस्म भारतवासिनः। क्रमशः जाते सभ्यता-प्रसारे अस्यैव देशस्य संस्कृति-प्रकाशे दृष्टा लोक-जीवन-योग्या सुरम्या सरणिः अन्यदेशीयैः जनैरिति। यथोक्तं भगवता मनुना--

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

एवं च समस्तेऽपि संसारे मूर्धन्यतामापन्नोऽयं देशः प्राचीनकालत एव 'विश्वगुरुः' इति भव्योपाधेः विभूषित आसीत। स एवायं देशः यत्र च संसारं निःसारं मन्यमानाः प्रातःस्मरणीया ऋषयो मुनयश्च परःशतानि वर्षाणि तपांसि तप्त्वा प्राप्तवन्तः तत्परमं ज्योतिः। अत्रैव धर्मधुरीणैः अशोक-प्रभृतिभिः सम्राड्भिः प्रवाहिता करुणा-कल्लोलिनी-पूरिता धर्मधारा, यया पाविता चीन-जापान-लङ्का-श्याम-प्रभृतयो विविधाः देशाः। इयमेव भारत-भूः तासां वेद-गवीनाम् उद्भवभूमिः, यासां सदुपदेश-पीयूषेन पाविता सर्वे धर्माः। अतएव वैदिकधर्मः सः समृद्धः सुरद्रुमः शोभते, यस्य शाखामात्रा एव गण्यन्ते बौद्धादयो विविधा धर्माः। एवं च धर्म-सदाचार-संस्कृति-सभ्यतादिभिः सर्वाग्रगण्यो वर्ततेऽस्मदीयो भारतवर्षः।

साहित्य-दृष्ट्यापि भारतवर्षोऽयं सर्वान् अन्यान् देशान् अतिशेते। यतो कुतोऽन्यत्र विद्यते सुर-सरस्वती-हासः कालिदासः, कुत्र वा भासते गद्यप्राणो महा-कविर्बाणः, कुत्र च वर्तते विदुषां हर्षोत्कर्षः श्रीहर्षः, कुत्र वा विद्यते राज-नय-नदीष्णः श्रीचाणक्यः। किञ्च करुणा-वरुणालयेन पूर्णब्रह्मणापि लोक-रक्षार्थं धर्म-संस्थापनार्थञ्च पावितेयमेव भारतभूमिः स्वचरण-चङ्क्रमणेन। अन्ये बहवो देशाः केचन भारतस्य प्रान्तेभ्योऽपि न्यूनाः सन्ति जन-संख्यया भू-विस्तृत्या वा।

सर्वेषु विश्वेषु सोवियतभूमिं चीनभुवञ्च विहाय भारतभूमिरेव सर्वाति-शायिनी, परन्तु विविध-भाषाभिः विभिन्न-परम्पराभिः विरुद्ध-धर्माचरणैः विरोधि-संस्कृतिभिश्च संकुलस्यापि भारतस्य सार्वत्रिकी जनानामेकता परमाश्चर्यकारिणी। यत आहिमालयात् सेतुपर्यन्तं द्वारकापुरीतो जगन्नाथपुरीपर्यन्तं धर्मैकतानिबद्धोऽयं देशः सर्वथैकताम् अवलम्बते।

अस्मिन् देशे जीवन-शक्तिरपि अद्वितीयैव, यतो जाते विदेशीय-जन-राज्ये प्रायः सहस्रवर्ष-पर्यन्तं युद्धतानेन पुनः श्रीविक्रमादित्याद् अनन्तरं प्राप्तैव पूर्ण-स्वतन्त्रता। अत्र मूलभूता देशभक्त-पुष्पस्रगपि नान्यस्मिन् कस्मिन्नपि देशे दृश्यते। यस्यां संग्रथितानां चन्द्रगुप्त-राणाप्रताप-शिववीर-तात्याटोपे-भगतसिंह-चन्द्रशेखर-प्रभृतीनां वीराणाम् एकैकस्यापि साम्मुख्ये विदेशीय-देश-भक्त-चरित्रं स्वत एव निष्प्रभताम्-आलम्बते।

अस्मिन् देशे न केवलं पुरुषा एव, अपितु विराजन्तेस्म वागपाला-मैत्रेयी-सदृशा-ब्रह्म-विचार-दक्षाः, शारदा-सदृशा वैदुष्य-मण्डिता, सीता-सदृशा पवित्राचरणाः, मदालसा-सदृशा प्रदर्शित-स्वाचरणाः, दुर्गावती-लक्ष्मीबाई-प्रभृतयो वीरता-निधयो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नार्यः । अपि च भूगोलदिशापि देशोऽयम् अद्वितीय एव, यतः काश्मीर-काश्मीर-समर्चिता हिमवत्प्रहरिणी गंगा-यमुना-सरस्वती-शोभिनी शस्य-श्यामला विविधजनामोदिनी मध्य-भाग-मोहिनी विन्ध्यादि-पर्वतमाला-लोभिनी सतत-रत्नाकर-शोभिनी भारतभूः नान्यं निदर्शनम् अपेक्षते स्वसाम्यार्थम् । एतामेव अनिर्वाच्यां सुषमासुधां नयनपुटैः निभाल्य अनेकैर्भावुकैः कविवरैर्योऽस्याश्चरणेषु कल्पना-सुरभिः पद्यप्रसूनाञ्जलिः सश्रद्धं समर्पितः, स एव अद्यापि प्रीणाति साहित्य-प्रणयि-चेतांसि ।

यत्र च सुवर्ण-रजतादि-सर्वविधान् वसून् वहन्ती या वसुन्धरा वसुधेति स्वानाम सार्थकं कुर्वती विराजते । यां समाश्रित्य समुद्भासिता संस्कृतिः सर्वानेव देशान् पुनाति । यया प्रदर्शिता सदाचार-सरणिरेव सर्वसरणिषु राजमार्गताम् आलम्बते । यस्यै देवा अपि स्पृहयन्ति । यस्या विनिर्गतं सत्साहित्यं सर्वानेव साहित्यान् अतिशेते । यस्याः पादप्रक्षालने नियुक्तः क्षारपानीयः समुद्रोऽपि रत्नाकर इति भव्यान्वयं भजते । यस्यां विविधा मानवा जननी-क्रोड-सुखम् अनुभवन्तः निर्बाधं जीवनयात्रां सम्पादयन्ति । तस्या भारतभुवो महिमा सर्वातिशायी वर्तत एव । अतएव पुराणेष्वपि श्रूयतेऽस्या स्तुतिविषये विविध-श्लोकाः—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवन्ति भूयो मनुजाः सुरत्वात् ॥

४४. अखण्डं भारतं राष्ट्रम्

सतत-परिवृत्ति-सारेऽसारे संसारेऽस्मिन् सर्वदैकरसं किमपि वस्तु न दृक्-गोचरताम् एति । अनयैव दिशा देशोऽयं भारतवर्षाख्यः सम्प्रति खण्डितो दृश्यते । वैदेशिकैः शासकैः राजनीति-मात्र-लक्ष्यैः पुरा ब्रह्मभूभागो भारतभुवः पृथक्कृतः । तदनन्तरं महति स्वातन्त्र्य-संग्रामे कूटनीति-निपुणैः गौराङ्गैः अस्मन्नेतारः तथा प्रतिबद्धा यथा विवशैरपि तैः "भारतः-पाकिस्तानम्" इति विधया भारतभूः खण्डिता ।

यस्याः स्वातन्त्र्यार्थम् अनेके वीरा स्वर्ग-पथ-पान्था संजाता, यदर्थं बहवो ललना स्वपतीनां पुत्राणाञ्च बलिदानम् अकुर्वन्, यदर्थञ्च विविधा यातना देशभक्ता असहन्त, सैव पुराण-गौरव-मण्डिता मातृभूः पारतन्त्र्य-शृंखलया सह स्वशरीरस्यापि भङ्गम् अवाप्तवतीति महती विडम्बना । देश-प्रेम-परायणैरपि मान्यैः नेतृभिः गौराङ्ग-नीति-जालाद् परस्पर-प्रीति-करणाद् विवाद-नाशात् स्थायि-स्वातन्त्र्य-मोहाद् मोहम्मदीय-प्रणयाद् वा देश-जन-भावना-विरुद्धोऽपि स देश-विभाजन-प्रस्तावः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वीकृतः । यस्या रावीतटिन्या पवित्रे तटेऽस्माभिः पूर्ण-स्वातन्त्र्य-प्राप्ति-प्रतिज्ञा कृता, सैव तटिनी भारत-गणराज्ये नास्तीति महदाश्चर्येण सह दुनोति चित्तम् ।

मौहम्मदा केवलमात्रं दस्यव इव लुण्ठनार्थं देशमिमं प्रविष्टाः, गौराङ्गाश्च व्यापारजालेन देशमिमं परतन्त्रता-पाशे वद्धुं समायाता । अतएव तेषां मनसि नासीदस्य देशस्य भक्तिः प्रेम स्नेहो वा । अतएव च हिमालयेन संशोभितं सागर-तरङ्ग-धौतं गंगा-यमुना-नर्मदा-राजितं काशी-मथुरा-मण्डितं धर्म-संस्कृति-सूत्र-दृढावद्धं सर्वदा सर्वथा च ऐकरूपता-भूषितं भारतं विलोकयितुं नाक्षमन्त ते । आसेतु-हिमालय-वासिनां हिन्दूनामेको वेदभगवानेव परम-मान्यो ग्रन्थराजोऽस्ति । पृथक्-पृथक्-प्रान्तवर्तिषु, विविधावतारेषु, मान्याचार्येषु, सप्तपुरीषु, तीर्थेषु पवित्र-तटिनीषु, महोत्सवेषु, कुम्भप्रभृतिषु पर्वसु च समेषामेषां समाना भक्तिः भरति भारतभुव एकता-भावनाम् ।

राजनयनदीष्णेन श्रीचाणक्येन अपि भारतभुवि तत्कालं प्रचरन्तीं गणतन्त्र-रूपिणीं देश-विभाग-कारिणीं व्यवस्थां समूलमेवोच्छिद्य वीरवरं चन्द्रगुप्तं सम्राजं विधाय भारतोऽयम् इतस्ततो राजनैतिक-दृष्टया विश्रृङ्खलितो भूय एकतासूत्रे वद्धः । तत आरभ्य-अशोक-पर्यन्तोऽयं समयः 'स्वर्णसमय' इति शब्देनेतिहासपृष्ठेषु श्रूयमाणः तात्कालिकीं सर्वविधां सर्वातिशायिनीञ्च समुन्नतिं समुपदिशति । वर्तमान-कालेऽपि लौहपुरुषापरपर्यायेण श्रीवल्लभभाई-पटेल-महोदयेन विविध-राज-विभागेषु विभक्ता भारतभूः पुनः राज्यविलयं कृत्वा समुपवद्धा गणतन्त्रात्मके भारत-राज्ये । एतत्पर्यालोचनेन इदमेव तथ्यं प्रतिभासते यद् यदि भारतस्य सर्वविधा समुन्नतिः समपेक्षिता तर्हि सा देशस्यैकतां विना ऊषर-भू-वपिता बीज-पङ्क्तिरिव सर्वथा दुःशक्या ।

यद्यपि राजनैतिकदिशा राजनीति-व्यपदेशेन स्वार्थ-सिद्धि-कुशलैः नेतृभिः विभागोऽयं व्यधायि, तदपि परस्पर-स्नेह-रसाकुलाया जनताया हृदयविभागो न केनापि कर्तुं पार्यते । अतएव च मध्ये मध्ये स्वदेशीय-समस्याभ्यो जनता-हृदयं पराङ्मुखीकर्तुं पाकिस्तान-संचालकैः भारत-विरोधस्य विषवमनं विधीयते । येन अम्लरसेनेव दुग्धं जनता-प्रेम-पीयूषं विभक्तं भवेत् । भारतेऽपि तेषां हितचिन्त-कैरन्यैरपि स्वार्थ-सिद्धि-परायणैः जनैः साम्प्रदायिक-भावनाया उद्वेलनं तदर्थमेव क्रियते । परन्तु मध्ये मध्ये मतिमतां मतौ मतमिदमेव संतिष्ठते यद् यदि समृद्धिः समुपेक्षिता तर्हि भारतभुव एकीकरणं परमावश्यकम् । न केवलं भारत-पाकिस्तान-योरेव, अपितु सर्वोपनिवेशानामपि पुनरेकीकरणं करणीयमेव । न केवलं राज-नैतिकदिशा, अपितु सर्वविधदिशा भारतस्य अखण्डतैव सम्पादनीया । अनेनैव विश्वगुरुः, विश्ववन्द्यः, इत्यादिभिः उपाधिभिः विभूषितोऽयं भारतो भूयोऽपि भारतो भविता ।

पुनरपि देशादस्मात् प्रसारिते ज्ञानालोके अपगते तमसि जगदिदं स्वीयं मार्गं समुपवर्तयन् शान्तिम् अनुभविष्यतीति । अत इदमेव वैमत्य-रहितं लोकहितं शास्त्र-सम्मतं मतं मतौ भाति यद् भारतस्य अखण्डतैव सर्वविधया श्रेयस्करी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४५. तीर्थराजः प्रयागः

(प्रयागमेला)

इह विविध-देश-वेश-भूपाचार-विचार-विभूषितस्य भारत-खण्डस्य निखिलेष्वपि प्रदेशेषु संराजन्ते वहुविधा नगर्योऽतिपुराणकालादेव । तासु समस्त-नगरीषु निकषायमाणा गंगा-यमुना-सरस्वतीभिः परिपोषिता विविधैः देवमन्दिरैरलंकृता प्रयागाभिधाना नगरी ह्यमरावतीव स्वर्लोकस्य भारतस्य शोभां वर्धयन्ती परिविस्तृता विभ्राजते । 'प्रकृष्टो यागो यस्मिन्' इति विग्रहवाक्ये निष्पन्नः 'प्रयाग' शब्दः स्वयमेव नगर्या अस्या महत्ताम् उद्घोषयति ।

तत्र विविधेषु तीर्थेषु प्रसिद्धतमं पूततमं च वर्तते प्रयागराजाभिधानं तीर्थरत्नमिदम् । इदं च सर्वेषां तीर्थानां 'राजा' उच्यते, अतएव 'तीर्थराज' इति व्यवह्रियते लोकैः। अस्य तीर्थराजस्य प्रयागराजस्य सर्वत्रैव पुराण-रामायणादिषु महत्त्वं गीयते । अत्र पवित्र-सलिला भागीरथी पुण्य-सलिलया यमुनया सरस्वत्या च सह सङ्गता भवति । अतएव सर्वैः लोकैः इदं स्थानं 'त्रिवेणीसङ्गम' इति संज्ञया गीयते । तत्र त्रिवेणीसङ्गमे स्नानेन महत्फलं जायते । यथा चोक्तम्––

त्रिवेणीसंगमे तीर्थे तत्त्वमस्यादिलक्षणे ।
स्नायात्तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामा स उच्यते ॥

अस्मिन् तीर्थस्थाने ब्रह्मादयो देवाः सनत्कुमारप्रमुखा महर्षयो सिद्ध-गन्धर्वाप्सरसां गणाः तपस्विनश्च निवसन्ति । अत्र सङ्गमस्थले प्रतिवर्षं माघमासे 'माघमेला' भवति । तत्र भारतवर्षस्य विभिन्नप्रान्तेभ्यः कोटिशो यात्रिणः सहस्रशो धार्मिका जनाः साधवो महात्मानः तपस्विनो गृहस्थाश्च परया श्रद्धया विश्वासेन च प्रतिवर्षं समागच्छन्ति। तत्रानेके श्रद्धालवो जनाः सधना निर्धनाश्च वा अत्रागत्य मासमेकं यावत् उपित्वा कल्पवासं समाचरन्ति । तथा च त्रिवेणीसङ्गमे स्नात्वा च स्वं पावयन्ति । अत्रैव द्वादशवर्षानन्तरं 'कुम्भमेला' अपि समायाति । यत्र कुम्भपर्वणि स्नानार्थं बहवो जनाः भारतस्य अशेषकोणेभ्यः समागच्छन्ति, स्नात्वा च सङ्गमस्थले स्वजीवनं कृतार्थयन्ति ।

अस्य तीर्थराजस्य प्रयागस्य दर्शनेन नामसङ्कीर्तनेन मृत्तिकालाभेन च सर्वाणि पापानि स्वयमेव प्रणश्यन्ति । स्नानेन तु राजसूयाश्वमेधादिफलं लब्ध्वा सर्वस्मात् पापात् प्रमुच्यन्ते जनाः । यथा चास्य माहात्म्यं वर्णितं पद्मपुराणे––

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे संशितव्रतः ।
पुण्यं स महदाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥

तथा च गङ्गायमुनयोः संगमस्थलमिदं स्वीयामनुत्तमां पवित्रतां धारयत् तत्राभिषिक्तान् जनान् पावयच्च तीर्थराजस्य महन्महत्त्वं द्योतयति । कविकुलगुरुणा महाकविना कालिदासेनापि प्रयागराजस्य महत्त्वं सम्यक्तयेत्थं वर्णितम्––

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुद्रस्यत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्त्वाववोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥

अत्र प्रयागे महामुनेः भगवतो भारद्वाजस्य आश्रमपदं राजते । गंगायाः पावने तटे एकं दर्शनीयं हनुमन्मन्दिरमपि विद्यते । अत्रैव गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्थले रक्त-प्रस्तरेष्टिकया विनिर्मितं लोहितदुर्गं विराजते । तत्रैकोऽक्षयो वटवृक्षो वर्तते, यस्य दर्शनार्थं सहस्रशो नरनार्यश्च प्रतिवर्षं समायान्ति ।

तत्र प्रयागराजस्य न केवलं धार्मिकदृष्टयैव; अपितु वर्ततेऽन्यदृष्टचापि महत्त्वम् । विविधाः शिक्षा-विभाग-कार्यालयाः अन्ये चापि राजकीय-कार्यालयाः संराजन्ते । अत्रैव च शोभते प्रयागविश्वविद्यालयः । यत्र च सर्वाः विद्याः सर्वाः कलाः सर्वाणि विज्ञानानि च शिक्ष्यन्ते । अत्रैव विविधा औद्योगिकसंस्था मुद्रण-महाविद्यालयः 'कमलानेहरू' चिकित्सालयश्च राजन्ते । अत्रैव विशोभते 'सर्वोच्च-न्यायालय' (High Court) नाम्नी न्यायकर्त्री न्यायसंस्था च । यत्रोत्तरप्रदेशस्य विभिन्नभागेभ्यो न्यायाभिलाषिणो जनाः स्वाभियोग-विनिर्णयार्थं समागच्छन्ति ।

अस्या नगर्या ताटङ्कमिव विभाति 'सिविललाइन्स' नामकं स्थानम् । सायंकाले विद्युद्दीपानां मालाभिः विभ्राजितमिदं स्थानं विशिष्टां सुषमां वहति । अत्र प्रतिदिनं सायंकाले महर्घवस्त्राणि धारयित्वा ललना अनेक-वेश-भूषा-विशोभिनः पुरुषाश्च संसरन्तो विलोक्यन्ते । अत्र चानेके सुविस्तीर्णाः राजमार्गाः चित्राणि पुष्पोद्यानानि मनोरमाः चतुष्पथाः विविधा वसतयश्च हरन्ति दर्शकानां मनांसि । अस्या नगर्या वाष्पयान-विराम-स्थानं चातीव रमणीयं दर्शनीयं च वर्तते ।

किंचात्र अनेके महापुरुषाः समभूवन्, येषां कीर्त्तिरद्यापि समुल्लसति । परमप्रख्यातस्य महायशसो मदनमोहन-मालवीयस्य जन्मभूमिरियमेव नगरी । लोकोत्तर-समृद्धिभाजः श्रीमोतीलालनेहरू-महोदया अत्रत्या एव आसन् । तस्यैवात्मजः पं० जवाहरलालनेहरू-महोदयोऽपि अत्रैव जन्म लेभे । अपरे चापि अनेके महापुरुषा स्वजन्मना निवासेन च पावितेयं नगरी ।

एवं च सांस्कृतिक-दृष्टया धार्मिक-दृष्टया राजनैतिक-दृष्टयापि द्विगुणतरां सुषमामावहन्ती भारतस्यातीतं गौरवं रक्षन्ती पुण्यभूमिः यज्ञभूमिरियं नगरी सविशेषं विभ्राजते ।

४६. बङ्गलादेशः

चिरकालादेव पारतन्त्र्य-दुःखोदधौ निमग्ना यथाकथञ्चिद् देशभक्तैः स्वातन्त्र्य-सेवकैर्महात्मभिः अनवरतप्रयासैः अपास्य-परदास्य-तिमिरं स्वतन्त्रतामुपगता सर्वविधि-सुन्दरा वीरभोग्या भारतवसुन्धरेयं खण्डिता विनाश्य च भारतवासिनां 'माऽहं-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मातरं पृथ्वीं हिंस्याम्' इति चिरकाल-संचितां समुदार-भावनां स्वार्थ-साधन-परैः गौराङ्ग-शासकैरिति विचिन्त्य दोदूयते चेतः । अस्या एवापराङ्गो बङ्गोऽपि विकलाङ्गीकृतः तैरेव गौराङ्गैः पूर्ववङ्ग-पश्चिमवङ्ग-रूपेणेति संस्मृत्य कस्य वा हृदयं न विदीर्येत ?

इयमेव वङ्गभूमिः पुरा स्वसंस्कृतिभिः समृद्धा श्रेष्ठा प्रेष्ठा चासीत् । अस्या एव कुक्षेरजायन्त नेताजीति-पदवाच्याः सुभाष-सदृशाः कर्त्तव्य-धुरीणा वीर-मूर्धन्या देशसेवकाः, राममोहनराय-सदृशाः सतीप्रथोन्मूलका देशोद्धारकाः समाज-सेवकाश्च । अत्रैव च ज्ञान-प्रभाभिः आलोकित-सकल-भूमण्डलः स्वामिविवेका-नन्दसदृशाः ज्ञाननिधयः, महामान्या ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर-सदृशाः कविमूर्द्धन्या महाविद्वांसः, कवीन्द्र रवीन्द्रसदृशाः विद्वन्मूर्धन्याः महाकवयश्चाजायन्त । अत्रैव च जाताः 'बेतार का तार' नामकस्य यन्त्रस्याविष्कर्त्तारः श्रीजगदीशचन्द्रवसु-महाभागा वैज्ञानिका अपि ।

अद्य तु द्विधाविभक्तेयं कवीन्द्र-रवीन्द्र-क्रीडास्थली बङ्गस्थली न तादृशं सौभाग्यमावहति । इतः पूर्वं तस्या एवैको भागः पूर्ववङ्गदेशः पाकशासनाधिकारेऽ-वर्तिष्ट । पाकशासकाश्च अमेरिकाभिः सह सन्धाय तेभ्यश्च असंख्यानि शस्त्रास्त्राणि तथान्यां सामग्रीमपि प्राप्यानिशं भारतभुवं पूर्ववङ्गमपि चन्द्रमसं राहुरिव अत्तुमेव प्रवृत्ता अदृश्यन्त । पूर्वबङ्गदेशे तु ते बङ्गीयानां जनानां दस्यव इव धनानि अलुण्ठन्, जनान् अछिन्दन्, बालानपि न्यपातयन्, दारानपि अपाहरन्, कुमारी-ष्वपि व्यभिचरन् । दृष्ट्वा चेमां तेषां बर्बरतां पैशाचिकं कृत्यं च को वा न सचिन्तो भवेदिति ? कस्य वा हृदयं न द्रवीभवेत् ?

एवं चानवरतं धन-जन-क्षतिं दर्शं दर्शं बङ्गदेशीयाश्च अतीवोद्विग्नाः स्वान्मुक्त-कामा मुजीबुर्रहमान-महाभागानां नेतृत्वे 'मुक्ति-आन्दोलनम्' प्रारभन्त । तदर्थं च तैः 'मुक्तिसेनायाः' संघटनमपि कृतम् । अनेनान्दोलनेन चातीव सम्भ्रान्तैः पाकसैनिकैः रोमहर्षाणि पैशाचिक-कृत्यानि समारब्धानि, सहस्रशो वङ्गीयान् तेषां बालान् ललना-जनांश्च मृत्यु-मुखे निपात्य तेषां धनसम्पत्तिभिः सह सहस्रशो ललनाश्च पाकदेशम् आनीताः, कोटिकल्पास्तद्देशीयाः शरणार्थिनो भारतभुवम् आगताः, गृहीतश्च मुजीबुर्रहमानोऽपि पाकशासकैरिति; किन्तु बंगदेशीया असंख्यानि कष्टानि सहमाना अपि स्वतन्त्रतायै युध्यमानाः मुक्त्यान्दोलनान्न व्यरमन् ।

वर्षापगमे मुक्तिसेनायाः शक्तिर्वर्धिताऽभ्यर्थिता च भारतदेशात् सहायता । भारतदेशोऽपि दयाकरुणयोर्भावमादाय वंगलादेशस्य सहायता-करणाय मुक्त्यान्दो-लनस्य च समर्थनाय वचनबद्धोऽभवदिति । इतश्च पाकशासकैः बंगलादेशस्य आन्दोलन-विद्रोहं भारतस्योपर्यारोप्य एकसप्तत्युत्तरैकोनविंशतिशततमे (१९७१) ख्रीस्ताब्दे दिसम्बरमासस्य तृतीयतारिकायां सायंकाले नवीनतमो युद्धः प्रारब्धः ।

युद्धेऽस्मिन् पराजिता पाकसेना अस्मिन्नेवाब्दे दिसम्बरमासस्य षोडशतारि-कायां सायंकाले भारतीयसेनाया अग्रेऽकार्षीद् आत्मसर्पणम् । पूर्वं पूर्वपाकसेनापतिः नियाजी स्वकीयमस्त्रं भारतसेनापतेरग्रे समर्प्य अभिवादनम् अकरोत् । तदनन्तरं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वा सेना अपि परित्यज्य स्व-स्व-शस्त्रास्त्राणि भारतसेनापतेरग्रे शिरो नमयित्वा आत्म-समर्पणं कृतवती । किन्तु भारतस्योद्देश्यन्तु वंगदेशस्य स्वातन्त्र्यं विधातुमेव आसीत् । अत एव भारतशासकाः तद्देशसत्तां च वंगदेशीयेभ्य एव समर्पितवन्त इति । आत्मसमर्पणस्येयं प्रथा वंगलादेशस्य स्वाधीनतापर्व एवासीत् । तदानीं 'जय वंगला' इति गगन-भेदि-शब्दैः पर्यपूरयन्नभः । प्रतिनगरं प्रतिग्रामं प्रतिगृहं च स्वैरमुच्यते 'जय वंगला' इति ।

एवं परतन्त्रता-तमिस्रापगमे स्वातन्त्र्य-सूर्योदये जाते वंगलादेशे वंगदेशीया जनता भारतस्य कृते कृतज्ञतां प्रदर्शयन्ती मनोमोदं वितरन्ती परमानन्दसागरे निमग्ना जाता । हृदये च जाता नवीनोत्साहस्य प्रादुर्भूतिः । इदानीमस्ति शोचनीया समस्या सार्ध-सप्तकोटि-परिमिताया वंगदेशीया या जनतायास्तथा भारतवर्षे समागतानां लक्षशः शरणार्थिनां चेति । तदर्थं च सन्ति प्रयत्नशीलाः भारतवासिनः सर्वकाराश्चेति ।

१९७२ ईसवीये वर्षे मार्चमासस्य १९ तारिकायां भारत-वंगलादेशयोर्मध्ये मित्रतैषा जाता, यदेको देशोऽपरस्य देशस्य सहायतां करिष्यति शान्तिं च विधास्यति । १९७२ खैस्ताब्द एव नवम्बरमासे वंगलादेशस्य गणतन्त्रीय-संविधानं निर्मितम् । तत्संविधानञ्च भारतदेशस्य संविधानवत् वर्तते । भारत-वासिनो जनाश्च वंगला-देशस्य स्वातन्त्र्य-रक्षार्थं सयत्नाः तिष्ठन्ति ।

४७. भारत-पाक-शिखरसम्मेलनम्

(शिमला-वार्ता)

प्राचीनकालादेवासीत् भारतस्य निखिलेऽपि संसारे महत्त्वपूर्णं स्थानम् । शान्तिप्रियेऽस्मिन् भारते प्राक्तनत एव शान्तेः माहात्म्यं सुप्रतिष्ठितं वर्तते । **'अशान्तस्य कुतः सुखम्'** इति गीतावाक्यमपि शान्तिं सुखकसाधनतां व्यनक्ति । शान्तिं विना न कुत्रापि प्रगतिरवलोक्यते । भारतन्तु न केवलं शान्तिमेव अभिलषति, अपितु निखिलेऽपि जगति शान्ति-स्थापनाय महत्प्रयासमपि करोति । शान्ति-स्थापन-दृष्ट्या स्वमित्रराष्ट्रं प्रति कर्त्तव्य-पालन-दृष्ट्या च भारत-गण-राज्यस्य प्रधान-मन्त्रि-इन्दिरागान्धि-महोदया संयुक्तराष्ट्र-साहाय्येन पाकराष्ट्रपतिं भुट्टोमहोदयं प्रति शान्ति-वार्ता-करणाय सन्देशं प्रेपितवती । पाकराष्ट्रपतिरपि तत्सन्देशं सद्य एव स्वीकृतवानिति ।

शिखर-सम्मेलनात् पूर्वं वंगलादेशः पाकशासकैरधिकृत आसीत् । १९७१ खैस्ताब्दे दिसम्बरमासे वंगलादेशं समुद्दिश्य भारत-पाकयोर्मध्ये युद्धोऽभवत् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाकिस्तानस्तु बाह्य-शक्ति-साहाय्येन भारतेन सह युध्यन्नासीत् । युद्धेऽस्मिन् पाकिस्तानस्य पराजयोऽभूत् । भारतस्य विजयवैजयन्ती तत्र दोधूयमानाऽऽसीत् । किन्तु भारतस्योद्देश्यं वंगलादेशस्य स्वातन्त्र्यं विधातुमेव आसीत् । बङ्गदेश-स्वातन्त्र्येण सह भारतस्योद्देश्यपूर्तिरपि जाता ।

अधुना तु वंगलादेशोऽयं पूर्णरूपेण स्वातन्त्र्यमभजत् । किन्तु भारते समागतानां नवति-सहस्र-संख्याकानां शरणार्थिनां समस्यापि विचारणीयैव वर्तते । अतएव भारतस्य प्रधानमन्त्रिमहोदया देशयोरुभयोः समस्यायाः शान्तिपूर्ण-समाधानाय शिखर-सम्मेलनस्यायोजनं कृतवती ।

१९७२ ख्रीस्ताब्दे जूनमासे शिमलानगरे भारतपाकदेशयोः शिखरसम्मेलनमभूत् । सम्मेलनेऽस्मिन् 'वेनजीर' नाम्नी पाकराष्ट्रपतेः दुहितापि समागताऽऽसीत् । अस्मिन्नेवाब्दे जूनमासस्य २८ तारिकायां सायं पञ्चवादनवेलायां शिमलानगरस्य मध्ये भव्ये प्रासादे शिखरवार्त्ता समारब्धा । किन्तु पञ्चदिवसात्मके शान्तिवार्त्ताप्रसङ्गेऽस्मिन् न कोऽपि निर्णयो जातः । 'काश्मीरसमस्या' च तत्र बाधकत्वेनोपस्थिता ।

इतः पूर्वमपि काश्मीर-समस्यायाः समाधानाय 'ताशकन्दवार्ता' जाता; किन्तु तत्रापि किमपि सन्तोषजनकं साफल्यं नाधिगतम् । पाकशासकास्तु न कामयन्ते काश्मीरं हातुम् । अतएव शिखर-वार्तायाम् अवरोधो जातः । किन्तु जुलाईमासस्य द्वितीयतारिकायां प्रीतिभोजसमवसरे सहसा सफलता समधिगता । तत्र शिमला-सम्मेलनस्य शिखरवार्तायाः समुपलब्धिरियं जाता—

"द्वावपि देशौ सङ्घर्षमयं वातावरणं समाप्य युद्धजन्यां कटुतां परित्यज्य जय-पराजय-भावनां च विस्मृत्य मैत्री-सद्भावना-पूर्वकं शान्तिवार्तां कुर्याताम् । ताभ्यां शान्तिवार्तया समाधेयाः स्वकीयाः सर्वा अपि समस्याः, शान्तिः स्थापनीया स्व-स्व-देशे प्रजायाः समुन्नतिश्च विधेया, निष्कपटभावेन शुद्धेन व्यवहारेण च स्व-स्व-कर्त्तव्यं पालनीयमिति । द्वावपि देशौ परस्परं शान्तिपूर्ण-सहास्तित्वस्य प्रभु-सत्ताया क्षेत्रीयाखण्डतायाः स्वतन्त्रतायाश्च रक्षां विधास्यतः । परस्परं विरुद्ध-प्रचारं च न करिष्यतः । द्वावपि देशौ संयुक्तराष्ट्रसंघस्य घोषणापत्रस्य सिद्धान्तमनुसृत्य कार्यं करिष्यतः ।"

"द्वयोर्देशयोर्मध्ये पत्राचार-व्यापार-यातायातादिव्यवस्था च पूर्ववत्स्यादिति । एतेन यातायातेन आदानेन प्रदानेन च मैत्री पारस्परिक-सद्भावना च दृढीभविष्यति । सन्धिप्रस्तावानुसारं पाकस्य विजितभूमिः प्रत्यावर्तनीया भारतेन । किमपि राष्ट्रं आकस्मिकमाक्रमणं कर्त्तुं नोपक्रमेत । द्वयोर्देशयोरधिकारिणः समये समये परस्परं समेत्य वार्त्तां विदध्युः । द्वाभ्यामेव राष्ट्राभ्यां प्रचलितविवादावसरे पारस्परिक-द्वेषभावं निष्कास्य मानवतायाः संरक्षणाय सर्वत्र शान्तिस्थापनाय च महान् त्यागोऽपि कर्त्तव्यः ।"

मानवजीवने मित्रतायाः महन्महत्त्वं वर्तते । सन्मित्रस्य मैत्री सदैव सुख-समृद्धिकारिणी भवति । द्वयोः राष्ट्रयोरपि मैत्री लोककल्याणाय सम्पद्येत यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वयोरुद्देश्यं सुष्ठु स्यादिति। द्वयोरेव राष्ट्रयोरिदं परमकर्त्तव्यमस्ति काश्मीर-समस्यां समाप्य नवं युगमारभेत, सद्भावञ्च आचरेत्। येन द्वयोरेव कल्याणं जायेत। परं सन्मैत्री सद्भावना चोभयतः त्यागपेक्षते।

वस्तुतस्तु द्वयोरेव राष्ट्रयोः लाभो जातश्चानया शिखरवार्तया। भारतस्तु नोपनिवेशवादी, विजितक्षेत्राणि तु प्रत्यावर्तनीयान्येव आसन्। पाकिस्तानस्याग्रेऽपि विकल्पद्वयमेव आसीत्। शान्तिं स्थापयेत् युध्येत वा। केषाञ्चित् राजनीतिविदुषां मतमस्ति यत्पाकशासका स्ववचनभङ्गमपि विधास्यन्ति। किन्तु **'आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्'** इति न्यायमनुरुध्य मन्ये पाकोऽपि भारतीयानां शक्तिमनुस्मृत्य त्यागमाद्रियेत।

४८. भारतीयं प्रजातन्त्रम्

भारतस्य प्रजातन्त्रप्रणालीयं भारतवर्षेऽतिप्राचीनकालेऽपि प्रचलिता आसीत्। पुरा अयमस्माकं देशोऽनेकेषु लघुराज्येषु विभक्त आसीत्। तत्रानेकेषु राज्येषु गणतन्त्रात्मिका शासनपद्धतिः प्रचलतिस्म। किन्तु विनाश्य च प्राचीनां प्रजातन्त्रशासन-पद्धतिं तां वैदेशिकैः स्वार्थसाधिका शासनपद्धतिः प्रचालिता। कालान्तरे च सा प्राचीना प्रजातन्त्रप्रणाली कालगर्त्ते च विलीनाऽभवत्।

एवं च परःसहस्रवर्षानन्तरं वैदेशिक-पारतन्त्र्य-कलङ्कम् अपहाय देशभक्तानां महात्मा-गान्धि-प्रभृति-नेतृ-धुरीणां महता प्रयासेन १९४७ ख्रीस्ताब्दस्य अगस्तमासस्य १५ तारिकायां देशोऽयं भारतवर्षः पुनः स्वातन्त्र्यमभजत्। तदनन्तरं १९५० ईसवीयवर्षस्य जनवरीमासस्य २६ तारिकायां भारतवर्षे नवीन-संविधानेन भारतीय-प्रजातन्त्रस्य स्थापनाऽभूत्। संविधानेन च भारतवर्षं सर्वविध-प्रभुसत्ता-समन्वितं लोकतन्त्रात्मकं गणराज्यम् उद्घोषितम्।

अधुना तु सौभाग्यादस्मद्देशे लोकतन्त्रात्मिका शासनपद्धतिः प्रतिष्ठापिता वर्तते। एतेन संविधानेन च अस्मद्देशे वर्तमानाः सर्वे धर्माः समानाः मताः, धर्मानुसरणविषये च सर्वे स्वतन्त्राः जाताः। नवसंविधानानुसारं देशस्य जनता मतदानद्वारा स्वप्रतिनिधीन् निर्वाचयति। देशस्य एकविंशतिवर्षवयस्काः सर्वे एव जनाः मतदानस्य अधिकारिणो भवन्ति। एवं जनतया निर्वाचिताः ते भारतवर्षस्य कृते विधानानि विदधति।

एवं च गणतन्त्रात्मकस्य राज्यस्य सर्वोपरि-प्रशासकः भारतराष्ट्रस्य प्रधानो 'राष्ट्रपतिः' इत्युच्यते। राष्ट्रपतिं च जनमत-निर्वाचिताः सदस्याः वृण्वन्ति। स एव राष्ट्रपतिः मन्त्रिमण्डलद्वारा गणराज्यस्य भारतस्य शासनकार्यं करोति। मन्त्रिमण्डलस्य प्रधानः 'प्रधानमन्त्री' निगद्यते। राष्ट्रपतिरेव प्रधानमन्त्रिणः चयनं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करोति। अन्येषां मन्त्रिणां निर्वाचनन्तु प्रधानमन्त्रि-साहाय्येन राष्ट्रपतिरेव कर्त्तुं शक्नोति। प्रधानमन्त्री च समस्तमेव शासनकार्यं निरीक्षते। राष्ट्रपतेः प्रधानमन्त्रिणः अन्येषां मन्त्रिणां निर्वाचितसदस्यानां च कार्यकालः पञ्चवर्षात्मको भवति।

तत्र निर्वाचितसदस्यानां सभा संसदित्युच्यते। तत्र च मन्त्रिमण्डलं जन-प्रतिनिधीनां साहाय्येन नीति-निर्धारणं करोति। मन्त्रिमण्डलं हि संसत्सदस्यानां सम्मतिमन्तरेण न कामपि नीतिं निर्धारयितुं शक्नोति। मन्त्रिमण्डलं हि प्रतिनिधीनां बहुमतेन विधेयकानि पारितानि कारयित्वा राज्यपरिषदः पुरः समुपस्थापयति। यदा तैर्पार्यन्ते तदा तानि विधानानि भवन्ति।

एवं च शासन-सौकर्याय अनेकेषु भागेषु विभक्ता देशाः 'राज्यानि' समुच्यन्ते। राज्यानां शासनमपि जन-प्रतिनिधि-द्वारैव भवति। राज्य-प्रतिनिधि-सभाया अपि द्वे अङ्गे भवतः—विधानसभा विधानपरिषच्च। तत्र राज्यशासनस्य प्रधानः 'राज्यपालः' इत्युच्यते। राज्यस्यापि शासनं मन्त्रिमण्डलाधीनमेव वर्तते। मन्त्रिमण्डलस्य प्रधानो 'मुख्यमन्त्री' इत्युच्यते। मुख्यमन्त्रिणः निर्वाचनं राज्यपाल एव करोति। अन्येषां मन्त्रिणां च नियुक्तिः मुख्यमन्त्रिणां निर्देशेन राज्यपालः करोति। एवं च मन्त्रिमण्डलं हि राज्यस्य शासनकार्यं निर्वहति।

एवं च स्वतन्त्रता-सभाजिते भारतवर्षेऽस्मिन् प्रजातन्त्रस्य अधिष्ठानभूता लोकनिर्वाचिता केन्द्रीया संसत् प्रान्तीयाः सभाश्च प्रसिद्धाः। किन्तु तदर्थं प्रतिनिधीनां निर्वाचनाधिकारः शिक्षाशून्यानां ग्राम्यजनानां च हस्त एव निक्षिप्तो वर्तते। तत्र राजनीति-कुशलैः वञ्चनामयैः मिथ्याप्रलोभनैः विप्रलभ्यन्ते ते शिक्षा-शून्याः मूढाः ग्रामीणाश्च। दारिद्र्योपहताः विचार-शून्या धनलुब्धास्तेऽपि प्रशासकजनैरातङ्किताः स्वमतं अनभिमतजनाय प्रददन्ति। मतसंग्रहणार्थं च ते यथावसरे जातिवादस्य सम्प्रदायवादस्य प्रादेशिकतावादस्य च स्वरमुच्चैःक्रियन्ते।

प्रजातन्त्रे च जातिवादस्तु आशीविष इव त्याज्यो वर्तते, किन्तु नेतारः स्वां विजेतुकामां जातिमेव पुरस्कृत्य निर्वाचनक्षेत्राणि निर्धारयन्ति। अस्माभिश्च राष्ट्रस्य राजनैतिक-शरीरे व्याप्तं विषमिदं दूरीकरणीयमेव। मन्ये च यदा नेतारः स्वार्थं-समीहां परित्यज्य जातिवादादि-दोषान् विहाय शुद्धचेतसा पवित्रभावेन लोकाभ्युदयकामनया देशहिताय कार्यं करिष्यन्ति तदा प्रजातन्त्रमिदमवश्यमेव सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय भविष्यतीति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४६. भारतस्य खाद्य-समस्या

अस्माकं भारतवर्षः कृषिप्रधानो देशो वर्तते । प्राचीनकालादेव देशोऽयं खाद्यान्नस्योत्पादने अग्रगण्य आसीत् । तदानीं तु नास्ति खाद्यान्नस्य न्यूनता, न चैतादृशी महर्घता दुर्लभता वा आसीत् । सम्प्रति तु खाद्य-समस्या विचारणीया वर्ततेऽस्य देशस्य । तत्र खाद्य-समस्यायाः सन्ति कारणान्यनेकानि । यथा—

१. **भारत-विभाजनम्**—स्वतन्त्रता-प्राप्त्यनन्तरं भारतस्य समुन्नततम-प्रदेशयोः पञ्चनद-वंग-प्रदेशयोरर्धोऽर्धो भागः खण्डितः । तत्र पञ्चनदप्रान्ते गोधूमाः वङ्गप्रान्ते च शालयः प्राचुर्येण उत्पद्यन्ते । तत्र पञ्चनदप्रदेशस्य पश्चिमो भागः वङ्ग-प्रान्तस्य च पूर्वो भागः पाकिस्ताने सम्मिलितावभूताम् । तदात एव खाद्य-समस्या प्रादुर्भूता ।

२. **जनसंख्यावृद्धिः**—विश्वस्मिन् पञ्चपञ्चाशत् सहस्रसंख्याकाः जनाः प्रतिदिनं जायन्ते । भारतवर्षे च प्रत्यब्दं अर्धकोटिमितायाः जनसंख्यायाः वृद्धिर्भवति । इदानीं तु पञ्चपञ्चाशत्कोटिमिता जनसंख्या वर्तते भारतस्य । एवं जनसंख्यावृद्धिश्च खाद्य-समस्याया महत्त्वपूर्णं कारणं विद्यते ।

३. **अहल्या-भूमिः**—भारतवर्षस्य अधिकांश-भागाः वनभूमय ऊषरभूमयो मरुभूमयो वा वर्तन्ते । तथा च सेचनादि-व्यवस्थाऽपि समीचीना न विद्यते । तत्र कृषियोग्यभूमेरभावात् सेचनादि-साधनाभावात् वृष्टेरभावाच्च भारतस्य अधिकांश-भूभागाः कृषि-विहीना एव सन्ति ।

४. **कृषि-यन्त्रस्य न्यूनता**—अधुना वैज्ञानिके युगेऽपि भारते कृषकाः हलेन एव कृषिं कुर्वन्ति, न कृषियन्त्राणि पर्याप्तरूपेण मिलन्ति, प्राचीन-कृषि-साधनानि च ऊषरादिभूमीः कृषियोग्यां विधातुं न प्रभवन्ति ।

५. **प्रकृति-प्रकोपः**—प्रकृति-प्रकोपोऽपि वर्तते खाद्य-समस्याया कारणम् ।

अतिवृष्टिः अनावृष्टिः मूषिकाः शलभाः शुकाः ।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृताः ॥

तत्र अतिवृष्ट्यादिभिः प्रतिवर्षं सस्यानां महती क्षतिर्भवति । अतिवृष्ट्या तु सस्यानि नश्यन्ति, अनावृष्ट्या च शुष्कानि भवन्ति । मूषिकाः शलभाश्चापि सस्यानां हानिं कुर्वन्ति । एभ्यः कारणेभ्यः खाद्यान्नानां महती हानिर्जायते ।

६. **संग्रह-प्रवृत्तिः**—भारते अर्थलोलुपा व्यापारिणः महान्तो कृषकाश्च अन्नानि संगृह्य गृहे प्रकोष्ठे च स्थापयन्ति । दुर्भिक्षता-समापन्ने कालेऽपि ते प्रकोष्ठेभ्यः बहिः निःसारयितुं न चेष्टन्ते । पश्चाच्च तस्करापणे प्रचुर-मूल्येन विक्रीणन्ते । ते कदापि देशहितं लोकहितं वा न विचारयन्ति ।

७. **राजस्य खाद्य-नीतिः**—भारतस्य खाद्य-नीतिरपि दोषपूर्णा वर्तते । अधुना विशेषतः खाद्यान्नानि राज्य-शासनैः नियन्त्रितानि सन्ति । यानि वस्तूनि शासनैः नियन्त्रितानि भवन्ति, तेषां दुर्लभता जायते लोके । यानि च नियन्त्रण-निर्मुक्तानि सन्ति, तानि वस्तूनि न दुर्लभानि भवन्ति । एवं निर्धन-जनानां कृते अपेक्षितानि खाद्यान्नानि न मिलन्ति । मूल्यवृद्धिस्तु प्रतिदिनं समेधते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधुना भारतस्य खाद्य-समस्या भयावहा वर्तते। अस्याः समाधानाय भारतस्य राज्याधिकारिणः यद्यपि प्रयत्नशीलाः सन्ति, किन्तु अपेक्षिता सफलता नाधिगता तैः। तत्र खाद्यसमस्यां समाधातुं सन्त्यनेके उपायाः। तेषु केचनात्र निर्दिशामः—

१. **कृषि-योग्य-भूमि-निर्माणम्**—वस्तुतः खाद्य-समस्या-कारणोन्मूलनमेव खाद्य-समस्यायाः समाधानं वरीवर्त्ति। राज्याधिकारिणा ट्रैक्टरादि-यन्त्र-साहाय्येन ऊषरादिभूमीः कृषियोग्यां विधातुं यत्नो विधेयः। तदर्थं समुन्नतवीजानां उर्वरक-रसायनिक-द्रव्याणां सेचनादि-साधनानां चापि व्यवस्था कार्या। समये-समये कृषकाणां कृते पुरस्कारादि-व्यवस्थापि कर्त्तव्या।

२. **कृषि-साधन-निगम-स्थापनम्**—राज्यशासकैः कृषि-साधन-निगमस्य स्थापना कर्त्तव्या। येन कृषकाश्च कृषियन्त्रादीन् समुन्नतवीजांश्च सारल्येन प्राप्नुयुः। अतिवृष्ट्यादिभ्यः रक्षणाय अपि सुव्यवस्था करणीया।

३. **जनसंख्या-वृद्धि-नियन्त्रणम्**—खाद्य-समस्या-समाधानाय जनसंख्यावृद्धौ नियन्त्रणमपि अपेक्षते। तदर्थं शासनैः परिवार-नियोजनमनिवार्यं कर्त्तव्यम्। सर्वैरेव जनैश्च पालनीयो तदादेशो यत् द्वित्रा एव सन्ततीः स्युः, न इतोऽधिकाश्च।

४. **खाद्यान्न-वितरण-व्यवस्था**—खाद्यान्नानां समुचित-वितरणादि-व्यवस्थापि खाद्य-समस्या-समाधानाय कल्पते। राज्याधिकारिणां कर्त्तव्यमस्ति यत्तैः देशस्य विभिन्नेषु भागेषु खाद्यान्नानां वितरणस्य समुचिता व्यवस्था कर्त्तव्या। खाद्यान्न-वितरणे भ्रष्टाधिकारिणः दण्डनीयाश्च। खाद्यान्नानां राष्ट्रीयकरणमपि कर्त्तव्यम्। यदि राज्य-शासका अन्न-वितरण-नियन्त्रणं नाकरिष्यन्, तर्हि अवश्यमेव दौर्भिक्ष्यं भविष्यति देशे।

वस्तुतः भारतीयं शासनं ग्रामाणां सर्वाङ्गीण-विकासाय विकास-योजनां समायोजयत्। योजनाया अस्या मुख्यमुद्देश्यं खाद्य-समस्या-समाधानाय एव दृश्यते।

५०. विश्व-शान्तिः

विश्वस्मिन् विश्वे विश्वेषां विज्ञानामिदमेव कामना जागर्ति यत्सर्वदा सर्वथा च सर्वत्र शान्तेः साम्राज्यं भवेदिति। सर्वविधा समुन्नतिः शान्तिमेव समुपजीव्य भवितुमर्हति। नहि शान्तिविरहिते समये सुखस्य कल्पनापि समुदेति। प्राचीनेतिहासस्य पर्यालोचनेन इदमेव तत्त्वं सुनिश्चितं प्रतीयते यद् यदा यस्मिन् राष्ट्रे शान्ति-सुधा-वर्षा भवति तदैव तत्र राष्ट्र-सुख-शाखी स्वच्छायया जनानां संतापं परिहरन् प्रमोदयति तान्।

भारतेऽपि यदासीत् शान्तिस्तदा देशेनामुना सर्वविधा समुन्नतिः समवाप्ता। वेदकाले सर्वत्र शान्तेः साम्राज्यमासीत्। अतएव तदात्वे जनाः सर्वविधां चिन्तां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परित्यज्य दार्शनिकविचारे तेषां प्रसारे च संलग्ना आसन् । अस्यैव कृतयुगमिति द्वितीयं नाम आदर्शत्वेन स्पृहणीयत्वेन च श्रूयते ।

गुप्तसाम्राज्यकाले तु तादृशी सर्वविधा समुन्नतिः प्राप्ता यया अस्य कालस्य द्वितीयं नाम "भारतीय-स्वर्णयुग" इति सर्वत्रेतिहासे समनुश्रूयते । तस्मिन् काले सर्वत्र शान्तिरेव आसीत् अतोऽस्य मूलकारणं शान्तिरेव । नहि शान्तिरहिते वातावरणे जनः किमपि कर्तुं पारयति । स हि सर्वथा स्वरक्षां प्रति देशरक्षां वा प्रति शोचन्नेव आस्ते । तदतिरिक्तं विचारयितुं तस्य मनीषा अनीशैव जायते । युद्धकाले च सर्वत्र वातावरणं परमाशान्तं जायते, विविधा आपत्तयश्च भीष्म-ग्रीष्म-मध्याह्न-वाता इव मनुज-मनः-सुमनानि शोषयन्ति । अत एव तेषां सुगन्धस्य समुद्गमः प्रचारः प्रसारश्च अवरुद्ध एव जायते । तेन विश्वस्य महती क्षतिः भवत्येव । तस्मादेव युद्धकाले मानसिकं शारीरिकं सृजनं न किमपि भवति, किन्तु पुरा निर्मितमपि विनश्यति ।

सम्प्रति परस्परच्छलप्रधाने कूटतैकताने परविनाश-प्रधाने स्वार्थ-साधन-प्रधाने प्रदत्त-कृत्रिम-सम्माने विहित-शान्ति-सुखावमाने काले वर्ततेऽस्य विचारस्य परमावश्यकता । "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" "अथातो धर्मजिज्ञासा" इत्यस्य स्थाने साम्प्रतं "अथातो युद्धजिज्ञासा" इत्येव भयङ्करी प्रलयङ्करी वाणी विश्वे समनुश्रूयते । महतां राष्ट्राणां स्वार्थलिप्सा साम्राज्य-विस्तार-कामना न शाम्यति ।

भवार्णवे महार्णवे तिमिङ्गिला इव साधन-शक्ति-सम्पन्ना देशाः क्षुद्रदेशान् तिमीनिव कवलीकुर्वन्तो न स्वल्पामपि लज्जामनुभवन्ति । स्वप्रधानतायाः प्रतिष्ठायाः साम्राज्यशक्तेः विचार-धारायाश्च समृद्धयर्थं तेऽल्पसाधन-सम्पन्नान् देशान् नाशयन्ति । द्विधा-विभक्त-कलेवरमिव द्विधा विभक्तं जर्मनीराष्ट्रम् इतस्ततो वेदनया परिवर्तते ।

अणुवमप्रहारेण जर्जरितस्य जापानस्य देशस्य वाष्पाणि प्रवहन्त्येव । परम-दुर्दान्तेन कार्यवितारेण चीनेन करुणामयी बौद्धधर्ममयी अहिंसाप्रवणा तिब्बत-देशीया संस्कृतिः स्मृतिमात्रावशेषा कृतैव । एतानि सर्वाणि निदर्शनानि मानवता-विनाशेन सह प्रधान-राष्ट्र-नायकानां बुद्धिमरणमपि प्रदर्शयन्ति । परन्तु सम्प्रति वियतनामदेशे युद्धं प्रचलत्येव । मिस्रादि-देशानाम् इजराइलेन सह निरुद्धमपि युद्धं मध्ये मध्ये ज्वालामुखी पर्वत इव प्रस्फुटत्येव । एषु सर्वेष्वेव संग्रामेषु प्रत्यक्षतः परोक्षतो वा प्रधानराष्ट्राणां स्वार्थ-सिद्धिकामनैव सूत्रधार-पदवीम् आरोहति ।

अतएव विविधप्रयोगैः युद्धाग्नि संवर्धयन्तः साहाय्याज्यधारां ददन्तो निर्बलान् निरपराधान् जनान् आहुतीकुर्वन्तः प्रसन्नताम् अनुभवन्ति ते । किन्तु महतां बलस्य महत्ता परेषां विनाशेन न, किन्तु रक्षणेनैव भवतीति ते न विचारयन्ति मनागपि । तदर्थं ते विविधा सन्धीः सम्पादयन्तः परस्परं विद्वेष-भावनाम् एव संवर्धयन्ति । मनुष्याणां धनानां व्यापाराणां शस्यानां निरीहाणाम् अबलानां च विविधां क्षतिम्-अविचारयन्तस्ते स्वीयहृदयस्य पाषाणतामेव प्रमाणयन्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाराजाशोकस्य हृदयं कलिङ्ग-युद्ध-कृत-विनाशं विलोक्य सर्वथा करुणा-पावितं सञ्जातम् । तेन च तदारभ्य यावज्जीवं मानवतासेवा समाजसेवा धर्मसेवा च कृतेति विदन्त्येव विज्ञाः । युद्धे प्रतिदिनं यो व्ययो जननाशार्थं विधीयते तस्य विनियोगो यदि जनकल्याणार्थं जायेत तर्हि समस्तोऽपि संसारः सुखपूर्ण एव भवेत् । स्वर्गस्य या कल्पना प्रसिद्धा सा मूर्तिमती जगत्यत्रैव देहान्तरप्राप्ति विना जनमनांसि मोदयन्ती दृश्येत, किन्तु सर्वस्यास्योत्तरदायित्वं महद्राष्ट्राणामेव विद्यते । यावान् व्ययः सैनिक-सामग्री-समुत्पादने ते विदधन्ति, तस्य दशमांशोऽपि यदि ते कुर्वन्तु मानवताहिताय, तर्हि मानवता पुनरुज्जीविता भवेत् । भारतीयसंस्कृतौ तु युद्धकृतान् दोषान् विलोक्य सन्तोषस्य प्रशंसा परवस्तुग्रहणस्य च विनिन्द्यता कृतैव । यथा—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥"

५१. पंचशील-सिद्धान्तः

इह चराचर-प्राणि-सङ्कुलेऽसारे खलु संसारे को वा जनो भवेद् यः सुख-शान्तिपूर्वकं जीवनं यापयितुं न यतेत । तत्र च शान्त-जीवन-यापनाय वर्तते सतत-कल्याणकरो निरतिशय-सुख-प्रदान-पुरःसरः 'पञ्चशीलसिद्धान्तः' इति । पुरा बौद्धयुगे प्रचलिताः पञ्चसिद्धान्ताः 'पञ्चशील' नाम्ना व्यवह्रियन्ते । ते च **'अहिंसा-सत्यमस्तेयमपरिग्रहोब्रह्मचर्यञ्चेति'** । जैनागमे योगशास्त्रेऽपि एत एव पञ्च-सिद्धान्ताः स्वीकृताः सन्ति । एवं च विश्वेषां विश्वजनानां मानवता-संरक्षणस्य मानवकल्याणस्य च मूलभूताः पञ्चसिद्धान्ताः पञ्चशीलशब्देनोच्यन्ते ।

वर्तमाने वैज्ञानिके युगे यदाऽणुशक्तेः प्रयोगो भवति, पञ्चशीलादतिरिक्तं नान्यतम-साधनं विद्यते सुख-शान्ति-संस्थापनाय लोक-संरक्षणाय च । 'पञ्चशील' सिद्धान्तोऽयं विश्वशान्त्युद्देश्येन भारत-चीन-देशयोः प्रधानमन्त्रिभ्यां पण्डित-जवाहरलालनेहरू-चाऊ-एन-लाई-महोदयाभ्यां पञ्चशीलस्य राजनैतिकं महत्त्वं प्रदाय भारतचीनयोस्तिब्बतसन्धौ १९५४ ईसवीयेऽप्रेलमासस्य २९ तारिकायां स्वीकृतः । १९५५ ईसवीये वर्षेऽप्रेलमासस्यान्तिमे सप्ताहे बाडुङ्गसम्मेलने प्रथमप्रचारोऽभूत् । १९५५ खिस्ताब्दे जूनमासस्य २२ तारिकायां दिल्लीतः श्रीनेहरू-महोदयेन रूसस्य मास्को-राजधानीतो बुलानिन-महोदयेन च रेडियोयन्त्रेण प्रसारितेयं घोषणा । तथा चान्यैरपि कैश्चित् राष्ट्रैः हस्ताक्षरेण सम्मानिताः । १९५६ ईसवीये वर्षे जूनमासस्य २७ तारीकायां चीनदेश पेकिङ्गराजधान्यां सम्मानितोऽस्य पञ्चशीलस्य प्रथमवर्षग्रन्थिसमारोहः । तत्र च सम्मानिताः पञ्चशीलसिद्धान्ताः इमे सन्ति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. प्रादेशिकाखण्डतायाः प्रभुसत्तायाश्च सम्मानम्
२. अनाक्रमणम्
३. अहस्तक्षेपः
४. समानता, पारस्परिकसहयोगश्च
५. शान्तिपूर्णसहास्तित्वम्

१. **प्रादेशिकाखण्डतायाः प्रभुसत्तायाश्च सम्मानम्**—कस्यापि राष्ट्रस्याखण्डतायां सत्तायां चश्रद्धामयी भावना करणीया। प्रत्येकराष्ट्रस्य प्रादेशिकाखण्डतायां सर्वस्य राष्ट्रस्य भूमौ प्रभुसत्तायां च हस्तक्षेपान्निषिध्य तस्य सम्मानं कर्त्तव्यम्। यथा भारतभूमौ गोआ-दामन-ड्यु- प्रभृतिप्रान्तेषु पुर्तगालस्याधिकारो मालवादिषु व्रिटिशराज्यस्याधिकारश्च प्रथमसिद्धान्तस्य अपमानमात्रमेव। तस्यानादरेण च विश्वस्मिन्नपि जगति सर्वत्र अशान्तिः नैराश्यं च। एवं च अपमानमनुभूय संघर्षं चेत्कुर्युस्तर्हि सर्वत्राशान्तिः मानवतासंहारश्च भवेदतोऽस्य सिद्धान्तस्याश्रयणं विश्वशान्तिकरं स्यादिति।

२. **अनाक्रमणम्**—कस्यापि राष्ट्रस्य परराष्ट्रेऽनाक्रमणमेव द्वितीयः सिद्धान्तः। यदि चेदिमं सिद्धान्तमनादृत्य परराष्ट्रस्योपर्याक्रमणं भवेत्तदा सैनिकसन्धीनां पूर्णतो वहिष्कारो भविष्यति। एवं च व्याप्तायां विश्वनभोमण्डले प्रलय-कालीन-धन-घटायां सर्वत्र शान्तिः विनाशश्च आच्छादयेत्। तेन च न कुत्रापि चिरस्थायिनी शान्तिः स्यादतोऽस्य सिद्धान्तस्य आचरणमावश्यकमिति।

३. **अहस्ताक्षेपः**—किमपि राष्ट्रमपरस्य राष्ट्रस्यान्तरिकेषु विषयेषु कीदृशमपि हस्तक्षेपं न कुर्यादिति तृतीयः सिद्धान्तः। एवं च परराष्ट्रेषु हस्तक्षेपेन तत्रत्याः समाधेया अपि विषया जटिलतमा भवन्ति। एवमेव परराष्ट्रस्य राजनैतिकसामाजिकार्थिक-सांस्कृतिक-विषयेष्वपि हस्तक्षेपं न विदध्यात्। एवं चेतसर्वत्राशान्तिः स्यादतो वलवन्तो निर्वलानां स्वतन्त्रतां न हरेयुः, सर्वत्र च शान्तिः स्यादिति तृतीयसिद्धान्तस्याश्रयणमावश्यकमिति।

४. **समानता,पारस्परिकसहयोगश्च**—प्रत्येकं राष्ट्रं प्रत्येकेन राष्ट्रेण सह समानभावेन व्यवहरेयुः पारस्परिक सहयोगेन च तिष्ठेयुरिति चतुर्थः सिद्धान्तः। अनेन च जगति वर्तमानोच्चनीचभावाः समाप्तिमेष्यति। तथा च 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इतिभावनाभाविताः जनाः विश्वस्मिन् विश्वे सर्वैरेव राष्ट्रैः सहैकत्रीभूय पारस्परिकसहयोगेन विचार-विमर्शं कुर्युरिति धिया संयुक्तराष्ट्रसंघस्य स्थापनापि जाता। एवं च यानि राष्ट्राणि राजनैतिक-सामाजिकार्थिक-सांस्कृतिकदृष्टया निम्नस्तराणि परतन्त्राणि च तेषां राष्ट्राणां विषमतापनयने सहयोगदानं चिरशान्ति-स्थापनायालं स्यादतो विश्वशान्तिसंस्थापनाय चतुर्थसिद्धान्तस्याचरणमावश्यकमिति।

५. **शान्तिपूर्णसहास्तित्वम्**—सर्वाण्यपि राष्ट्राणि स्वां स्वां शान्तिपूर्णां सत्तां रक्षयुरिति पञ्चमः सिद्धान्तः। उपर्युक्तानां चतुर्णां सिद्धान्तानां समन्वयात्मकमेवायं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्तः संयुक्तराष्ट्रसंघस्यानुकूलः । अनेकशान्तिपूर्णसहास्तित्वेन असमाधेयानामपि समस्यानां समाधानं भविष्यति ।

भारत-चीन - वर्मा - रूस-पोलेण्ड - यूगोस्लाविया-इण्डोनेशिया-प्रभृतिभिर्देशैरपि पञ्चशीलसिद्धान्तस्योपादेयत्वं महत्त्वञ्च अङ्गीकृत्य सम्मानितोऽयं सिद्धान्तः । अस्य च लक्ष्याणि परमपावनानि श्रेयस्कराणि च सन्ति । अतएव सर्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन् सुखशान्तिसंस्थापनाय पञ्चशीलसिद्धान्तानामाश्रयणस्य महत्यावश्यकता वर्तते ।

५२. ग्राम्य-जीवनम्

नानाविध-चरित्र-चित्रिते सुख-दुःख-समवाये सम्पद्विपद्वहुले भारतवर्षेऽस्मिन् ग्रामाणां संख्या अधिकाः सन्ति । जनसंख्यायाः प्रतिशतं नवति-संख्या जनाः ग्रामेषु निवसन्ति । ग्रामस्य सुषमा अपूर्वैव भवति । ग्रामे क्षेत्राणि शाद्वल-शोभितानि समुल्लसन्ति, क्रीडनाय विहरणाय च विस्तृतानि क्षेत्राणि भान्ति, भोजनाय पुष्टिकराणि अन्नानि, नवीनानि फलानि, विशुद्धं घृतं पयश्च समुपलभ्यन्ते, पानाय कूपानां मधुरमधुरं जलं सर्वत्रैव प्राप्यते । अत्र प्रकृति-नटी विलासिनीव विशिष्टां शोभां वहति ।

ग्रामेषु ये निवसन्ति ते ग्रामीणाः ग्राम्या वा उच्यन्ते । ग्रामाणानां निवासिनः प्रायेण कृषकाः भवन्ति । तेषां च जीवनं शान्तिमयं सरलं च भवति । ग्रामीणाः परिश्रमशीलाः व्यवहारकुशलाः सत्यवादिनः धार्मिकाः दयालवश्च भवन्ति । ते च परस्परं सौहार्देन व्यवहरन्ति । तेषां प्रमुख-व्यवसायः कृषिरेवास्ति । तत्र ते अहर्निशं घोरं परिश्रमं विधाय अन्नानि समुत्पादयन्ति । तैश्च स्व-जीवनं यापयन्तः ते परमं सुखमनुभवन्ति ।

परमद्य ग्रामाणां तादृशी अवस्था न विलोक्यते, ग्रामीणा अपि तादशाः न सन्ति । ग्राम्य-जीवनमपि तादृशं वाह्याडम्वररहितं स्वाभाविकं सहानुभूतिपरं सरलं च न विद्यते । अद्य तु ते परस्परं कलहायन्ते, स्वार्थहेतोः असत्यं वदन्ति, अधर्मपरा न कस्मै किमपि ददन्ति, सदाचरणरहिता प्रवञ्चनपराः सन्ति, न पारस्परिक-स्नेहः तेषु विद्यते, परस्योन्नतिं विलोक्य ईर्ष्यन्ति तस्मै, न च ते पूज्यान् पूजयन्ति, न मान्यान् मानयन्ति, नातिथेः सत्कारं कुर्वन्ति, परनिन्दा-परायणाः ते न सद्व्यवहारम् आचरन्ति, स्व-स्वार्थ-साधनमेव परमार्थं आकलयन्ति ।

अधुना तु ग्रामाणां दशाऽतीव शोचनीया वर्तते । ग्रामीणाश्च दुरवस्थापूर्णाः व्याधिभिर्ग्रस्ताः भूस्वामिनाम् ऋणभारेण अभिभूताश्च ते न सुखादिकं लभन्ते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतिवृष्टयादिभिः प्रकृतिकोपैः तेषां सस्य-सम्पत्तिरपि नष्टा भवन्ति, तेन वराकास्ते स्वशिशूनां पालन-पोषणेऽपि असमर्था विलोक्यन्ते । तेषां दुर्दशां विलोक्य भृशं दोदूयते चेतः ।

महान् प्रमोदावसरः, यदद्य भारतीयं शासनं ग्रामाणां सर्वाङ्गीण-विकासाय दत्तचित्तो विलोक्यते । ग्रामे कृषकाणां संख्याधिक्यात् तेषामुत्थानार्थं कृषि-विकासाय च नवां नवां विकास-योजनां समायोजयत् शासनमधुना । शासनेन च ऊषरभूमेः ऊषरतामपनेतुं देशमिमं सरिन्मातृकं च विधातुं योजना निर्मिता । योजनया अनया कृषिभूमेर्वृद्धिः सेचनादेः सुव्यवस्था अतिवृष्टयादि-प्रकृतिकोपात् रक्षणं च भविष्यति । कृषि-शिक्षा-हेतोश्च देशेऽनेके कृषिविद्यालयाश्च स्थापिताः शासनेन । कृषिकर्मणि समुन्नतये विदेशेभ्यः नव-नवानि यन्त्राणि चानीयन्ते ।

ग्रामाणां च विकासाय ग्रामेषु सहकारि-समितयः, कुटीरोद्योगा इत्यादयो विविधा योजना आरभ्यन्ते । अधुना ग्रामे ग्रामे विद्युत्प्रकाशो दीप्यते, बालानां शिक्षणाय विद्यालयाः स्थापिताः सन्ति, रोगापनयनाय स्वास्थ्य-लाभाय च चिकित्सालया स्थापितां विलोक्यन्ते, मार्गाः सुव्यवास्थिताः प्रासादाश्च पक्वेष्ट-निर्मिताः सन्ति । इत्थं च ग्रामा अधुना समुन्नतशीला विलोक्यन्ते । मया ग्रामवासिनां सुख-शान्ति-कामनया संस्तूयते—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।

५३. मम महाविद्यालयः

अस्माकं महाविद्यालयो नगरादविदूरे सुरम्ये वातावरणे विराजितो वर्तते । असारेऽस्मिन् संसारे सारभूतं वस्तु विद्यैव वर्तते, अतएव **'विद्ययाऽमृतमश्नुते"** "विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्" इत्यादिप्रकारैर्विविधा विद्यायाः स्तुतितती: शास्त्रेषु साहित्यिक-ग्रन्थेषु च श्रूयते । तस्या एव विद्यायाः प्राप्ति-स्थानत्वात् अस्य महिमा सर्वान् अतिशेते ।

'सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते" इति वाक्यानुसारं विद्यादानस्थानम् एतत् सर्वेषामेव जनानां पूज्यमेव । अत्र चोच्च-नीच-स्त्री-पुरुषादि-वर्गजाति-भेद विना सर्व एव विद्यानुरागिणः छात्रा विद्याध्ययनार्थम् आगच्छन्ति । विविधदिग्विभागेभ्यः समागतान् खगान् यथा सरोवरः सलिल-सम्प्रदानेन पिपासा-प्रतीकारेण संतोषयति, एवमेव विद्यालयोऽपि विविध-विद्याभिलाषिणो दूरादपि समागतान् विद्यार्थिनः सुत-निर्विशेषं विद्या-सुधया प्रीणाति, याञ्च समास्वाद्य सर्वान् इतरान् पदार्थान् तुच्छान् आकलयन्ति ते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्य च वित्ति-वित्तस्य समालम्वनेन सर्वाम् एवं जीवन-यात्रां सुखेन संचालयन्ति । अतएव नागरिका ग्रामीणाश्च वहवः छात्राः प्रत्यहम् अत्र समायान्ति । विद्यालयस्य भव्यं भवनं सुधया अवलिप्तं दूरत एवं यशोवितरणं कुर्वदेव नयनगोचरतां प्रयाति । अत्र च सर्वासामेव कक्षाणां कृते पृथक् पृथक् प्रकोष्ठं निर्मितं वर्तते । अत्र च वेत्रासनानि काष्ठासनानि च पङ्क्तशः सन्निहितानि द्विगुणामेव सुषमां वर्धयन्ति ।

विद्यालयस्य बहिर्भागे भव्यं शाद्वल-शोभितम् उद्यानं विराजते, यत्र मालाकारैः सभाजितानि केदाराणि शोभन्ते । तेषु प्रस्फुटितानि, अर्ध-विकसितानि विविध-वर्णानि सुगन्ध-प्रपूर्णानि सुमनानि कालिकाश्च आगन्तुकानां जनानां मनांसि रमयन्ति ।

विद्यालये वरिष्ठा गुण-गरिष्ठा विश्वामित्र-वशिष्ठ-सदृशा विविध-शास्त्र-दक्षा महोपाध्याया उपाध्याया विभागाध्यक्षाश्च विद्यार्थिजनान् उपकुर्वन्तः ज्ञान-गरिमाणं वहन्तो विद्यामहत्त्वं दर्शयन्तो मूर्तिमन्तो विद्यानिधय इतस्ततो विराजमाना दृश्यन्ते । एषां ज्ञानगौरवेण छात्रेषु सुत-निर्विशेषं स्नेह-रस-वर्षणेन समनुशासन-महत्त्वेन विषय-प्रतिपादन-वैशारद्येन च स्वत एव श्रद्धया शिरोऽवनतिं भजते । एषां कृपया एतज्ज्ञान-गङ्गावगाहिभिः विविधैश्छात्रैः स्वबुद्धि-वैभवेन उच्चपदावाप्त्या विधीयते देशसेवा समाजसेवा विद्यासेवा च । विद्यालयस्य कीर्तिश्च तैः सर्वत्र प्रसार्यते ।

विशेषावसरेषु सभाकरणार्थं समागन्तुकानां विशिष्टजनानां स्वागतार्थं सर्वेषां विद्यार्थिनाम् एकत्र-संस्थापन-योग्यं सभाभवनं विद्यालयस्य मध्येऽपूर्वामिव शोभां समुद्वहति । अस्मिन् समागतानां सभ्यानां गुरुवराणां महापुरुषाणाञ्च उपदेशपीयूषेन वहन्ति मनस्तोषं समये-समये विद्यार्थिवृन्दानि । अध्ययनाध्यापनरतानां विद्यार्थिजनानाम् अध्यापकानां च निवहेन सुशोभितं विद्यालय-भवनं दृष्ट्वा प्राचीनानां तक्षशिलादि-विश्वविद्यालयानां चित्रं मनसि लिख्यते ।

समये समये समायोजितासु प्रतियोगितासु विद्यालय-प्रातिनिध्यं कुर्वतां छात्राणां शिक्षार्थं वाक्पाटव-प्रौढि-प्रदर्शनार्थं च विद्यालये प्रतिसप्ताहं शनिवासरे छात्रसभायाः समायोजनं भवति । यत्र छात्राः स्वयोग्यतानुसारं भाषणं कवितां आख्यायिकां वा पठन्तो गुरुभ्यः तत्कौशलम् अर्जयन्तः नागरिकेषु विषयेषु विचारान् प्रकटयन्तः संदृश्यन्ते ।

शरीर-समुन्नतिं विना मानसिक-समुन्नतिर् अपूर्णा इति कृत्वा छात्राणां शारीरिक-विकासार्थं पार्श्वत एव विराजते क्रीडास्थली । अस्यां पठनानन्तरं छात्रा हस्तकन्दुक-पादकन्दुक-क्रीडा-धावनादि-विविध-व्यायामान् कुर्वन्तो दृश्यन्ते । तेषां शिक्षार्थं सन्ति व्यायाम-शिक्षका ये विविध-प्रकारेषु तेषां पाटवम् आतन्वन्ति । देशरक्षार्थं सर्वकारेण प्रचालिता राष्ट्रीय-सैनिक-प्रशिक्षणमपि विद्यालये प्रचलति । सायंकाले विविधप्रकारान् व्यायामान् कुर्वतो । भुशुण्डी-हस्तान् लक्ष्य-भेद-निरतान् विद्यार्थिनो विनिभाल्य गर्वेण दर्शकशिरांसि स्वत एव समुन्नतिं लभन्ते ।

मनसि च जायतेऽयं विचारक्रमो यद् यस्य भाविनागरिकाः शास्त्रबलेन सह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शस्त्रवलेन च संयुक्ता सन्ति । तस्य देशस्य "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते" इति प्राचीनोक्ति-प्रकाशे न केनापि शत्रुणावनतेः कल्पनापि कर्तुं पार्यते।

अत एव अदर्श-देश-निर्माणार्थं सर्वदा सर्वथा च निरतोऽयं विद्यालयो वन्दनीय एव । मम तु चेतोऽत्र मातृवत् पितृवत् स्नेहं धारयति । यतो मातापितरौ तु केवलं जन्मदातारौ, किन्तु विद्यालयस्तु तस्य ज्ञानस्य प्रदाता यस्य प्राप्त्यैव मानव-जीवनं सफलं भवति । अन्यथा मनुष्यस्य पशोश्च न कोऽपि भेदो भासते । अत-एव **'विद्याविहीनः पशुः'** इति विद्याहीनस्य पशुता शास्त्रकारैः समुद्घोषिता । अन्ते च विद्यालयस्य गुरुवर्गस्य च चरणयोः प्रणति-निवेदन-पुरस्सरं विरम्यते मया ।

५४. मम महाविद्यालयस्योपाधिवितरणोत्सवः

(दीक्षान्त-समारोहः)

नाना-विध-ज्ञान-विज्ञानादि-परिपूते सर्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन् विश्वविद्यालयेषु छात्राः यदा स्वाध्ययनं परिसमाप्य गृहं प्रति गन्तुकामाः भवन्ति तदा विश्वविद्यालयेषु तेभ्य उपाधि-प्रदानार्थं समारोहस्य आयोजनं भवति । समारोहेऽस्मिन् आचार्याः उपकुलपतयो वा शिष्यान् अनुशिष्य तेभ्य उपाधिं प्रददन्ति । अयमुत्सवो 'दीक्षान्त-समारोह' इति नाम्ना व्यवह्रियते ।

दीक्षान्त-समारोहस्तु सर्वेष्वेव विश्वविद्यालयेषु महाविद्यालयेषु वा भवति। अस्मिन्नब्दे मम महाविद्यालयस्य उपाधि-वितरणोत्सवः दिसम्बरमास्य १५ तारिकायां सम्पन्नोऽभवत् । अस्मिन्नुत्सवे अस्मत्प्रदेशस्य शिक्षामन्त्रिणः दीक्षान्त-भाषणं कर्तुं समागता आसन् । उत्सवस्य च अध्यक्षपदं श्रीमन्तो राज्यपालमहोदया अलङ्कुर्व-न्तिस्म । उत्सवेऽस्मिन् प्रदेशस्य अनेके गणमान्याः विद्वांसः प्रतिष्ठिताः नागरिकाश्च समुपस्थिता अभूवन् ।

महाविद्यालयस्य सुरम्ये विस्तृते भूभागे एकं विशालं सभामण्डप निर्मित-मासीत् । दिनस्य तृतीये भागे सर्वे स्नातकाः प्राध्यापकाः नागरिकाश्च सभामण्डपं समागत्य निर्धारिते स्थाने उपाविशन् । अध्यक्षमहोदयाश्च सार्धद्विवादनवेलायां सभामण्डपमलञ्चक्रुः । तदैव मङ्गलगीतिकानन्तरं राष्ट्रगीतिरगायन् बालिकाः । तदनन्तरं मम महाविद्यालयस्य प्रधानाचार्यमहोदयाः श्रीराज्यपालमहोदयान् शिक्षा-मन्त्रिणः मान्यानागन्तुकांश्च समभ्यनन्दयन् । ततपश्चात् एव विद्यालयस्य वार्षिकं विवरणम् अश्रावयन् ।

तदनन्तरं शिक्षामन्त्रिमहोदयाः संस्कृतभाषायाः समुन्नति-विषये महत्त्वपूर्णं दीक्षान्तभाषणमकुर्वन् । तेषां सारगर्भितं भाषणं श्रुत्वा सर्वे एव हर्षोत्फुल्लवदनाः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभूवन् । तेषां करतलध्वनिना च सभामण्डपं पूरितमभवत् । पश्चाच्च श्रीराज्यपाल-महोदयाः स्वकरकमलाभ्यां स्नातकेभ्य उपाधिपत्राणि व्यतरन् । तथा पुरस्कार-विजेतृभ्यः स्नातकेभ्यश्च पुरस्कार-वितरणमपि अकुर्वन् ।

अन्ते च मम महाविद्यालयस्य सभापतिमहोदयाः श्रीयुतराज्यपालमहोदयेभ्यः शिक्षामन्त्रिमहोदयेभ्यः अन्येभ्यो विद्वद्भ्यः आगन्तुकमहानुभावेभ्यश्च धन्यवादान् प्रदाय दीक्षान्त-समारोहस्य समाप्तिमघोषयत् । इत्थं च मम महाविद्यालयस्य उपाधिवितरणोत्सवः समाप्तिमगात् ।

५५. नौकाविहारः

विविध-दुख-दीधिति-दीपिते नैराश्य-धूलि-धूसरे नीरसे संसार-मरुस्थलेऽस्मिन् सततमेव संसरतो मनुजस्य कृते यानि विश्रान्ति-स्थानानि विलोक्यन्ते । तान्येव हर्षोदक-परिप्लुतानि मन्दाकिनी-मनोरम-तीर्थ-कल्पानि स्थलानि मनोरञ्जन-पदाभिधेयतां भजन्ति । एकदा अध्ययन-श्रम-क्लान्तैः अस्माभिः सतीर्थ्यैः सहपाठिभिः मनोरञ्जनार्थं तरणि-तनयायां तरणि-विहारस्य विचारो व्यधायि ।

सायङ्काले तदर्थं नौकामेकां विहारार्थं निश्चितां विधाय वङ्गीयघट्टतः प्रस्थानं कृतम् । मन्दं मन्दं समुपसरता तटस्थोपवन-सुगन्ध-सुमन-वासं समुपवहता तापं समुपहरता जलशैत्यं दधता मरुता सर्वेव श्रान्तिः दूरीकृता । हृदये समुपजातो नवीनोत्साहस्य प्रादुर्भावः । शनैः शनैः सञ्चरन्ती प्रतिप्रवाहं वहन्ती तरणिरेषा शिक्षामेतां प्रदिशन्तीव प्रतिभाति यत्संसार-सागरेऽस्मिन् समय-सलिल-धारा तृण-फेन-बुद्बुद-निभान् निश्चेतनान् एव जनान् स्वानुसारं प्रवाहयति । परन्तु यथा चेतना प्रवाहपतिता प्रतिकूलां चेष्टां कुर्वन्तः न लक्ष्याद् भ्रंश्यन्ते, तथैवास्माभिरपि स्वलक्ष्यावाप्तये चेष्टा सततमेव सर्वथा समाश्रयणीया । नहि केनापि प्रकारेण वयं लक्ष्यहीना भवेम, येन चोपहास्यता जायेत ।

शनैः शनैः प्रतिप्रवहन्त्यां नावि संस्थितैरस्माभिः नयन-गोचरताम् उपनीता महनीया शिल्पकार-नमनीया घट्टपरम्परा । प्रयाग-वाराणसी-कनखल-प्रभृतीनां प्रसिद्ध-तीर्थानां निवास-स्थल-रूपेण प्रसिद्धानां तदभिधानानां घट्टानां संख्या चतुर्विंशतिरिति विद्यते । एषु मध्ये संस्थितस्य सकल-घट्ट-नायकस्य विश्रान्ति-क्षेत्रस्य तु महिमा वागगोचर एव ।

एवमेव क्रमेण भ्रमद्भिरस्माभिरवाप्तं दुर्दान्तस्य कंसनृपतेर्दुर्गम् । अनेक-सोपान-निवह-मण्डितस्य श्रीशिव-भैरव-मन्दिर-शोभितस्य जीर्ण-शीर्णस्यापि दुर्गस्यास्य महत्त्वम् अद्वितीयमेव । बलात्समायान्त्या यमभगिन्या यमुनायाः प्रवाहं निरुन्धन् तेन च मथुरापुरीं रक्षन् स्वीय-दुर्गतां कृतार्थयति ।

तदनन्तरं परिणतो दिवसः । भगवतो भुवन-भास्करस्य भास्करस्य सुवर्ण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदृशी प्रभा सर्वत्र प्रसृता । यन्मन्ये दुहितृ-वत्सलेन मरीचि-मालिना प्रियसुतायै दिव्यं पीताम्वरं समर्पितम् । किम्वा समस्त एव स्वीयः स्नेहरसः तनुजाया उपरि प्रवाहितः । आहोस्वित् तटस्थ-धार्मिक-जनानां मूर्तिमान् एषोऽनुरागः प्रवहति । पुनः प्रवाहानुसारं प्रवहन्तीं तरणिं विलोक्य संचालकैरपि विश्रान्तिः समुपलब्धा ।

कालेऽस्मिन् घट्टानां काप्यपूर्वैव सुषमा समुल्लसति । एकत्र धार्मिका जना सन्ध्योपासनं विदधन्तः पवित्रमन्त्रान् जपन्तो दृश्यन्ते । अपरत्र भगवन्नामोच्चारणं कुर्वन्तः तत्प्रेम्णा स्वजन्म कृतार्थयन्तो गोविन्द-गुणानुवादं विदधन्तो जनाः विलोक्यन्ते । इतरत्र साक्षादिव भगवल्लीलां दर्शयन्तः तदाचरणं निदर्शयन्तः कथारसेन सहृदय-हृदयं प्लावयन्तः साहित्य-वैभवेन सह वक्तृत्व-वैदुष्यं विशेषयन्तो विद्वांसो भगवत्कथां कथयन्तो विनिभाल्यन्ते ।

पुनरपि विश्रान्ति-क्षेत्रे समागतैरस्माभिः स्थिरीकृता तरणिः, यतो कालेऽस्मिन् भगवत्या कलिन्द-नन्दिन्या नीराजनं प्रत्यहं विधीयते । विविध-दान-दातॄणां कीर्ति-कलेवरेषु तोरणेषु लम्वितानां महाघण्टानां प्रतिशब्दमेदुरो निःस्वनः पूरयत्येव कर्णकुहरम् । अष्टोत्तरशत-दीपानां मालया भूषितं रजतमयं वृहन्नीराजनपात्रं पुष्णात्येव कामप्यपूर्वां शोभाम् ।

अतः तारकितं नभोमण्डलं दीपप्रतिविम्वेन सह वहन्तीं, श्रद्धालु-जन-समर्पित-प्रदीप-पटलं स्वीकुर्वन्तीं, पूजक-पाप-प्रचयं विनाशयन्तीं यमुनां साक्षाद् कारुण्य-कल्लोलिनीमेव कलयन्ति कोविदाः । विविध-दिग्भागेभ्यः समागताः तीर्थयात्रिणः स्वीयश्रद्धया सह धर्मनिष्ठां तीर्थमाहात्म्यं च प्रकटयन्तो धर्मसूत्रेण सम्पूर्णस्य देशस्यैकतां प्रमाणयन्तो भक्ति-भाव-भरितानि गीतानि गायन्ति । प्रेमप्रवाहं प्रसारयन्तः पाषाण-हृदयान्यपि सरसानि विदधन्ति । शिरांसि कराञ्जलिभिः सह अवनमन्तः स्वशक्तिसदृशीं वरिवस्यां रचयन्तः सकल-तीर्थ-सम्मेलनमिव कुर्वन्तो दृश्यन्ते ।

वयमपि भक्ति-भाव-भरिता नावं संत्यज्य संगताः पुण्य-कार्येऽस्मिन् । व्यपगत-श्रम-संपर्केण समुन्नति-सरसीरुह-शोभितेन नव्योत्साह-सलिलेन पूरितं मानसमिव मानसम् अस्माकम् । स्वभावत एव तच्च विशद-विचार-मञ्जु-मरालानां वसतिस्थानं संजातम् । एवं रीत्या अनया नौविहारं विरचय्य संलब्धा अस्माभिः सर्वैरपि शान्तिः शक्तिसम्पच्चेति ।

++

५६. तीर्थयात्रा

विविध-देश-वेश-भूषाचार-विचार-महिते धर्म-विभूषा-विभूषिते सदाचार-प्रचारे अस्मिञ्जगति सन्त्यनेके सम्प्रदायाः जातयो वर्णाः धर्माश्च । तत्र सर्वेषां जनानां धर्माणां वर्णानां सम्प्रदायानां च नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् प्रतिपादितानि ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' इत्यनुसारं सर्वं एव स्वस्वधर्मस्य अनुष्ठाने पालने रक्षणे च तत्पराः दृश्यन्ते । नहि केवलं भारतीया एव किन्तु मुस्लिम-ईसाई-पारसी प्रभृतयोऽपि स्वस्वसम्प्रदायानुसारेण स्वे स्वे धर्मेऽभिवर्तमानाः दृश्यन्ते । मुक्तिकामाः सुख-शान्ति-कामाश्च तेऽपि स्वेष्टदेवतां स्मरन्ति सेवन्ते च तत्र गत्वा देवालय तीर्थादिकं च ।

प्रवहति च पुण्यसलिला पापसलिला सरिदस्मिञ्जगति । यत्र च निमञ्जमानाः जनाः स्वस्वकर्मानुसारं फलम् उपभुञ्जानाः सुखदुःखादिकम् अनुभवन्ति । तत्र पापसिन्धोः उद्दिधीर्षवो जनाः तरन्ति पापादिकं यस्मात् तत्तीर्थयात्रां विधाय तीर्थतोये च संस्नाय पापान्मुक्त्वा पुण्यमर्जयन्ति । सन्ति च विभिन्न-सम्प्रदायानां तत्तत्सम्प्रदाय-भेदेन नैकविधानि तीर्थानि । यथा भारतीयानां कृते प्रभासादीनि यवनानां कृते मक्का-मदीना-प्रभृतीनि च । यत्र च सहस्रशो धर्मधनाः जनाः साधवो ब्रह्मचारिणः सन्यासिनः तपस्विनः गृहस्थाश्च परया श्रद्धया विश्वासेन च प्रतिवर्षं समागत्य स्वजीवनं च कृतार्थयन्ति ।

तरति पापात् यस्मात् तत्तीर्थं त्रिविधं जङ्गमं मानसं स्थावरं चेति । तत्र ब्राह्मणाः जङ्गमं तीर्थं, मनसः परा विशुद्धिरिति मानसं तीर्थं, प्रयागादीनि तीर्थानि स्थावराणि तीर्थानि चोच्यन्ते । एषु पुण्यसलिलेषु ये नराः स्नान्ति, ते परमां गतिं यान्ति । उक्तं च तीर्थगमनस्य महत्त्वं यथा—

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टा विपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥
तीर्थान्यनुस्मरन्धीरः श्रद्दधानः समाहितः ।
कृतपापो विशुध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत् ॥

युगभेदेन तीर्थविशेषस्य महत्त्वं प्रतिपादितं पद्मपुराणे यथा—

कृते तु पुष्करं तीर्थं त्रेतायां नैमिषस्तथा ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रे कलौ गंगा समाश्रयेत् ॥

भारतवर्षेऽस्मिन् सन्त्यनेकानि तीर्थानि । तेषु चतुर्दिक्षु निखिल-तीर्थ-शेखरीभूतानि चत्वारि महातीर्थानि सन्ति । यथा—पूर्वस्याम् उड़ीसाप्रान्ते समुद्रतटे जगन्नाथपुरी, दक्षिणस्यां दिशि श्रीसेतुबन्धरामेश्वरम्, पश्चिमाशायां काठियावाड़-प्रदेशे श्रीद्वारिकाधीशस्य स्थानम्, उत्तरस्यां नगाधिराजस्य हिमालयस्य शिखरे 'बद्रीनाथ' नामकं स्थानं च विराजन्ते । एतानि च महातीर्थानि 'चार धाम' इति नाम्ना व्यवह्रियन्ते जनैः । एषु महातीर्थेषु गत्वा मानवाः मोक्षाभिधानं परमपदं लभन्ते ।

सत्सु तेषु विविधतीर्थेषु सप्ततीर्थानि मोक्षदायकानि पुण्यभूतानि च प्रतिपादितानि । यथा—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तासु वासं प्रकुर्वन्ति ये मृता वा नराः परम् ।
लभन्ते न पुनर्जन्म मातृगर्भेषु कुत्रचित् ॥

तेषु नैकविधेषु तीर्थेषु तीर्थराजः प्रयागः शोभते पुण्यसलिलायाः गङ्गायाः पावने तटे । अत्र च सङ्गता गङ्गा यमुनया सरस्वत्या च सह । अतएव 'त्रिवेणीसङ्गम' इति संज्ञया गीर्यते सर्वैः लोकैरिदं स्थानम् । अत्र च ब्रह्मादयो देवा ऋषयो महर्षयो योगिनः सिद्धाः तापसाश्च निवसन्ति । माघमासे बहवो धार्मिकाः साधवो महात्मानः आबालवृद्धातुराः सधना निर्धना वा जनाश्च अत्रागत्य मासमेकं यावदत्र निवसन्ति तत्र त्रिवेणीसङ्गमे स्नात्वा स्वं पावयन्ति । प्रयागराजस्य नाम सङ्कीर्तनेन श्रवणेनापि सर्व-पाप-प्रणाशो भवति, किं पुनः स्नानेन । स्नानेन तु राजसूयाश्वमेधादिफलं लब्ध्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते ।

एतेषां तीर्थानां न केवलं धार्मिकं महत्त्वमेव, अपितु सांस्कृतिकमपि महत्त्वं विद्यते । तेषु तेषु तीर्थेषु तीर्थ-यात्रा-प्रसङ्गेन तत्तद्देशदेशान्तरेभ्यश्च समागतानां विभिन्नदेशवासिनां जनानां संसर्गात् तत्तद्देशानां वेशभूषाणाम् आचार-विचाराणां सभ्यता-संस्कृतीनां-भाषा-विभाषाणां ज्ञान-विज्ञानादीनाम् अपि ज्ञानं भवति । किञ्च तत्तत्तीर्थानां प्राकृतिकी शोभा चातीव दर्शनीया भवति । तेषां रमणीयता पवित्रता मनोहरता स्वच्छता भव्यता सर्वेषामेव मनांसि आकर्षन्ति । एवं च तेषां रमणीयताम् अवलोक्य नास्तिकाः पामरा अपि जनाः तत्र निवसितुम् अभिलषन्ति । **'न गंगासदृशं तीर्थम्'** इति महाभारत-वचनानुसारं गङ्गायाः सर्वतीर्थमयत्वं प्रतिपाद्य तस्या महत्त्वमुद्घोषितम्—

दृष्टा तु हरते पापं स्पृष्टा तु त्रिदिवं नयेत् ।
प्रसंगेनापि च या गंगा मोक्षदा त्ववगाहिता ॥

५.७. प्रभातवर्णनम्

सकल-लोक-कलनस्य कालस्य विभागेषु प्रभातकाल एव स्वीयसुषमया गुण-गणग्रहणेन च गरीयान् गण्यते । निविडान्धकार-परिवृताया अनेक-दूषण-दर्शनाद् 'दोषा' इति नाम सार्थकं कुर्वत्याः तमिस्रायाः प्रभावेन निश्चेतनं जगदिदं प्रलय-प्रवाह-पतितम् इव प्रतीयते । अतीतायाञ्च दोषायां समायाति प्रभातवेला । प्रलय-पतितमिव जगत्पुनः प्रबुध्यते । निखिलमेव चेतनाचेतनं स्थावर-जङ्गमं चैतन्य-धारा-पावितं नवीनमिव दृश्यते ।

प्राच्यां दिशि भगवतो भुवन-भास्करस्य भास्करस्य समागमनं वदन्निव माञ्जिष्ठ-मेदुरः प्रकाशो मोदयति मनांसि । मन्ये सकल-लोक-चैतन्य-सवितुः सवितुः सम्माने रागरञ्जितेन सलिलेन सन्धौतं गगनमण्डलम् । तत्र प्रभात-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वो

काले सलिलस्थ-देवता-मुखानीव अरविन्दानि विकसन्ति, मञ्जु-मकरन्द-सुगन्धेन प्रीणयन्ति मकरन्दान् कमलवन्धात् उन्मुच्य गुञ्जन्ति भ्रमराः, स्वीयसुषमया च हरन्ति जनमानसानि ।

मन्दं मन्दं प्रवहन् सकलतापं संहरन् नवीनां स्फूर्ति वितरन् पुष्पाणि विकरन् सुगन्ध-सञ्चयं धरन् मारुतः सर्वेन्द्रियाणि सन्तुष्टानि विदधन् विराजते । मञ्जुगुञ्जतां मधुकराणां पटलानि सञ्चरन्ति । सुप्त-प्रवुद्धानां कलरवेण सतसप्तेः स्वागतं कुर्वतां पक्षिणां पटलानि विनिभाल्य को नाम पाषाण-हृदयो जनः आनन्दार्णवे निमग्नो न भवेत् ?

एकत्र पक्षिणो मधुरं मधुरं कूजन्ति, अपरत्र निद्रां विहाय मृगादय उत्तिष्ठन्ते, इतरत्र क्षुद्रजन्तवः कूर्दन्ति, मयूरा नृत्यन्ति, पुष्पाणि विकसन्ति, विरह-विधुर-चक्रवाकी-चयः प्रियतम-परिष्वङ्ग-सौख्यम् अनुभवति, तमिस्र-घूमिला धरणिरपि पुनर्दर्शनेन मोदम् आवहति । इत्थं प्रभातकाले सर्वत्रैव चेतनस्य हर्षस्य च साम्राज्यं संराजते ।

महर्षीणां पुण्याश्रमेषु विद्यार्थिनो वेदपाठं कुर्वन्ति, होमधेनवो मुदिता वत्सैः सह चरन्ति, मनोरमो होमगन्धः पुष्प-गन्ध-मेदुरो मोदयति, वीताशङ्काः हरिणशिशवो वटुभिः सह खेलन्ति, ब्रह्मचारिणः समिधः संहरन्ति, पुष्पाणि चव-चिन्वन्ति, धार्मिका सन्ध्यावन्दनं विदधन्ति, पवित्रमन्त्रान् जपन्ति, निदिध्यासनेन परमेश्वरं हृदयपटले धारयन्ति । सर्वविध-पाटव-प्रदस्य कालस्य अस्य द्वितीयं नाम विद्यतेऽमृतवेलेति प्रसिद्धम् ।

अस्मिन् समये यो जनो यत्कार्यं कुरुते तस्मिन्नेव सिद्धिः सञ्जायते । अतएव ये पठनप्रिया विद्यार्थिनः पठन्ति कालेऽस्मिन्, तेऽनायासमेव परीक्षापगां संतीर्य यशोभाजनतां प्रीतिपात्रताञ्च प्राप्नुवन्ति । गृहे मन्दं मन्दं घूर्णमाना दीपका रात्रि-जागरण-श्रम-श्रान्ता इव यथा दृश्यन्ते तथैव गगनेऽपि शनैः शनैस्तारा शान्तिम् उपयान्ति । वियन्मणि-कुट्टिमे पर्यस्ताः सुमन-सन्दोह-सदृशाः तारा उषःकाल-कला चतुर-गृहिणीव तमःपङ्केन सह माणिक्य-मणि-कलित-संमार्जन्येव अरुण-गभस्ति-ततिना निःसारयति । प्रभातकाले स्वत एव शेमुषी विकासं लभते । निर्गत-दोष-कलङ्क-पङ्काया संसार-सागर-समुत्तरण-तरण्या एतत्कालीनाया अस्या प्रशंसापरं वाक्यं युक्तियुक्तमेव जागर्ति—

"सा मतिः सर्वदा भूयात् को न मुच्येत बन्धनात् ।"

एतादृश-वैशिष्टय-वासितस्य सकल-लोकाभिरामस्य प्रभातस्य वर्णनं प्रायः-सर्वैरेव कवितल्लजैर्विधाय सफलीकृता स्वीया सरस्वती । महाकाव्येषु च प्रायः सर्वेष्वेव प्रभात-वर्णनं विद्यते । कविकुलगुरुणा वागीश्वरी-हासेन श्रीकालिदासेन सर्वत्रैव वर्णितेऽपि प्रभाते रघुवंशीय-पञ्चम-सर्गस्थं प्रभातवर्णनं कविता-कामिन्या शेखरायते । अभिज्ञानशाकुन्तलीयं वर्णनं नयनयोः सम्मुखे प्रभातकालीनं चित्रं संरचयन् विराजते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥

अन्ते च निवृत्तीकृत-कविताघस्य महाकवि-माघस्य प्रभात-वेला-वर्णनं परं प्रसिद्धतरं श्लोकम् उपस्थाप्य विरम्यते लेखात्——

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः ॥

५८. ऋतुवर्णनम्

द्वादश-मासमयीं वर्षात्मिकां कालकलां समाश्रित्य मासद्वय-व्यापिनः षड्तवः समुल्लसन्ति। मीनसंक्रमणाद् आरभ्य संक्रान्ति-द्वय-पर्यन्तम् एकैकः वसन्तादि ऋतुर्भवति। तद्यथा मीन-मेष-व्यापी वसन्तः, वृष-मिथुन-व्यापी ग्रीष्मः, कर्क-सिंह-व्यापिनी वर्षा, कन्या-तुल-व्यापिनी शरद्, वृश्चिक-धन-व्यापी हेमन्तः, मकर-कुम्भ-व्यापी शिशिरश्च। प्रायो माघादिषु मासेषु शिशिरादीनां ऋतूनां समयो जायते। अतएव श्रीवाग्भटेन कालस्येयं गणना विहिता——

"मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमाद् षड्तवः स्मृताः ।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्‌हिमाः ॥"

सर्वर्त्तुषु च वसन्त एव शेखरायते। भगवता कृष्णेनापि गीतायां "ऋतूनां कुसुमाकरः" इति व्याहरता वसन्तस्य श्रेष्ठता स्वयमेव प्रतिपादिता। साहित्ये च वसन्तस्य वर्णनं वहुधा विधाय कविवर्यैः सफलिता स्वीया सरस्वती। ग्रीष्म-शीत-वाधा-विरहितो वर्षा-विभीषिका विहीनोऽयं समयः समेषामेव प्राणिनां चेतांसि प्रीणयति। प्रफुल्लानाम् समरन्द-प्रसूनानां परिचयाद् माधुर्यम् उद्गिरन् मन्दं मन्दं प्रवहन् दक्षिणो मारुतः दक्षिणो नायक इव कामवशंवदं जनं विदधाति । यथोक्तम्——

लताकुञ्जं गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जं चपलयन्,
समालिङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रवलयन् ।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्,
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥

वसन्तस्य विरामे समायाति तीक्ष्ण-दीधिति-तापितो भीष्मो ग्रीष्मः। मध्याह्ने स्वीयं नाम सार्थकं कुर्वतः तीक्ष्णरश्मेः खर-निकरैः ज्वालावलीमिव मुञ्चति धरणी, तपतीव नभोमण्डलम्, भ्राष्ट्र-धूलि-विक्षेपमिव विदधाति नयनेषु वातः। हिमकर-कर निकर पाटल-कर्पूर-पटलादीनि जीव-सञ्चारं कुर्वन्ति जनेषु। अस्मिन्नेव समये जलस्य जीवनम् इत्यभिधानं सर्वेषु पर्यायेषु सार्थकतां धत्ते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥

तदनन्तरं समायाति सरसाशया तडिद्गौरी परिवृताम्बरोत्कर्षा पयोधर-शोभा-हारिणी सकल-श्रान्ति-हारिणी प्रावृट् । ग्रीष्म-ताप-तापितं चेतनाचेतनवर्गं पुनरपि समुच्छ्वसतीव लोचन-गोचरताम् एति । पुनः समायाति वनानां सुषमा । नव-शस्य-श्यामला हरित-तृण-परिवृता धरणी हरित-वस्त्र-मोहिनीव मोहयति मनांसि । कालेऽस्मिन् स्वत एव कवि-कोविदानां चेतोरङ्गे कविता-नर्तकी नरीनृत्यते । कविकुलगुरोः कालिदासस्य मेघदूतं तु एतस्य निदर्शनमेव वर्षायाः वर्णनं कुर्वताऽऽ-दिकविना वाल्मीकिनाप्युक्तम्—

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुः,
निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥

वर्षावसाने मार्ग-कर्दमं विशोधयन्ती सलिल-सौभाग्यं सृजन्ती पद्म-पटलं प्रकाश-यन्ती चन्द्रिका चाकचक्यं चमत्कुर्वन्ती समायाति शरद् । निर्मलम् नभः सौभाग्यं धारयति, विपङ्का मही शोभते सर्वत्र । विभाति च सर्वत्र शेफलिकामयं कासमयं च निखिलमपि भुवनम् । मोदयति रमयति सुखयति च सर्वेषां मनांसि शारदीयं सुषमा । शारदीया सुषमा चेयं शतशोऽनुवर्णिता सुधीभिः । यथा—

अथ प्रसन्नेन्दुमुखी सिताम्बरा समाययावुत्पलपत्रलोचना ।
सपङ्कजा श्रीरिव गां निषेवितुं सहंसबालव्यजना शरद्वधूः ॥

अपरं चापि—

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति ।
घनैर्विमुक्तं निशिपूर्णचन्द्रं तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम् ॥

शरत्प्रसूतमेव शीतशिशुं वर्धयन्ती मार-महोत्सवं वितरन्ती शरीर-शक्ति समेधयन्ती हेमन्त-वेलानिर्वचनीयैव । महाप्रतापोऽपि रविरस्मिन् काले मृदुतां धारयन् जीवयति स्वभानुभिः सर्वान् प्राणिनः । हेमन्ते दीर्घ-तमिस्राणां लघुवास-राणाञ्च हृद्यैव वर्णना विराजते—

हिमधवलदन्तकेशी मन्दद्युतितारका वृहत्तिमिरा ।
द्विगुणीभूता रजनी वृद्धेव शनैः शनैर्याति ॥

हेमन्तस्यानेव गुणगणान् संधारयन् तदनुरूप-स्वभावः समायाति तदनन्तरं शिशिरः । प्रायः सर्वा एव ता एव परिस्थितयोऽस्मिन् काले समुल्लसन्ति या हेमन्तकाले विराजन्ते । अत्रापि हसन्ती हसन्ती हसन्ती नायिकेव ददाति सौख्य-सौभाग्य-सम्पत्तिम् । बहुशो वर्णितस्यापि शिशिरस्य सर्वानिव गुणान् वहत् हृद्यं पद्यमिदं प्रसिद्धमेव—

परमप्रमदा प्रमदा भ्रमरी भ्रमरीतिकोविदा विपिने ।
पवनो विभाति जवनो मदनः शिशिरे वियोगिनां कदनः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५९. वसन्तवर्णनम्

षड्धा विभक्तेन मासद्वयात्मकेन ऋतुचक्रेण वर्षात्मकं परिणामं कलयन् निखिल-लोक-कलनात्मको भगवान् कालः क्रीडति । तत्र सर्वेष्वेव ऋतुषु वसन्तस्यैव प्राधान्यं वर्तते । यतो नात्र ग्रीष्मवत्तपति धरणी, न वा वहति संतापं जनः, न च संसरति सोष्णताकः समीरणः, न वात्र वर्षावद् भवति क्लिन्नं वसुधातलं मलिनं सलिलं दूषितं वायुमण्डलम् वा, न वा हेमन्तवत् शीतबाधया कम्पते जनहृदयं शीतेन अकाले म्रियन्ते वराका निर्धना जनाः पशवः पक्षिणो वा, सरोरुह-शून्याः नयन-विहीना इव गतश्रीकाः सरोवराः नात्र भवन्ति ।

किन्तु वसन्ते शीतस्य अपगमेन ग्रीष्मस्य अनागमेन च भवति लोकाह्लददो मनोरमः कालः, सरति शीतलः ससौरभः समीरणः, सन्ति नव-पलाश-विभूषिताः मञ्जरी-पटवस्तरवः, नव-शस्य-शोभिता सप्रसून-पटला वसुन्धरा धरति नवकामनी कमनीयां शोभाम्। अमन्द-मरन्द-मेदुराणि वितरितानन्दानि अरविन्दानि निर्मलेषु नीरेषु विकसितानि प्रकटयन्त्येव कृतज्ञतां स्वाम् ऋतुपतिं प्रति।

नवदल-सम्पत्ति-शालिनी मनोरम-मरन्द-हारिणी पुष्प-पटल-सौरभ-विकासिनी समृद्ध-शस्य-संपत्-काशिनी जन-मनो-मोद-कारिणी सर्वत्र नवजीवन-दायिनी लोक-लोचन-विलासिनी सर्वसुषमा-धारिणी धरणिः स्वलीला-विलासैः समभिनन्दयतीव ऋतु-चक्र-चूडामणिं वसन्तम् ।

दुर्दान्तस्य क्रूर-स्वान्तस्य नृपतेर्विनाशे मृदुलचित्तं परोपकृति-वितरित-वित्तं प्रजापालं नवभूपालमिव वने सरोवरे क्षेत्रे विकसन्तं वसन्ते वन्दते वसुधा । सर्वविध-सुलक्षणः नाशित-क्लेश-कणो मोदित-जन-गणः सुरभीकृताम्रवणः शमित-हेमन्त-रणः कला-कलाप-दक्षिणो दक्षिणो मरुन् मन्दिरे मन्दिरे मोदयति मदन-महीपतिम् । वशीकृत-निखिल-जन-स्वान्ते सामन्ते वसन्ते समायाते शशिशेखरेण भस्मीकृतोऽप्यनङ्गः पुनः प्रकटयति स्वीयं साम्राज्यम् ।

सर्वत्र विसृतं वसन्तस्य मधुरिमानं समभिलक्ष्य मादकतां च विनिभाल्य साहित्ये प्रथितमस्य मधुररिति भव्यम् अन्वयान्तरम् । भगवता गोविन्देनापि "ऋतूनां कुसुमाकरः" इति प्रदर्शितमेव वसन्तस्य स्वस्वरूपता । वासन्तीयं सुषमा वैयाकरण-मूर्धन्येनापि साहित्य-शास्त्र-विशारदेन श्रीभट्टिमहाकविना मनोरम-प्रकारेणेत्थं समुपवर्णिता—

न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ कलगुञ्जितो न यो न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥

एवं मनोरमे समये यदा यमिनामपि चेतोवृत्तिः धृत-काम-वृत्तिर्जायते, तदा का कथा सांसारिकाणां जनानामिति । वसन्ते वकुल-सहकार-सौरभस्य कोकिल-कूजितस्य च वर्तते विशिष्टं स्थानम् ।

अस्मिन्काले मानिनीनां मान-मत्त-मत्तङ्गस्य विनाशः किंशुक-प्रसून-वक्र-खर नख-धारिणा कोकिल-रुताढ्य-सिंह-नाद-कारिणा वसन्त-पञ्चाननेन जन-मानस-विपिन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विहारिणा सत्वरमेव विधीयते । मानापगमे प्रिया-प्रियतमयोः विलास-विभ्रम-व्यापारस्य निर्बाधे प्रसारे परमाह्लाद-प्राप्तिमपि नैसर्गिकीं समधिगम्य न केवलं मानवा एव, किन्तु तिरञ्चोऽपि ब्रह्मास्वाद-सहोदरस्य रसाधिपतेः शृङ्गारस्य शासने संस्थिता अनुभवन्ति परमानन्द-पीयूष-पयोधि-तरङ्गेषु प्लावनम् । एषा रसमयी परिस्थितिरेव वसन्तनिमित्तजा प्रदर्शिता कविकुलगुरुणा शारदा-हासेन श्रीकालिदासेन कुमारसम्भवे——

"मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥

श्रीमहाकवि-माघेनापि यमकालङ्कार-शोभिनी स्वीय-कविता-कामिनी वसन्त-वर्णन-विहारिणी विहिता——

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥"

मन्दं मन्दं प्रवहन्तं सौरभसम्पत्तिं दधन्तं दक्षिणं गन्धवहं, अमन्द-मरन्द-शोभितान् सहकार-विटपान्, श्रवण-सुखदं कोकिल-स्वरं, दिशि दिशि प्रसरन्तं सुमन-समूह-सुगन्धं, पुराणं मधुरं मधु इति पञ्चसंख्याकान् सायकान् विधाय सकल-लोकाभिरामः जन-मनो-वशीकरण-कामः कामोऽपि युगपदेव समस्तामेव जनावलीं विजयते ।

अस्य विविधाभिः विशेषिताभिः विशेषितां स्वां कविता-कामिनीं कलयित्वा कविभिः वसन्त-वर्णनेन संशोभितं सर्वभाषा-साहित्यमिति वसन्तस्य सुषमां वर्णयन् महाकवि-कालिदासः कथयति——

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।
सुखाः प्रदोषा दिवसश्च रात्रिः सर्वं प्रियं चारुतरे वसन्ते ॥

६०. वर्षावर्णनम्

इह विचित्र-चर्चा-चर्चितेऽसारे खलु परिवर्त्तिनि संसारे 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' इत्यनुसारं संततमभिसरति कालचक्रमिव ऋतुचक्रम् । वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरद्-हेमन्त-शिशिरादयः षड्तवः प्रतिवर्षं भारतवर्षं यथाक्रममायान्ति यान्ति च । भारतस्यैव एतद् वैशिष्ट्यं यदत्र षड्तवो भवन्ति ।

एवं कालक्रमेण ग्रीष्मानन्तरं वर्षर्तुः समायाति । रमणीयेऽस्मिन्काले‌ऽपगतो दुर्दमनीयो ग्रीष्माभिधानो कालः । शान्तो ललाटन्तपो दिवसकर-सन्तापः । प्रशान्ताः विरताश्च निदाघ-दोष-प्रसराः । निर्गताः चिरनिद्रां गताः शुष्कसरःकोटरशायिनो भेकवृन्दाः । उपशान्तं सर्वत्र रजःप्रसरम् । वनोपवनानां सुषमा पुनरायाता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुल्लसन्ति च सर्वत्र चेतनाचेतनाश्च लोकाः । मन्ये भीष्म-ग्रीष्मानल-संतप्तानां स्थावर-जङ्गमानां लोकानाम् अश्वासनाय समागतेयं प्रावृट् ।

अहो कीदृशो मनोहरोऽयं वर्षाकालः । तत्र च सर्वत्रैव सुशोभते सजला शस्य-श्यामला धृत-हरित-वस्त्र-परिधाना नवकन्दलैः कन्दलिता इन्द्र-वधूटीभिः अलङ्कृतेयं वसुन्धरा सुसज्जिता सालङ्कृता नववधूरिव । क्वचिच्च नील-परिधान-परिधानां श्यामा शर्वरी झिल्ली-शङ्कारैः निजदुःखानिव प्रकटयन्ती आह्वयन्तीव-प्रवासंगतान् निजप्रियान् ।

क्वचिच्चाभाति नवशाद्वलैः संवलिता सपङ्का सतिमिरा सरसा सकोमला च भूमिः । नभसि च शोभन्ते प्रसादयन्तो दावाग्नि-दग्धान् तरुगुल्मादीन् उद्भिजान् संचित-पयोराशयो दूरविलम्बिनो नीलनीलाः पयोधराः । क्वचिच्च प्राप्तविजय-श्रीकाः संयुगस्था शूरा इव गर्जन्ति नववारिपूर्णाः नीलमेघाः । क्वचिद् दीप्यते नीलमेघाश्रिता सलक्ष्मीकाः सौदामिनी । क्वचिद् रोचते रुचिराम्बरस्य मालेव वलाकापंक्तिः ।

अधुना च नीलमेघैरावृताः पर्वताः वारि-धाराभिः स्नाताः मेघ-कृष्णाजिन-धराः धारायज्ञोपवीतिनो वायुना-पूरित-गुहाः स्वाध्यायरताः ब्रह्मचारिण इव शोभन्ते । शुष्काः वनश्रियश्च अतीव-रमणीयाः विभान्ति । कदम्ब-रेणु-शवलाः मनोहराः वाताः वान्ति । श्रूयते कामिनी-कलकण्ठ-गीत इव सुधा-पूर-पूरित इव चातकानां मधुर-ध्वनिः । रोचते च सर्वेभ्यो लोकेभ्यः कर्णशष्कुलीः पूरयन्निव अमृतरसैः मधुरतरो केकिनां केकारवः ।

क्वचिच्च श्रूयते वेदध्वनौ प्रवृत्तानां वेदपाठिनां वटूनामिव भेकानां मधुर-रटनम् । क्वचित् संगीतप्रवृत्ता इव षट्चरणाः प्रगायन्ति, क्वचिच्च वृक्षाग्र-शाखा-निषण्णाः मयूराः प्रनृत्यन्ति, क्वचित् कपिकुलानि कण्ठतालान्युदीरयन्ति, क्वचिच्च मेघाः मृदङ्गनादं कुर्वन्ति । इत्थं वनान्तेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ।

सुखकरेऽस्मिन् काले सर्वत्र सर्वाणि मधुरतराण्येव आभान्ति । मकरध्वजोऽपि कामिनां चित्तम् उत्कण्ठयति । चेतोहराः सकामाः युवतयश्च पतिम् अभिगन्तुकामाः सन्ति । प्रवासिनो नराश्च स्वदेशान्प्रति गन्तुकामाः सन्ति । किं बहुना नदीवध्वोऽपि द्रुततरं स्वपतिं सागरम् अभिगन्तुकामाः सन्ति । एवं च सर्वे प्राणिनः मुदिताः प्रसन्नाश्च दृश्यन्ते ।

ग्रामेषु मुदिताः कृषीवलाः कृषिकार्याणि कुर्वन्तो दृश्यन्ते । ते च क्षेत्राणि कर्षन्ति, क्षेत्रेषु वीजानि वपन्ति, धान्याङ्कुराणि च आरोपयन्ति, क्वचिल्ललनाः प्रसन्नाः दोलामारुह्य 'कजली' इति गीतिं गायन्ति । बालकाः बालिकाश्चापि मुदिताः दोलाम् उद्दोलयन्ति । सर्वत्र च चकास्ति नयन-विलोभि-दृश्यम् । सुखकरी कल्याणकरी रसमयी चेयं वर्षा सर्वेभ्यो लोकेभ्यो रोचते । उक्तं च ऋतून्वर्णयतादिकविना महर्षिवाल्मीकिना वर्षावर्णनप्रसङ्गे—

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति,
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीना शिखिनः प्लवंगमाः ॥
मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्राः
वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः ।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः
प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥

६१. शरद्वर्णनम्

अस्मिन्नसारे खलु संसारे सम्वत्सराभिधः सकलोऽपि समयः ऋत्वभिधानैः षड्भिः विभागैः विभक्तो वर्तते। तत्र कालक्रमेण षड्तवः यथासमयम् आयान्ति यान्ति च। एवं वर्षाकालेऽपगते समायाति स्वच्छाम्बर-धारिणी नव-शस्य-शालिनी मञ्जु-मराल-गामिनी विकसदरविन्द-हासिनी विमल-सलिल-शोभिनी चारु-चन्द्रिका-चमत्कारिणी मानिनी-मानापहारिणी लोकोल्लास-प्रदायिनी मनोमुग्ध-कारिणी शरत् सम्पत् ।

अस्मिन्नृतौ निरस्तेषु जलदेषु निर्मलेऽम्बरे दिवा दिवाकरस्य प्रभया रात्रौ च निशाकरस्य विभया परिपूरिताः सर्वा अपि दिशः परमं प्रमोदम् आवहन्ति। सर्वत्र वनेषूपवनेषु तड़ागसरोवरेषु गृहवीथिकासु नवनवाः सुषमा अवलोक्यन्ते। सर्वे पन्थानः पुनः प्रतीयन्ते। पङ्क-कलङ्क-हीना सरणिः तरणिरिव आवहति शोभाम्। वर्षावशात् अवरुद्धानि कार्याणि पुनः सञ्चारम् आलभन्ते।

शरदि सकल-कला-धरस्य कलाधरस्य चारुचन्द्रिका यादृशेन सौभाग्येन शोभते, न तादृशं सौभाग्यम् अन्यस्मिन् कस्मिन्नपि ऋतौ विराजते। अत्र च सकल-सलिलाशयानां मलिनता अपनीयते नव-नलिन-दलानि कमलवनानि विकासम् आवहन्ति। सर्वत्रैव श्रीसम्पन्ना शरत्कालीना शोभा अतीव विराजते। विविध-प्रसूनानां समृद्धया सह कासानां श्वेतवर्णानि पुष्पाणि वर्षायाः वार्धक्यमिव व्यञ्जयन्ति। वर्षाकाले मानसं गतानां मरालानां पुनः समागमनेन प्रियजन-समागमनेन सुहृद्-हृदयानीव सरोवराणि सुषमया शोभन्ते।

समागतेयं नव-शस्य-शोभिनी हरित-वसन-धारिणी सुमन-सौरभ-राजिनी शरद् नानाविधानां शस्यानां समृद्धिं सम्पादयति, चारु-चन्द्रिका-चमत्कारेण जीवनिवहं सान्त्वयति, विजय-यात्रार्थं राजन्यवर्गं समुत्साहयति, सर्वेषां चराचर-प्राणिनां मनांसि मोदयति, सर्वत्रैव अनङ्ग-रङ्ग-विकासं विकिरति, कामि-जन-कामना-साफल्यं सम्पादयति, कामिनीजनेषु महोल्लासं प्रवाहयति, मधुकरेभ्यः विकसितानाम् अमन्द-मरन्दानाम् अरविन्दानां मधु समुपनयति च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं च मधुकराणां मालाम् आवहन्ती तरुसमृद्धि धारयन्ती खगकुलकूजितेन मनांसि हरन्ती नव-दल-समृद्धया लोचनानि समाकर्षयन्ती मञ्जु-मराल-मालया मेखलासौभगं वर्धयन्ती मदनमहोत्सवं वर्धयन्ती वनदेवता कामिनीव कस्य हृदयं न समाकर्षति । सर्वथा प्रसन्ना इतस्ततो विचरन्तो खगा द्विरेफा नीर-क्षीर-विवेकिनो हंसाश्च शरदो गुणस्तुतिमिव कुर्वन्तो दृश्यन्ते । किञ्चित् किञ्चित् हिमागमनेन कीट-पतङ्गानां दुष्ट-जीवानां विनाशेन लभते जनः सुखसम्पत् ।

शरदि च दृश्यते सर्वत्र मनोहारिणी सुषमा । नभसि नवनीतनिभः चारुचन्द्रः, तक्रप्रभा ज्योत्स्ना, कुमुदानीव विमलाः तारकाश्च शोभन्ते । सरसि च मुनेः चित्तवृत्तिरिव वारि प्रसीदति, निर्धनकामनेव पङ्कः शोषम् उपैति, कामिनी-हासमिव कमलवनानि विकासमुपैति, सस्यक्षेत्रे च शोभन्तेऽतितरां फलभरेण नमिताः पक्वशालयः । एवं च सर्वमेव जगदिदं परमामोदभरं धारित-सुख-निवहं गुञ्जन-मधुकर-निकरम् इव आभाति ।

एतानेव शरदो गुणग्रामान् समभिलक्ष्य संस्कृतसाहित्ये विविधैः कविभिः शरद्वर्णनेन पाविता स्वीया सरस्वती । श्रीमद्भागवते शरदो मनोरमं वर्णनं वरिष्ठं गुणगरिष्ठं दृश्यते । हिन्दीभाषायामपि श्रीरामचरितमानसे गोस्वामि-तुलसीदासेन शरद्वर्णनं विहितम् । अस्य मूलतया दृश्यमानं श्रीरामकृतं शरद्वर्णनं वाल्मीकिरामायणे सहृदय-हृदयानि रस-प्रवाहेन विकासतानि विदधद् विद्यत एव । काश-कुसुम-वसनां पद्मवदनां मञ्जु-मराल-गमनां शरदं नायिकारूपेण वर्णयति कश्चित कविरित्यम्—

"काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा,
सोन्मादहंसरवनूपुरपादरम्या ।
आपक्वशालिरुचिरा तनुगात्रयष्टिः,
प्राप्ता शरद् नववधूरिव रम्यरूपा ॥"

मन्ये एनमेव भावं समुपजीव्य हिन्दीभाषायां सप्तशतीकार-परम्परायां सर्वश्रेष्ठेन कविज्येष्ठेन मथुरा-विहारिणा श्रीविहारिणा कलितं स्वीयं कवित्व-कौशलम्—

"अरुन सरोरुह करचरन, दृग खंजन मुख चंद ।
समै आइ सुन्दरि सरद, काहि न करत अनंद ॥"

सांसारिकेषु सुखेषु सर्वश्रेष्ठं सहचरी-संगमम् एव गण्यते, अतएव सकलान् तरुणान् रञ्जयन्ती लोकसुखं संसृजन्ती शरदियं नायिकारूपेण इत्थमपि वर्णिता केनचिद् रस-राजा-रागिणा सत्कविना—

समुल्लसत्पङ्कजलोचनेन विनोदयन्ती तरुणानशेषान् ।
शुद्धाम्बरा गुप्तपयोधरश्रीः शरन्नवोढेव समाजगाम ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६२. विजयादशमी

अनेक-दुराशामय-मृग-मरीचिका-पूर्णायां विपत्ति-झंझावात-पूरितायां जीवन-यात्रायां प्रचलन्मानवो यां परमानन्द-मन्दाकिनीं समासाद्य क्लेशस्य लेशमपि विस्मृतिगर्ते निपात्य हर्ष-प्रकर्षम् अनुभवति, सैव कालकला "उत्सव" इति व्यपदेशं भजते। निखिलेऽपि संसारे सर्वेष्वपि देशेषु विविधा उत्सवाः प्रचलन्ति। एतामेव परिपाटीम् अनुसृत्य भारतवर्षे विविधा उत्सवा भवन्ति। तेषु एष विजया-दशमी-महोत्सवः प्रमुखतमो विद्यते।

आश्विनस्य शुक्लपक्षे दशमी विजयादशमीति भण्यते। धर्मप्राणत्वाद् भारतस्य अत्रत्यं सर्वमेव जीवनं धार्मिकता-सुधया अनुप्राणितमेव। अतएव विजयादशम्या अपि विद्यत एव धार्मिकं महत्त्वम्। भारतीय-परम्परानुसारं श्रूयते यदस्यामेव दशम्यां भगवता रामचन्द्रेण रावण-विनाशार्थं वानर-सैन्येन सह प्रस्थानं कृतम्। यथोक्तम्—

"अथ विजयदशम्यामाश्विने शुक्लपक्षे
दशमुखनिधनाय प्रस्थितो रामचन्द्रः।"

एतामेव परिपाटीं निर्वाहयन्तो महाराजाः सीमोल्लंघनं कुर्वन्ति, राज-चिह्नान् पूजयन्ति, पुनरेव समागतमिव स्वगौरवं प्रदर्शयन्ति। भारतस्य नगरे-नगरे ग्रामे ग्रामे रामलीलायाः प्रदर्शने अस्मिन्नेव दिवसे अहंकारस्य अभिमानस्य अधर्मस्य दुर्वृत्तस्य प्रतीकीभूतो रावणोऽग्निसाद् विधीयते।

प्रसङ्गेऽस्मिन्नेव बहुदिवसं प्रचालिता रामलीला पुनः समागतं श्रीराम-भद्रमिव दर्शयन्ती तत्सदाचारं शिक्षयन्ती लोकमनांसि रञ्जयन्ती बाल-वृद्ध-वनितानां मनोरञ्जनं कुर्वन्ती चिन्तासन्तानं धुन्वन्ती हर्षप्रकर्षं विदधन्ती पुनरपि धर्ममयीं भावनां समुद्वेल्लयन्ती सन्मार्गे जनान् प्रेरयन्ती सर्वत्र दृश्यते।

अपि च वंगप्रान्तेऽस्या महत्त्वम् अन्यविधम् एव विद्यते। वङ्गभूमिः प्रायो विद्यते भगवत्या आद्याशक्तेः समाराधने संलग्ना। अतएव अयं महोत्सवो दुर्गापूजा-रूपेण प्रचलितः। अस्मिन् काले सर्वेषु कार्यालयेषु महाविद्यालयेषु सर्वविध-संस्थानेषु च दीर्घकालीनोऽवकाशो भवति। यस्मिन् दूरात् समागत्य जना बान्धवेभ्यो मिलन्ति। वाष्पयानविभागोऽपि वेलायाम् अस्यां विशेषव्यवस्थां विदधाति।

शरत्काले भगवत्या महापूजा भवतीति नियममनुसृत्य समस्तेऽपि भारते धर्मनिष्ठा आस्तिका जना नवरात्रमहोत्सवे भगवत्याः समर्चनं कुर्वन्ति। बंगदेशे च अष्टम्यां सरस्वती-महालक्ष्मी-शोभिताया दुर्गादेव्या प्रतिमाः समर्च्यन्ते गृहे गृहे। अनन्तरञ्च दशम्यां महता समुत्सवेन विसर्जनं विधीयते। अतएव विविधा महोत्सवा अस्यां वेलायां क्रियन्ते। व्यापारिवर्गा विविध-विक्रेय-वस्तूनि पूर्वमेव संचिन्वन्ति, महोत्सवे च अस्मिन् तद्विक्रयेण महतीं समृद्धि कुर्वन्ति। आपणानि विक्रेयवस्तुभिः पूरितानि दृश्यन्ते। बालकाः क्रीडनकानि मिष्ठान्नानि नूतनानि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वसनानि च समासाद्य आनन्दसमुद्रे निमग्ना इतस्ततो मोदेन समुच्छलन्तो दृश्यन्ते ।

एतदपि श्रूयते यद्रावणेन सह प्रवृत्ते महासंग्रामे यदा श्रीरामचन्द्रेण विजयाप्तिः न लब्धा । तदा शक्तिसंचयार्थं तेन नवरात्रेऽस्मिन् समाराधिता भगवती दुर्गा । ततो रामचन्द्र-भक्ति-भावनया प्रसन्नया तया यो वरः प्रदत्तः तद्बलेनैव रावणस्य समूलं विनाशो व्यधायि तेन । अतएव सर्वैरेव संपूज्यते दिवसेऽस्मिन् भगवती श्रीअपराजिता । यस्याः पूजनेन मानवस्य कुत्रापि पराजयो न भवति । सर्वत्र सर्वदा च विजयस्य प्राप्त्या मानवः प्रसन्नतामेव अनुभवति ।

राजस्थानभूमिः विद्यते राज्ञां भूमिः । अत्रत्यान् वीरशिरोमणीन् को न वेत्ति । ते तु शक्तेरेव समाराधका । अतोऽत्र वीरतामयोऽयं महोत्सवो विशेषतया प्रचलति । स्वाभाविक-शोभा-सम्पन्ने पर्वतप्रान्ते तु कुल्लू-घाटी-स्थाने महोत्सवस्य परिपाटी सर्वथा विलक्षणैव । अत्र विविध-वेष-विन्यास-पूर्णाः स्वभाव-सरलाः पर्वत-वासिनो नार्यः लोकगीतिका उच्चारयन्त्यः नृत्यं विदधन्ति । अस्य दर्शनाय अनेके जना दूरादपि समायान्ति । एवंविधैः प्रकारैः पर्वण्यस्मिन् सर्वत्रैव भारते महोत्सवोऽयं प्रचलति ।

एवमस्य महोत्सवस्य अन्येषामपि महोत्सवानां मानवजीवने महती वर्तते आवश्यकता । यतो एषु महोत्सवेषु मानवहृदयं विश्रान्तिम् अनुभूय पुनः शक्तेः समर्जनं विदधाति । यथा प्रचलितं यन्त्रं किञ्चित्कालं विश्रामं प्राप्य तैलादिना पुनः प्रचलति निर्बाधम् । तथैव सततं प्रचलन् मानव-जीवनमपि स्वशक्तेः समर्जनाय विश्रान्ति-लाभाय अपेक्षत एव महोत्सवान् । अस्माकं जीवनेऽतएव विद्यते महोत्सवानां महनीयं महत्त्वम् । अतएव विविधानां महोत्सवानां निर्देशः प्राचीनेषु ग्रन्थेषु स्थाने स्थाने दृश्यते । अतएव महोत्सव-मालायां विजयादशमी-महोत्सवस्य महत्त्वं श्रेष्ठं ज्येष्ठं परमप्रेष्ठं च वर्तते इति ।

६३. दीपावली

सर्वेष्वेव देशेषु सर्वासु जातिषु सर्वेषु धर्मेषु सर्वेषु सम्प्रदायेषु समये समये उत्सवानाम् आयोजनं भवति । एषु भवारण्यस्य यात्रां कुर्वन्तः तदापत्ति-क्लान्ता खेदित-स्वान्ता जनाः सर्वविधां शान्ति प्राप्नुवन्ति । अतएव महोत्सवानां परिपाटी सृष्टेरारम्भत एव दृश्यते । वैदिक-साहित्येऽपि विविधानाम् उत्सवानां वर्णनं दृक्-गोचरतां प्रयाति । पुराणपटले तु वर्ततेऽनेकेषां महोत्सवानां सर्वथा अवनद्यं हृद्यं वर्णनम् । संस्कृतसाहित्ये प्रायः सर्वेष्वेव नाटकेषु महोत्सवानां वर्णनं दृश्यते । मानवानां स्वभावत एव महोत्सवप्रियतां समवलोक्य सुरभारती-विलासेन श्रीकालिदासेन प्रोक्तमेव यत्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"उत्सवप्रिया मानवाः"

भारतीयेषु महोत्सवेषु दीपमालिकायाः स्थानं श्रेष्ठं वर्तते । प्रायः सर्व एवोत्सवा कमपि धर्मनिर्दिष्टं महत्त्वमेव अभिलक्ष्य प्रवर्तिताः सन्ति । दीपमालिका-विषये एवमनुश्रूयते यद् यदा रघुकुलमणिना भगवता रामचन्द्रेण रावणं समरे निपात्य पुनः प्रवेशेन पाविता स्वीया अयोध्यापुरी, तदा तदागमन-प्रसन्नैः अयोध्या-वासिभिः सर्वाण्येव स्वकीयानि गृहाणि दीपानां मालिकाभिः समुद्भासितानि । तदारभ्य अद्यावधि परम्परेयं भारतवासिभिः दीपमालिकारूपेण निर्बाधं परि-पाल्यते ।

एतद्विषयेऽपरेयं किम्वदन्ती श्रूयते यत्परस्परं सहयोगं समालम्ब्य समुद्र-मथने प्रवृत्तैः सुरासुरैः अस्मिन्नेव दिवसे भगवती महालक्ष्मीः सागरमध्यान् निः-सरन्ती समालोकिता । वस्तुतोऽस्या एव किम्वदन्त्या प्रामाणिकता प्रतीयते यतः कार्तिक-शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां धन्वन्तरेश्चतुर्दश्यां सुरभेः समुत्पत्तिः वर्णिता तदन-न्तरम् अमावस्यायां भगवत्या महालक्ष्म्या आविर्भावो वर्ण्यते । अतएव दीपावली-महोत्सवः पञ्चदिवसात्मको भवति । सर्वप्रथमं त्रयोदश्यां धन्वन्तरि-जन्मोत्सवो भवति । अस्याः त्रयोदश्या अपरं नाम धन्वन्तरि-त्रयोदशीति प्रसिद्धं वर्तते । आयु-र्वेदशास्त्र-प्रवर्तकस्य भगवतो विष्णोरवतारस्य जन्मदिवसेऽस्मिन् जनाः सर्वे स्व-स्वास्थ्य-कामनया सायंकाले तद्हस्तस्थ-सुधा-कुम्भ-प्रतीकतया नवीन-पात्राणि क्रीत्वा प्रदोषवेलायां धन्वन्तरेः पूजनं विदधन्ति, कुर्वन्ति च निम्नाङ्कित-रीत्या प्रार्थनाम्—

आविर्बभूव कलशं दधदर्णवाद्यः
पीयूषपूर्णममरत्वकृते सुराणाम् ।
रुग्जालजीर्णजनताजनितप्रशंसो
धन्वन्तरिः स भगवान् भविकाय भूयात् ॥

अथ चतुर्दशीयं रूपचतुर्दशीति धर्मशास्त्रे निर्दिष्टा । अस्यां प्रातरेव तारि-काणां छायासु जनाः स्नानं सोद्वर्तनं कुर्वन्ति । सायंकाले यमराजस्य प्रीत्यर्थं नरकपीड़ा-निवारणार्थं च दीपदानस्य विधानमपि विद्यते । कार्तिककृष्णामावस्या दीपावली । अस्यां सर्वे जना यथाविभवं भगवतीं महालक्ष्मीं पूजयितुं तत्कृपा-कांक्षया गृहादिसंमार्जनं विदधन्ति । प्रदोषकाले च श्रीगणेशेन सह श्रीमहालक्ष्म्या समर्चनं कुवेरादि-पूजन-पुरस्सरं सोल्लासं कुर्वन्ति । तदनन्तरं सर्वे जना स्वस्व-गृहाणि दीपैः समलङ्कृतानि विधाय लक्ष्मीसमाराधने तत्परा भवन्ति ।

दीपानां मालया समुद्भासितानि गृहाणि समवलोक्य तारकितं गगनमण्डलं प्रेम्णा समागतमिव धरणीतले दृश्यन्ते । प्रमुदिता बालका नवानि नवानि वस्त्राणि धृत्वा विविधानि क्रीडनकानि संचालयन्ति । विविधवर्णमयान् प्रकाशान् कुर्वन्तो नभोमण्डले वह्निमयान् शरान् समुत्क्षिपन्तः मूर्तिमयी प्रसन्नतां समुद्वहन्तः शर्करामयैः क्रीडनकैः सह लाजादिद्रव्यं भक्षयन्तो बालकाः कस्य नाम पाषाण-हृदयस्य स्वान्तम् आनन्दसमुद्रे मग्नं न कुर्वन्ति । विविधैः वस्तुभिः प्रपूरिता हट्टा बलादेव दर्शकचेतांसि मोदयन्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनन्तरं प्रतिपदि प्रातः गोक्रीडां सायंकाले च महाराजस्य बलेः पूजां सम्पादयन्ति धर्मनिष्ठा आस्तिकाः श्रद्धान्विता जनाः । मध्याह्ने भगवतो गोवर्धनस्य पूजनम् अन्नकूट-महोत्सवं च भवति । षट्पञ्चाशत्-प्रकारकाणि व्यंजनानि लेह्य-चोष्य-पेयादि-संयुक्तानि विविधानि खाद्यानि च भगवतो गोवर्धन-रूपिणो मुकुन्दस्य कृते निवेदितानि कुर्वन्ति ।

तदनन्तरं समागता द्वितीया यमद्वितीयेति नाम्ना प्रसिद्धा वर्तते । पुरा अस्यां द्वितीयायां भगिनीवत्सलेन सूर्यसूनुना श्रीयमराजेन स्वानुजायाः श्रीयमुनाया गृहे भोजनं कृतम् । प्रसन्नाच्च यमाद् वरं वृतवती यद् 'ये जना द्वितीयायामस्यां मथुरापुर्यां श्रीविश्रान्तिक्षेत्रे स्नानं कुर्युस्ते न भवल्लोकं गच्छेयुः' । अतएव धर्मनिष्ठा जना प्रायः सर्वेभ्य एव देशस्य भागेभ्यः समागत्य मथुरायां श्रीविश्रान्तिक्षेत्रे सश्रद्धम् अवगाहन्ति तरणि-तनयायाम् । अन्यत्रापि सर्वत्र भ्रातरो भागिनीगृहेषु भुङ्क्त्वा ताभ्यो यथाशक्ति द्रव्यं ददन्ति ।

एवं पञ्चदिवसात्मके महोत्सवे दीपावली-महोत्सव एव जीवानुभूतो भासते । एवं धार्मिकदृष्ट्या स्वास्थ्यदृष्ट्या चास्य महोत्सवस्य महिमा सर्वश्रेष्ठ एव वर्तते । अस्मिन् महोत्सवे महालक्ष्म्या प्राधान्याद् द्रव्यस्य प्राधान्यं प्रथयन्तो जनाः प्रमुदिता दृश्यन्ते ।

६४. होलिकोत्सवः

नाना-कला-कलाप-कलिते सकल-लोक-वन्दिते विचित्रेऽस्मिन्जगति समायात्यनेकानि पर्वाणि । तत्र रक्षाबन्धनं, विजयादशमी, दीपमालिका, होलिका चेति चत्वारि पर्वाणि मुख्यतमानि सन्ति । महतामोदेन प्रमोदेन समारोहेण च भारतीयाः सम्मानयन्ति महोत्सवान् एतान् । एषु चतुर्षु महोत्सवेषु होलिकोत्सवोऽतिशेते सर्वानन्यानुत्सवानिति । अपगते च हेमन्ते समायाते वसन्ते फाल्गुनमासे न केवलं भारत एव, अपितु निखिलेऽपि जगति देशे-देशे ग्रामे-ग्रामे गृहे-गृहे च आबालवृद्धैः युवक-युवतिभिश्च निर्धनैः सधनैर्वा सर्वैरेव सम्मानितोऽप्यमुत्सवः ।

अतीव मनोहरो रमणीयश्चायं कालः होलिकोत्सवस्य । नाधिकं वर्तते शीतोष्णे, सुखयति च तनुं धीरसमीरणः समीरः, चकास्ति चारुचन्द्रो नभसि, मानवैः उष्णवस्त्राणीव परित्यक्तानि पुराण-पत्राणि पादपैर्धृतानि च नवपल्लवानि । नानाविधैः कुसुमैः फलैश्च आव्रियन्ते द्रुमाः । विकसिता चूतकलिका । नृत्यन्ति भृङ्गाः पुष्पलतिकासु ललनासु च । गायन्ति कोकिलवध्वः सरसैः सुमधुरैः रवैः । कल्पित-षोडश-शृङ्गारा वारवधूरिव अनङ्गाराधन-व्रतमिव आचरति रजनीवधूः ।

एवमनूश्रूयते पुरा किलासीद् हिरण्यकशिपोः प्रह्लादो नाम सूनुः विष्णुभक्तः । स च पित्रा मुहुर्मुहुः वार्यमाणोऽपि न विरराम विष्णुभक्तितः । तदा हिरण्यकशिपुः तस्य वधाय होलिकानाम्नीं निज-भगिनीम् आहूय कथयामास ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदायैनमङ्के त्वं प्रज्वलितायां चितायां प्रविश । वरप्रभावात् त्वं तु न धक्ष्यसि, धक्ष्यति चायं वालकः । किन्तु विष्णुभक्तिप्रसादात्तस्य कृतेऽग्निः चन्दनपङ्कशीतलो जातः, भस्मीभूता च होलिका । तदारभ्य भारते होलिकादहनस्य प्रथा प्रचलिता ।

फाल्गुनमासस्य पूर्णिमायां रात्रौ मिलित्वा सर्वे जनाः नागरिकाः ग्राम्याश्चैकत्र तृणसमूहानि काष्ठानि च प्रज्वाल्य होलिकादाहं कुर्वन्ति । केषाञ्चिन्मतं यत्तृणादिभिः सह रागद्वेषादीन् दुर्गुणान् प्रक्षिप्य, अग्नौ, होलिकया सह तान् भस्मीकृत्य, विस्मृत्य च कलुषितान् भावान् महता सौहार्देन आमोदेन प्रमोदेनोत्साहेन सकण्ठ-ग्रहालिङ्गनेन च परस्परं मिलन्ति लोकाः ।

अपरेद्युः चैत्रप्रतिपदि आवालवृद्धाः स्त्रीपुरुषाः होलिकायाः भस्मधारणं धूलिवन्दनं रङ्गक्रीडां च कुर्वन्ति, क्रीडन्ति च परस्परम् । तत्र भस्मधारणमन्त्रमुक्तं यथा——

वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च ।
अतस्त्वं पाहि नो देवि विभूतिर्भूतिदा भव ॥

अहो परमरमणीयोऽयं कालः । एकतो मानवाः भेरी-मृदङ्गादीनि वहुविधानि वाद्यानि वादयन्तो हर्षनिर्भराः गायन्ति नृत्यन्ति प्रहसन्ति च । अपरतो विलासिन्यः नार्यः महदानन्द-सन्दोह-निर्भराः हावैर्भावैः प्रहासैश्च क्रीडन्त्यः रागरञ्जिताः विलसन्ति, हर्षोल्लासं च प्रकटयन्ति । अन्यतः युवकाः युवत्यश्च अवीर-गुलाल-कुङ्कुमादीन् रागान् परस्परं प्रक्षिपन्ति । क्वचित् नवीनानि पुराणानि वा स्वच्छानि वस्त्राणि परिधाय मित्राणि मित्रैः सह सोल्लासं क्रीडन्तः हर्षनिर्भराश्च इतस्ततः पर्यटन्तो दृश्यन्ते ।

रङ्गस्नाताः गुलाललिप्ताः कामिन्यः गृहे गृहे देवरैः सह प्रहासं कुर्वन्त्यः कुङ्कुमादिचूर्णानि मुखे लेपयन्ति । दृश्यतामपरत्र जातमदाः प्रमदाः स्वकरधृतैः जलयन्त्रैः नागरनरान् आर्द्रयितुम् अभियान्ति, ते च आत्मत्राणाय इतस्ततो नृत्यन्त इव धावन्तो दृश्यन्ते । अन्यत्र सुविदग्ध-जनैः भरित-जलयन्त्र-प्रक्षिप्त-जल-प्रहारैः इतस्ततो धावन्त्यो मधुर-सीत्कुर्वन्त्यश्च दृश्यन्ते विलासिनी-जनाः । सर्वत्र शब्दायमान-मृदङ्गैः उपवृंहित-चर्चरी-शव्देन मुखराणि रथ्यामुखानि शोभन्ते च गुलाल-पुञ्जैः पिञ्जरितानि दिशां मुखानि सर्वतः । उक्तं च यथा श्रीहर्षदेवेन——

धारायन्त्रविमुक्तसततपयःपूरप्लुते सर्वतः
सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्राङ्गणे ।
उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः
सैन्दूरीक्रियन्ते जनेन चरणन्यासैः पुरःकुट्टिमम् ॥

अस्मिन् दिने भङ्गाभवान्याः अपि सेवनं कुर्वन्ति जनाः । नानाविधानि व्यञ्जनानि मिष्ठान्नानि च भुज्यन्ते भोजयन्ति च । इत्थं बहुविध-राग-रञ्जिताः जनाः जगदेव रञ्जयन्ति । धन्योऽयमुत्सवो यत्र च विहाय उच्च-नीच-भेदान् जनाः प्रेम्णा च परस्परं मिलन्ति ।

++

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६५. पुराणमित्येव न साधु सर्वम्

सतत-परिवर्तन-प्राणेऽपि संसारे दृश्यन्ते तादृशाः केचिज्जना ये प्राक्तन-प्रणय-प्रवण-चेतसो नवीनतायां विरोधं प्रकुर्वते । किन्तु तत्र सर्वप्रथमम् इदमेव विचारणीयं वस्तु विद्यते यद् नहि पुराणानि सर्वाण्येव वस्तूनि श्रेष्ठानि भवन्ति । विवेकी जनो विचारदृशा प्रत्यहं स्वकार्ये सौकर्यार्थं यतते । पूर्व-पूर्व-पदार्थेषु प्रतीयमानाम् असुविधां बुद्धिबलेन परिहरति । स सर्वतोभावेन तादृशं यत्नं विधत्ते येन श्रमस्तु न्यूनातिन्यूनो भवेत् । परन्तु लाभमात्रा सुविधा वा समधिका प्राप्ता भवेत् । इमामेव परिस्थितिं समुपजीव्य प्रचलितः **"आवश्यकताविष्काराणां जननी भवति"** इत्ययं सिद्धान्तः ।

वर्तमानसमये तु वर्षावेलायां तरङ्गिणी-धारेव परिवर्तन-धारा विपुलं क्षेत्रं प्लावयन्ती तीव्रतरेण जवेन प्रवहति । विश्वस्यापि विश्वस्य न किमपि क्षेत्रं तादृक् वर्तते यत्र अस्याः प्रभावो न प्रभासते । अतिस्वनानि विमानानि वियति गमनागमनं कुर्वन्ति, विस्तृतस्यापि विश्वस्य दवीयस्त्वं सामीप्ये परिवर्तयन्ति । सहस्रशो मानवान् विपुलं भारजातञ्च धारयित्वा महता जवेन रयलापराभिधानानि विद्युच्चालितानि धूमादि-विरहितानि वाष्पयानानि धावन्ति । जलक्षेत्रेऽपि सागरोपरि महान्ति जलयानानि रभसा क्रीडन्ति ।

किम्बहुना कवि-कल्पना-कलितस्य चन्द्रस्योपरि मानवेन यात्रा विधीयते । तत्रस्थ एव जनो धरणीं प्रति चित्राणि क्षिपति, गृहे स्थित इव पारिवरिक-जनैः सह वार्तालापं विधत्ते, चन्द्रस्योपरि चङ्क्रमणं कुरुते । ततः परावर्तमानश्च चन्द्रधूलिम् उपहाररूपेण आनयति । क्षितौ महासंस्थानेषु वर्तमानानि कम्प्यूट-राख्यानि यन्त्राणि सहस्रशो जनैः निर्वर्त्यमानानि गणितादीनि कार्याणि सत्वरमेव कुर्वन्ति । कोटिशः क्रोशानां दूरेऽपि देशे स्थितो मानवो यन्त्रेण वार्ता विधत्ते । टेलीविजन-यन्त्र-साहाय्येन मनोविनोदेन सह नयन-विनोदमपि कुरुते ।

तदेवं प्रतिक्षेत्रं परिवर्त्तमाने जगति यदि कश्चिज्जनो यदि प्राक्तन-परिपाटीमेव अनुसरति, पदातिरेव गच्छति, न आधुनिकयन्त्राणाम् उपयोगं कुरुते, तर्हि को नाम विचारवान् तस्यानुकरणं विधत्ते । प्रेक्षावतां तु वार्तैव का सामान्यानां किम्वा ग्राम्याणामपि मानवानाम् उपहास्यतामेव स प्राप्नोति । अतोऽस्माकमिदं कर्तव्यं यदाधुनिक-सुविधाया यन्त्रकलाया समुचितम् उपयोगं विधाय सुखानुभूतिः संश्रयणीयैव ।

न केवलं वर्तमानकाल एव परन्तु प्राचीनकालेऽपि तादृशस्य वर्गविशेषस्य सत्ता आसीदेव । यः **"तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति"** इत्याभाणकस्य निदर्शनीभूतः पुराण एव रममाणो नूतनस्य सर्वस्यापि विरोधं विधत्ते । यतोहि कविकुलशिरोमणिना श्रीकालिदासेनापि मालविकाग्निमित्राख्ये नाटके प्रस्तावनायामेष भावोऽभिव्यक्तः । वाग्देवताविभूतेः भवभूतेः समयेऽपि तावान् समादरस्तस्य न बभूवेति **"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्"** इत्यादि पद्येन सुस्पष्टं प्रतीयते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं ग्राह्येऽपि नूतने पदार्थे सिद्धे तस्यापरपक्षोऽपि विचारणीय एव वर्तते। यथाहि पदातिर्गच्छन् जनः प्रायो न दुर्घटनामेति। जातायामपि च तस्यां परमावधि पीडामङ्गवैकल्यं वा प्राप्नोति, न हि प्राणभङ्गस्तस्य सुशकः। किन्तु वायुयानेन गच्छतो जननिवहस्य दैवदुर्विकाज्जातायां दुर्घटनायाम् अवशेषोऽपि पारिवारिकाणां कृते न मिलति। चन्द्रयात्रातोऽपि केचित्समायाताः किन्तु सम्प्रत्येव रूसदेशीयानां त्रयाणामपि प्राणा महायात्रापथिकतां भेजुः, इत्यादीनि विचारजातान्यपि समुल्लसन्त्येव। यतो हि सौविध्येन सह भयाधिक्यमपि वर्धते, किन्तु समष्टिदृष्टचा सुविधाधिक्ये भयलेशोऽयं **"एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः"** इति पद्यस्योदाहरणतां सहसैव समायाति।

किञ्च विस्तीर्यमाणे विचारप्रताने वर्तते तत्त्वमिदमपि विचार्यमेव यत् सर्वमेव नूतनं दोषहीनं सर्वथानुकरणीयमेव न वर्तते। केचित् प्राचीनाः पदार्था अपि तादृशा वर्तन्त एव येषां साम्यलेशमपि नूतनेषु पदार्थेषु न दृक्गोचरतामेति। अतोऽस्माकं कर्तव्यमिदमेव यद् यदिदं वस्तु प्राक्तनं नूतनं वेति विचारं परिहाय यद्गुणा विचारणीया गुणानुरोधेन च ग्राह्यताग्राह्यता वा निर्धारणीया। एषैव विचारपरिपाटी श्रीकालिदासेन मालविकाग्निमित्रे सम्यक्तयेत्थं प्रतिपादिता—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

६६. योगः कर्मसु कौशलम्

विविध-विचार-धारा-पूरितान्तरेषु मानवेषु प्रायो द्वेधा प्रवृत्तिर्दृश्यते। तत्र केचिज्जनाः कार्यारम्भं विदधन्तः प्रथमतः फलमेव विचारयन्ति। इतरे च कर्तव्यनिष्ठा जनाः सर्वतोभावेन कर्म कुर्वन्तः समधिगतं फलं स्वीकुर्वन्ति। नहि कार्यारम्भ-मात्रेणैव फलावाप्तिरिति सार्वत्रिको नियमः। अतएव दैवात् कर्मवैगुण्याद्वा फलाभावे प्रथमकोटिका जना महतीं दुःखानुभूतिं कुर्वन्ति। अपरेषाञ्च कर्म-सम्पादन-पराणां कृते फल-प्राप्ति-विरहे न तावान् दुःखानुभवो जायते। ते तु स्वशक्त्यनुसारं कर्मविधानमात्रे स्वाधिकारं मन्यन्ते फलप्राप्तिं तु भगवदधीनां विचारयन्ति।

किंच फलेषु कामनां विहाय निष्काम-भावनया कृतं कर्म न कदापि नैष्फल्यं जायते। तथा च कर्मफलाकाङ्क्षां परित्यज्य कर्मानुष्ठेयम्। युद्धक्षेत्रे यावद्बुद्धिबलोदयं पराक्रमं विदधन् सैनिकः स्वकर्तव्य-पालनं करोति। न हि तद्विचारे तस्मिन् काले जयो वर्तते। अतएव मानवस्येदं कर्तव्यं यत्तेन यथाशक्ति कर्म समनुष्ठेयं न फलप्राप्ति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विचारः प्राथम्येन करणीयः । अतएव परमानन्द-कन्देन श्रीगोविन्देन गीतायां प्रोक्तमेतद्—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।"

यदि च कर्मफलप्रयुक्तेन जनेन कर्म न कर्तव्यं तर्हि कथं कर्म विधातव्यमिति शङ्कायां प्रोक्तं यद् फलादि-तृष्णा-विरहितेन मानसेन निःसङ्गेन योगस्थेनैव कर्म करणीयं लाभालाभे च समतैव योग उच्यते—

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय !
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।"

प्राक्तनैः कर्मनिष्ठैः राजर्षितल्लजैः श्रीजनकादिभिः कर्मानुष्ठानतत्परैरेव ब्रह्मसाक्षात्काराभिधा महती सिद्धिरपि समधिगता । यथोक्तम्—

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।"

प्रवृत्ति-निवृत्ति-भेदेन द्विधापि व्यवहरणपरां सर्वामेव जनपरम्परां शासद् विराजते गीताशास्त्रम् । तत्र च सर्वविधेष्वपि भौतिकेषु तदितरेषु च कार्यनिर्वहेषु पूर्वोक्तः समता-स्वरूपो योग एव कौशलं भवति । अस्यायं भावो यद् यानि कर्माणि निसर्गत एव वन्धस्वभावानि तानि समबुद्ध्या योगाख्यया वन्धाख्यात् स्वस्वभावाद् विच्युतानि भवन्ति । इदमेव योगस्य कौशलं वर्तते ।

प्रथमं प्रवृत्तिदिशि विधीयते दृष्टिपातः । अस्मिन् गभीरतमे नानाविधविपत्ति-भ्रमि-भयङ्करे गृहादि-ग्राह-संकट-समाकुले संसार-सागरे नश्वरतामयीं शरीरतरणिं समाश्रित्य मनोरथवृन्देन सह गच्छतो जनस्य वर्तते का शक्तिः पारं यातुम् । तत्र च यदा स निजाभिमानं परित्यज्य ईश्वरार्पणबुद्ध्या पद्मपत्रवन्निर्लेपः कर्माणि कुरुते तदा भगवतः करुणावरुणालयस्य अनुग्रहेण कुशल-कैवर्तक-बलेनैव गच्छति सानुकूलं परं पारम् ।

किञ्च प्रथमत एव यदि फले समासक्तिः भवेत्, तर्हि कार्यारम्भ एव फलमात्रनिष्ठो न कर्माणि कुरुते, जाते च दैवात्कर्मभङ्गे महतीं वेदनामनुभवति । यतो हि यस्मिन् यस्य यादृशी "आशा" वर्तते तस्य विनाशे तावतीमेव पीडां भुङ्क्ते । आध्यात्मिकमार्गे तु—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्वा च सततं ध्येय इति दर्शनहेतवः ॥

इति नयानुसारं श्रवणमनननान्तरं तन्मूलजस्य निदिध्यासनस्य कृते मानवाधिकारः समायाति । योगश्च निदिध्यासनस्य अपरपर्याय उच्यते । अतो मोक्षाभिधस्य पुरुषार्थशिरोमणेः सर्वेष्वपि साधनेषु योगस्य मूर्धन्यता स्वयमेव सिद्ध्यति । महर्षिपतञ्जलिप्रणीते योगदर्शने **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** इति योगस्य लक्षणं कृतम् ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति पार्थप्रोक्तानुसारं चाञ्चल्यादिविशिष्टस्य मनसो निग्राह्यतापि योगेनाभ्यासेन वैराग्येन च प्रोक्ता—

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।" (गीता)

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" (योगसूत्रम्)

मन एव मनुष्याणां वन्धनमोक्षयोः कारणं भवति। यदि च मनो न निगृह्णीयात् तर्हि वद्धमात्मानं कदापि मोचयितुं न प्राभवत्। वद्धात्मा च मुहुर्मुहुः जन्म लब्ध्वा विविधानि कष्टानि अनुभवति। अतएव बन्धकारणं मन एव अभ्यासेन वैराग्येण च निरोधव्यमिति।

एवं विचारवितानेन निश्चीयत इदं यत्सांसारिकजनैः सर्वाणि कर्माणि फलाशां विहाय परमेश्वरार्पण-बुद्धया विधेयानि। आध्यात्मिक-पथ-पथिकैश्च ब्राह्मणः साक्षात्कारार्थं श्रवणमननानन्तरं योगोपासना विधेया। अतएव च पार्थसारथेः भगवतः श्रीकृष्णस्योक्तिरियं युक्तियुक्तैव प्रतीयते—

"योगः कर्मसु कौशलम्।"

++

६७. गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति

कल्पना-कौशलेन लोकोत्तर-वर्णनपरं **'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्'** इति सन्मार्गोपदेशप्रवणं कान्तावत् सरसतया सदुपदेशपरायणं काव्यं कलयन् विद्वान् कविपदभाग् भवति। तस्य कवि-तुहिनाद्रेः निःसृता दृश्य-श्रव्य-रूपेण द्विविधा काव्य-जाह्नवी शैलीभेदेन गद्यं पद्यं तदुभय-संमिश्रण-रूपां चम्पूमिति मार्गत्रयं प्रपद्य रसानन्दे निमज्जयति सहृदय-हृदयं वलादिव।

संस्कृतसाहित्ये सन्ति विविधरूपाणि वहूनि काव्यानि परन्तु गद्यकाव्यानां विरलता व्यनक्ति तेषां महत्त्वं निर्माण-काठिन्यं काव्य-वैशिष्टचञ्च। अत्रायं हेतुः यत् पद्यरचनापेक्षया गद्यनिर्माणे काठिन्यमेव। पद्य-रचनायां शब्दच्छटा-भराद् गीति-माधुर्यात् तदनुरूपारोहावरोहक्रमाद् यति-विश्रमादि-वलाच्च स्वभावत एव माधुर्यम् अनुभूयते। यदि च कवेः कौशलान्मनागपि वैशिष्ट्यं समुपजायते तर्हि योग्य-शिष्य-प्रदत्ता विद्येव दर्पणगतं प्रतिविम्वमिव च वहुधा विद्योतमानं तद् वशीकरोति विज्ञम्।

अपि च पद्य-रचनायाम् अयम् अपरो महान् लाभो यद् यदि कश्चिद् दोषो रचनाशैथिल्यं भाव-कल्पना-द्रारिद्र्यं वा विद्यते सोऽपि छन्दोगुणेन सुधाकर-सन्निहितं लक्ष्म यथा तज्जयोत्स्ना-जालेन अपाव्रियते। छन्दोनियम-परतन्त्रतावलेन कविः स्वेष्टरीतिम् अनुसृत्य शब्दरचनायाम् अस्वतन्त्रोऽपि भवति। अतएव कविः स्वकौशलस्य प्रकटने परतन्त्रता-शृंखला-निबद्धस्येव वन्दिनो दशाम् अनुभवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किन्तु गद्यनिर्माणे नायं नियमादिबन्धो वर्तते । अतः कविः स्वेष्ट-कौशल-प्रदर्शने सर्वथा स्वतन्त्रो भवति। न च तस्य कोऽपि दोषो निह्नोतुमर्हति कयापि रीत्या। न स भावादिप्रकटने कापि बाधा विजृम्भत इति विद्या-पारङ्गतैः कविकोविदैः कवि-शातकुम्भस्य परीक्षणस्य गद्यमेव निकषतया निश्चितम् ।

यथा हि संसारे सुवर्णपद-वाच्यानां बाहुल्ये विद्यमानेऽपि निकष-कषणानन्तरं सर्वथा शुद्धा अल्पीयांस एव सुवर्णपदार्था दृश्यन्ते तथैव गद्यनिकषे सुवर्णमयानां कवीनां संख्या विद्यतेऽङ्गुलि-गणना-योग्यैव । नैतेन शङ्क्यमिदं यत् संस्कृते गद्यं नास्त्येव, यतो हि संस्कृतवाङ्मये वैदिकात् कालाद् आरभ्य आधुनिककालपर्यन्तं यजुर्वेदः, ब्राह्मणभागाः, उपनिषदः, भाष्याणि, शिलालेखा इत्यादयो गद्यभागा दृश्यन्ते सर्वत्रैव गीर्वाण-वाणी-विभागे किन्तु पद्यापेक्षया तेषां लघीयसी मात्रा तन्माहात्म्यं निर्विवादमेव वदति ।

महाकवि-शिरोमणेः कालिदासस्यापि सरस्वती खण्डकाव्य-महाकाव्य-नाटक-विधासु प्रवहन्ती परिदृश्यमाना अपि न गद्यभागं स्वसमागमेन पुनातीति विदन्त्येव विद्वांसः। पद्यरचनायां सौकर्यमपरमिदं यत् कस्यापि पदस्य विशिष्टे चमत्कृतिप्रदे विन्यासे जाते सामाजिकाः कविवराय समुपहरन्ति सत्वरमेवोपाधिम् ।

विषयेऽस्मिन् दीपशिखा, घण्टामाघो, भवभूतिरिति कालिदासस्य माघस्य श्रीकण्ठस्य च भव्योपाधिगणः प्रसिद्ध एव । किन्तु गद्यस्य प्रशंसा तावन्न विधीयते यावत्सर्वांशे तस्य सौष्ठवकला न नर्तनं विधत्ते । अस्मादेव वैशिष्ट्यात् पद्यक्षेत्रे परमसिद्धानां कविवराणां गद्यक्षेत्रे पदप्रक्षेपोऽपि न श्रूयते ।

नैतावता वितर्क्यमिदं यत् पद्य-प्राचुर्य-विभूषितापि सुरगवी न गद्य-कवि-रत्नै-रनुरञ्जिता, यतो हि सुबन्धु-दण्डि-बाण-श्रीमदम्बिकादत्तव्यासादिभिः प्रबलज्योति-विभूषितैः अनुपमैः रत्नतल्लजैः अस्या सुषमा अनिर्वचनीयैव। न हि संस्कृतसदृक्षं भाव-प्रतिपादनदक्षं परिष्कृतं प्राञ्जलं विविधालंकृति-रञ्जितं गुणगण-भ्राजितं रीति-नीति-राजितं कल्पना-कौशलानुप्राणितं हृद्यं सर्वथोऽनवद्यं गद्यम् अन्यस्यां कस्यामपि भाषायां भासते ।

गद्यक्षेत्रे कविः श्रृङ्गारादि-माधुर्यमय-कोमल-मृदुल-वर्णन-प्रसंगे मधुर-भावाभि-व्यक्ति-क्षमानां मार्दवामृत-परिपूर्णानां वर्णानां विन्यासं विदधन्नपि वीरादिवर्णने काठिन्योद्धुराणां विविध-दीर्घ-समासादि-बन्ध-विशिष्टानां कर्कशानां शब्दानां सन्निधानं स्वेच्छया कुर्वाणस्तस्य नटस्य कलाम् अनुहरति यो मसृण-चरणपातेन पुष्पपटलस्योपरि नृत्यन्नपि कदाचित् दर्भ-तृणादि-संछन्नायां वनवसुधायां स्वच्छन्दं विहरति ।

अतः पूर्वप्रतिपादितानां विचाराणां परिप्रेक्ष्ये निःशङ्कमिदं कथयितुं शक्यते यन्नियम-परतन्त्रताया अभावः शब्दशय्या-सृजनस्य काठिन्यम् अलंकार-गुणादि-निवेशानां स्वातन्त्र्यम्, दोषावरणविरहः, स्वकल्पना-कौशल-प्रदर्शनस्य स्वायत्तता, परकृत-वैशिष्ट्यस्य विन्यासाभाव इत्यादीनि तानि तत्त्वानि गद्यक्षेत्रे विद्यन्ते। यः परीक्षणविधौ न सर्वे सुवर्णजातयः कवयः सर्वथा शुद्धिं संप्राप्नुवन्ति । अतएव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामाजिकवृन्दे प्रचलन्ती गद्यमेव निकषतया वदन्ती यांथाथ्यं घोषयन्ती कवि-परीक्षा-प्रकारं प्रदर्शयन्ती सूक्तिरियं सत्यानुप्राणितैव—

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

✦

६८. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्

इह असारे खलु संसारे दुःखमहोदधौ निमग्ना अहर्निशम् असह्य-दुखैः समुद्विग्ना अनल्प-प्रयासैः तत्प्रतीकारोपायं कुर्वाणाः वहवो मानवाः दृष्टिगोचरताम् आयान्ति । कथं तेषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति विचार्य महीयांसः कवयो लोकोत्तरा-नन्द-सन्दोह-जनकतया चतुर्वर्ग-फल-प्राप्त्युपाय-भूतां काव्यात्मिकां सारस्वतीं सृष्टिं व्यरीरचन् । प्रभुसम्मित-वेदादिशास्त्रेभ्यः सुहृत्सम्मित-पुराणेतिहासेभ्यश्च विलक्षणा नवरसोपेता हृदया कान्ता-सम्मितेयं सुकवि-कविता-रूपिणी कविसृष्टिः कामिनीव सहृदय-हृदयं प्रविश्य आनन्दयति रमयति सुखयति मोहयति च तेषां मनांसि । अतएवोक्तम्—

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते ॥

किन्नाम तावत्काव्यमिति **'लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्य'** मित्युक्तम्। तत्र भवति जिज्ञासा किमिदं काव्यत्वं शब्द-पर्याप्तम् अर्थ-पर्याप्तं तदुभय-पर्याप्तं वेति । तत्रार्थस्य काव्यत्वे तु वर्णनात्मकत्वादर्थः काव्यं भवितुं नार्हति । न ह्यर्थः कवेः कर्म, न केनापि कविना कोऽप्यर्थः समुत्पाद्यतेऽतः शब्दनिष्ठैव कविकर्मता वाच्या । अतएवाग्निपुराणे—**'संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्य'** मिति काव्य-लक्षणं प्रतिपादितम् । 'पदावली' चात्र शब्दसमूहात्मिकैवेति । दण्डिनापि इदमेव काव्यलक्षणं स्वीकृतम् । अतएव शब्दनिष्ठता-काव्यवादी साहित्यदर्पणकारो विश्व-नाथोऽपि ध्वनिकारादिभिः निर्धारिते वस्त्वलंकाररसरूपे त्रिविधे ध्वनौ काव्या-त्मतत्त्वे रसध्वनिमेव काव्यात्मत्वेन स्वीकृत्य **"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"** इति काव्यलक्षणम् अङ्गीकरोति ।

इतः पूर्वमपि अग्निपुराणकारेण अपरैश्चापि विद्वद्भिः काव्ये रसस्यात्मता प्रतिपादिता । अग्निपुराणकारेण **"वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"** इति; आचार्यभरतेन च—**"नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते"** इति वदता काव्ये रसस्य प्राधान्यं काव्यात्म-जीवितत्वं च स्वीकृतम् । तत्र भगवता शौद्धोदनिनाऽपि काव्य-स्वरूपं निरूपयता **"काव्यं रसादिमद्वाक्यम्..."** इत्यादिना काव्ये रसस्य प्राधान्यं प्रतिपादितम् । अतएव तेषामनुशीलनं विधाय आचार्यविश्वनाथेनापि **"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"** इति स्वकीयं काव्यलक्षणं निर्धारितम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि च रसात्मकं वाक्यमेव काव्यं तर्हि कोऽसौ रसः ? इति जिज्ञासायां छान्दोग्योपनिषदि च **'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'** इत्यादिना ब्रह्मानन्दस्य रसरूपतया सच्चिदानन्द-स्वरूपस्य ब्रह्मणः विवर्तमिदं जगदिति कृत्वा तदुद्‌बोधनार्थंमेव महाकवेः प्रवृत्तिर्भवति । आचार्यभरतेनापि 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' इति स्वीकृत्य आस्वदनीयं वाक्यमेव काव्यं स्वीक्रियते । एवं च रसान्वितं रसप्रधानं वा वाक्यं काव्यमिति फलितम् ।

ननु रसशब्देन आयुर्वेदशास्त्रेषु उपवर्णितानां मधुराम्ल-लवण-कटु-कषाय-तिक्तादि-रसानां पारदादि-रसानाञ्च ग्रहणात्किमेतदायुर्वेदोक्तं मधुरादि-रस-प्रतिपादनपरं पारदादि-रस-प्रतिपादनपरं वा वाक्यमपि काव्यं स्यादित्याशंक्य रसात्मकं वाक्यमितिशब्दे रसशब्देन रस-भाव-रसाभास-भावाभास-भावोदय-भावशान्ति-भावसन्धि-भावशवलतादीनामेव ग्रहणं भवतीति प्रतिपादितं काव्यशास्त्रे—

रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ ।
सन्धिः शबलता चेति सर्वेऽपि रसनाद्रसाः ॥

एवं च येन काव्येन सहृदयाः जना विस्मृत्यात्मनो दुःखततीन् परमानन्दमनुभवन्ति, येन च काव्येन ब्रह्मानन्दसहोदरस्य रसस्याभिव्यक्तिर्भवति, येन च सच्चिदानन्दरूपस्य परमानन्दस्याविर्भावो भवति, येन च ब्रह्मास्वादमास्वादयन्त इव अलौकिकाह्लादम् अनुभवन्ति सहृदयाः, तदेव रसात्मकं वाक्यं काव्यं भवतीति निश्चप्रचम् । उक्तं च यथा—

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै-
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम् ।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलाकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता ॥

इत्यस्मिन् उदाहरणे नवोढानायिकायाः संभोगश्रृङ्गारस्य वर्णनात् काव्यत्वमिति प्रतिपादितं तत्रैव साहित्यदर्पणे श्रीविश्वनाथेन । अतएव रसात्मकं वाक्यमेव काव्यं स्यादित्येव वक्तुमुचितं प्रतीयते ।

६९. काव्येषु नाटकं रम्यम्

इह खलु सम्यक् संसरणशीले संसारे विद्यमानासु विविध-साहित्य-विधासु नाटकं सर्वातिशायि महत्त्वपूर्णं च वर्तते । यतश्च साहित्यस्य जीवातुभूतं तत्त्वं रस एव विद्यते । तत्र ब्रह्मास्वाद-सहोदरो रसास्वादः सर्वेषामेव सहृदयानां परमाभीष्टः प्रतिभाति । रस-तत्त्वमेव अभिव्यञ्जयन्तो वहवः काव्यभेदा सन्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेषु संकलनदिशा दृश्यं श्रव्यञ्चेति भेदद्वयं समुद्भासते। यथोक्तं श्रीविश्वनाथेन साहित्यदर्पणे—

"दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं स्यात् तद्रूपारोपाच्च रूपकम् ।।"

विविध-कार्य-श्रान्ति-भरितैः त्रिदशैः संप्रार्थितेन करुणार्द्रचेतसा वेधसा नाट्यशास्त्रमाविष्कृतम् इत्येषा आख्यायिका भरतप्रणीते नाट्यशास्त्रे प्रदर्शिता । यद्यपि रूपकापरपर्यायं दृश्यकाव्यं दशविधं विद्यते तदपि तेषु नाटकस्य प्राधान्यात् प्रायो जनोऽविविच्यैव सर्वाणि तानि नाटकमित्येव निर्दिशति । सर्वो विवेकी जनः सांसारिक-वातावरणे श्रमार्तः स्वीयां श्रान्तिं चिन्ताञ्च विहातुं मनसोऽनुरञ्जनं कामयते । नाट्यशास्त्रे च तत्त्वमिदमित्थं प्रतिपादितं दृश्यते—

"दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।"

पुरुषार्थ-चतुष्टयस्य प्रदायकं दुर्विनीत-जन-ग्राहकं मदोन्मत्तानां मदापहारकं षण्ड-स्फूर्ति-दायकं व्युत्पत्ति-शास्त्र-विबोधाधायकं नाट्यशास्त्रमिदम् । अतएव संस्तुतमित्थम्—

"धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामोपसेविनाम् ।
निग्रहो दुर्विनीतानां मत्तानां दमनक्रिया ।।
क्लीबानां धाष्ट्र्यकरणमुत्साहः शूरमानिनाम् ।
प्रबन्धानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि ।।"

वस्तुतः श्रव्यकाव्ये जटिलार्थ-विचार-व्यग्रा भावान्वेषण-तत्परा कल्पनाजालोद्ग्रथिता साधारणशेमुषी न साधारणीकरणं विधातुं सामर्थ्यवती भवति । परन्तु नाट्ये ते सर्व एव जना नायकादिपात्रैः सह साधारणीकरण-व्यापारेण तदनिर्विशेषीकृताः प्राक्तन-वासना-वासितान्तःकरणा वेद्यान्तर-स्पर्श-शून्यस्य रसस्यास्वादं सहजतयैव कुर्वन्ति ।

पुराकाले वभूव नाटकानां बहुलः प्रचार इति प्राक्तन-साहित्य-विवेचनेन सुस्पष्टं सिद्ध्यति । पतञ्जलिप्रणीतेऽपि महाभाष्ये नाटकस्थितिः विद्यमाना तात्कालीन-समाजे नाटकप्रसारं वदत्येव । वर्तमानेऽपि काले नाटककल्पं चलचित्रमेव सर्वाधिक-प्रचार-युक्तं मनोरञ्जन-साधनं विद्यत इति विदन्त्येव विज्ञा ।

अत्रापि तत्त्वमिदमेव यत् साधारणोऽपि मानवो बुद्धिश्रमं विना समनुभवति सौख्यमस्मिन् । अतएव महर्षिणा वाल्मीकिना सर्वथा सम्यक्तया वर्णिताम् अपि श्रीरामकथां समुपजीव्य सृष्टेषु प्रसन्नराघव-अनर्घराघव-महावीरचरित-उत्तररामचरित-हनुमन्नाटकादिषु प्रबन्धेषु सहृदय-हृदयावगाहं विदधन्त्येव । भविष्येऽपि प्रथैषा चलिष्यत्येव ।

नाटके समेषां भावानां समस्तानां पदार्थानां समग्राणां गुणानां सर्वासां कलानां सर्वेषां शास्त्राणां समुपदेशानां च समुदायः प्रतिष्ठितः प्रदिशत्येव "रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्" इति काव्यप्रयोजनीभूतं समुपदेश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुगन्धम् । किम्वहुना त्रैलोक्यस्य सर्वमेव भावजातं नाटके प्रतिबिम्बितं प्रतिभाति प्रतिभावताम् । यथोक्तम्—

"त्रैलोक्यस्य च सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ॥"

अतएव च शास्त्रेषु नाटकदर्शनेऽपि रसास्वाद-हीनानां वासना-विरहितानां मानवानां गणना निश्चेतनेष्वेव पदार्थेषु विहिता—

सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत् ।
निर्वासनास्तु रङ्गान्ते काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः ॥

संस्कृतसाहित्ये अनेकेषां महाकवीनां कीर्तिकामिनी समाश्रय-स्थलानि नाटकान्येव समुल्लसन्ति । पश्यन्तु भवन्तो महाकवेः भवभूतेः यशःशरीरस्य समाश्रयानि तद्रचितानि नाटकान्येव । भवभूतेः प्रशंसाया कारणं कारुण्यपरम् उत्तररामचरितमेव, "उत्तरे रामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते" इति सूक्तिः संदिशत्येव ।

कविकुलगुरुणा कालिदासेन यद्यपि महाकाव्य-खण्डकाव्य-नाटकानां रचनया संसारः ससारो विहितः, तदपि तेन लोकाराधनता स्वत एव नाटकस्य वदता नाटकमहत्त्वं सर्वातिशायि स्वीकृतम् । सामाजिकैरपि शाकुन्तल-सुधा-परितृप्तान्तकरणैः **"कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्"** इति हार्दो भावः प्रकटितः । एवं विवेचनेनानेन निश्चीयत इदमेव यद् मुरारिप्रभृतीनां कवितल्लजानां प्रशंसानिदानं तन्नाटकमेव । यद्यपि सर्वाण्येव काव्यानि हृद्यानि भवन्ति, परन्तु नाटकन्तु तेषु किमपि कामनीयकम् अद्वितीयमेव संधत्ते । अतः **"काव्येषु नाटकं रम्यम्"** इति सूक्तिः सार्थकैव संराजते ।

✦✦

७०. मम प्रियं पुस्तकम्

पुस्तक-पठन-व्यसनिनो मम मनो यद्यपि सर्वाण्येव सुपुस्तकानि हरन्ति, तदपि मरालस्य मानसं मानस इव मे मानसं भगवद्गीतायां सविशेषं रमते । स्वभावत एव गीर्वाण-वाणी-प्रणयिना मया विविधा ग्रन्था अभ्यस्ता, परन्तु भगवद्गीताया गरिमा त्वनुपम एव ।

पुस्तकानि विद्योपार्जनस्य वित्तार्जनस्य च साधनान्येव सन्ति । **"सा विद्या या विमुक्तये"** इति भारतीय-विद्वद्वर्याणां वाक्यम् अभिलक्ष्य यदि विद्यासाधनेषु पुस्तकेषु तारतम्य-विचारो विधीयते **"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"** इति वेदवाक्यानुसारं ब्रह्मज्ञान-साधनानि पुस्तकान्येव पुस्तकानीति तत्त्वं भाति मन्मतौ । ब्रह्मविद्यासदृशेन परम-गंभीर-विचारेण ओतप्रोतानि पुस्तकानि निसर्गत एव बुद्धि-वैभव-सम्पन्नानामेव विदुषां गम्यानि सन्ति । तेषु मादृशस्य साधारण-शेमुषीकस्य जनस्य चेतो न रमते । अतएव करुणा-वरुणालयेन परमानन्दकन्देन श्रीमुकुन्देन महाभारत-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युद्धेऽर्जुनव्यपदेशेन सर्वेषामेव संसार-सागर-निमज्जमानानां जनानां समुद्धाराय सैषा भगवद्गीता प्रगीता । अस्य माहात्म्य-प्रकर्षश्च भगवज्ज्ञान-हासेन श्रीवेदव्यासेन सम्यक्तया प्रदर्शितः--

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

उपनिषत्प्रमाणकस्य वेदान्तशास्त्रस्य यद्रहस्यं वर्णितं तत्सर्वमेव अस्यां निहितमिति प्रथमपादेन प्रतीयते । ईश्वर-प्रणीतत्वात् समस्त-दोष-रहितानाम् उपनिषद्गवीनां दोग्धापि न केवलं गोपाल एव, स्वदोहन-कौशलेन गोपालानाम् आनन्द-दायको गोपालनन्दनः, पार्थश्च वत्सल-स्थानीयो वत्सः, दुग्धञ्च गीता-पीयूषरूपं तदपि स्वल्पत्वात् केवल-वत्स-पोषण-कर्म-निरतमेव न, किन्तु तदधिकं सर्वेषामेव समभिप्सूनां जनानां पुष्टि-तुष्टि-प्रदं च वरीवर्ति । समस्तोपनिषदां सारभूता ब्रह्मविद्येति, या च लोकहिताय साक्षात् परब्रह्मणा पुरुषोत्तमेन स्व-मुखाद्वर्णिता, सा भगवद्गीता कथं मनुजेन वर्णयितुं शक्यते । अतएव समस्त-शास्त्र-सर्वस्व-भूताया गीताया अभ्यासेन सर्वेषां शास्त्राणां गतार्थतापि वर्णिता--

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिर्गता ॥

किञ्च सर्वेषामेव ब्रह्मादि-पिपीलिका-पर्यन्तानां प्राणिनां स्वाभाविकोऽयं समुदेति समभिलाषा, यदहं न दुःखभाजनतां गच्छेयम् । अतएव च प्रतिकूलवेदनीयत्वं दुःखस्य लक्षणम् । तस्य दुःखस्य निदानञ्च पापमेव । किन्तु भगवद्गीता तु सा वह्निज्वाला यस्यां पतितानि पापतृणानि सर्वथा भूतिभूतानि स्मृतिमात्र-शेषाणि भवन्ति । स्वपरिमाणस्य दुःखस्य प्रदाने शक्तेस्तु वार्त्तैव का ! अतएव गीताया पापप्रध्वंसकता शास्त्रे अनया रीत्या वर्णिता विराजते—

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ॥
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीताया एतादृशं परममहत्त्वं परिलक्ष्य विद्वद्वर्यैः महात्ममूर्धन्यैः कर्मनिरतैश्च विविधैः जनैः अस्या विविधा व्याख्या विधाय स्वीया लेखनी मतिश्च कृतार्थीकृता । दार्शनिक-केसरिणः श्रीशङ्कराचार्याद् आरभ्य प्रचलितायां पावनायाम् अस्यां परम्परायां विविधानि रत्नानि दृश्यन्ते ।

आधुनिककालेऽपि विख्यातवैदुष्यैः देशभक्ति-पावितान्तःकरणैः श्रीतिलक-महाभागैः योगपारङ्गतैः श्रीमदरविन्द-महोदयैः दार्शनिक-देशिकैः श्रीराधाकृष्णन्-महाशयैः गान्धीवाद-विशारदैः सर्वोदय-प्रवर्तकैः श्रीविनोवाभावैः विद्वद्भिरपि स्वबुद्धिमनुसृत्य व्याख्याता श्रीगीता । 'गीता संन्यासिनां ग्रन्थो ना लौकिक-जीवनोपयोगाय' इति वदन्तो वस्तुतः स्वबुद्धेः दारिद्र्यमेव प्रदर्शयन्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यतो भगवान् श्रीकृष्णः तत्र न संन्यासस्य विरक्तेः वा केवलमुपदेशं करोति, किन्तु सर्वत्रैवासक्ति फलाभिलाषं बिना कर्मोद्योगमेव समुपदिशन् दृश्यते--

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।"

अतएव सांसारिकजीवने विविध-विभीषिका-विनाशिनी कोविद-कलाप-कुवलय-विकासिनी समस्त-सन्ताप-हारिणी नन्द-नन्दन-मुखारविन्द-वासिनी समुपदेश-सुधा-वर्षिणी ममता-तृष्णाहङ्कारादि-दुर्गुण-नाशिनी भगवद्भक्ति-रसानुवासिनी वेदवाक्य-पाविनी पार्थानुपीता श्रीमद्भगवद्गीता मम परमप्रियं पुस्तकं वर्तते । मन्ये च यदनया तरण्या संसारनदीं संतीर्य गोविन्द-पदारविन्दस्य सम्प्राप्तिरपि मे भविष्यतीति ।

७१. वेदानां महत्त्वम्

सर्वधर्मापेक्षया प्रचीनस्य सर्वार्थ-साधकस्य सकल-हित-प्रवीणस्य समस्त-दोष-विहीनस्य सनातन-रूपस्य धर्मस्य प्राचीन-भारतस्य च कल्पनापि वेदं विना न समुदेति । यथा लोचनविरहितो जनः कस्यापि पदार्थस्य दर्शने सामर्थ्यरहितो भवति, तथैव वेदविहीनोऽपि जनः आध्यात्मिक-पदार्थावलोकने सर्वथा असमर्थता-मेव भजते । प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैरप्यनधिगतस्य तत्त्वस्य बोधनादेव वेदस्य वेद-तेति सुस्पष्टमुक्तं मनुना—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायैर्न बुध्यते ।
तं वै विदन्ति वेदेन सेयं वेदस्य वेदता ॥"

भारतीय-परम्परानुसारं नेयं वेदगवी केनापि रचिता कृता वा, किन्तु विश्व-सृजापि ब्रह्मणा नित्यामिमां संस्मृत्य विश्वस्य रचना कृता । अतएव "श्रुतिः" इति नामधेयमस्याः स्वतः प्रामाण्यमयं गौरवं व्यनक्ति ।

शङ्कराचार्यसदृशा दार्शनिकाः, उदयनाचार्यसदृशाः न्यायदक्षाः, कुमारिल-प्रभृतयो मीमांसानिधयोऽपि श्रुतेः समक्षं स्वपक्षमधरयन्तीति विदन्त्येव विज्ञाः । वेदखण्डनपरा अपि सांख्य-बौद्धादयः स्वपक्षरक्षणार्थं वेदस्य प्रामाण्यं समुपस्थापयन्तीति प्रत्यक्षमेव वेदस्य महत्त्वम् ।

सर्वप्राक्तनता, विविध-विचारता, दार्शनिक-भाव-प्रवणता, छन्दोऽलङ्कार-प्रचुरता, सर्वमङ्गल-कामिता, समुपदेश-तत्परता इत्यादयः विविधा गुणा अस्य गौरवं दर्शयन्ति ।

विविध-वेद्य-विचारपूर्णं सर्वत्रानुस्यूतम् एकदेवमयं दर्शनम्, अनेकालङ्कारा-लङ्कृतं रसप्रवणं माधुर्य-मञ्जुलं साहित्यं, सर्वभूत-मङ्गलमयं परिश्रम-महत्त्व-बोधकं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्मनिरतं सदुपदेशं, भारतीयं प्राचीनं वेश-भूषोत्सव-प्रकारादि-बोधिका सामाजिक-व्यवस्थां यदि दिदृक्षवो भवन्तः तर्हि पठन्तु वैदिकसाहित्यम् ।

अत्र सर्वमेवैकत्र सम्मिलितं विराजते मोहयति च महिम्ना मननकर्तॄणां मनांसि । इन्द्र-वरुण-रुद्र-पूषा-प्रभृतीन् विविधान् देवान् स्तुवन्ती पदे पदे तन्महत्त्वं बोधयन्त्यपि भगवती श्रुतिः एकदेवोपासनामेव निर्दिशति । इत्थं विविधदिशा वैशिष्ट्यशालिन्याः श्रुतेर्महत्त्वं भाषाविज्ञान-दृष्ट्यापि वर्तते, यतः प्राचीनानां भारोपीय-परिवार-भाषाणां सम्यगध्ययनं वैदिकभाषाम् अनधीत्य भवितुं कदापि कथमपि न शक्नोति । पारसीक-धर्मग्रन्थस्य अवेस्तानामकस्य भाषा ऋग्वेदभाषामनुहरति ।

इत्थं वेदस्य महत्त्वं सर्वातिशायि विदित्वा भारतीयानां जनानां तत्र श्रद्धा स्वाभाविकी विद्यत एव । अतएव वेदस्याध्ययनं सर्वैरेव निष्कारणं कर्तव्यमिति समपदिशति महाभाष्यकारो भगवान् पतञ्जलिः—

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदो ज्ञेयोऽध्येतव्यश्चेति ।"

प्रथम-सामाजिक-व्यवस्थाकारो मनुरपि वेदातिरिक्त-पठनरतस्य द्विजस्य द्विजत्वमेव नश्यतीति कथयन् वेदपठन-माहात्म्यमित्थं बोधयति—

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥"

केवल-वेदपाठ-पारायणापेक्षया तस्य तत्वज्ञो जनः श्रेयानिति यास्काचार्येण स्वनिरुक्ते घोषितम्—

"स्थाणुरयं भारहरः किलाभूत्, अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते, नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥"

किञ्च सर्वमेव भारतीय-संस्कृति-सम्मतं वाङ्मयं वेदमेव समुपजीव्य संराजते । अत इदं निःसंकोचं कथयितुं शक्यते यद् वेद एव स नगाधिराजो, यस्मान्-निःसृता विविधा ज्ञानविज्ञानमयी सरित् भारतीय-हृदय-प्रदेशं संतर्पयन्ती तेषां स्वसेवनार्थं समुपागतानाम् अन्येषाञ्च जनानां कल्याणं विदधते । ईश्वरस्य अस्तित्वम् अनङ्गीकुर्वन्नपि जनो नास्तिकपदाभिधेयो न भवति, किन्तु वेदस्य निन्दामपि कुर्वन् स **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** इति दिशा नास्तिकपदाभिधेयः सञ्जायत इति भारतीया रीतिः परमेश्वरापेक्षयापि वेदस्य महत्त्वं दर्शयति ।

वेद-चमत्कृति-चमत्कृता बहवो वैदिशिका अपि जनाः शरणे समागत्य तत्सेवनेन स्वजीवनं पावयन्ति विदन्त्येव विद्वांसः । वेदवर्णितां सामाजिकरीतिं, जीवन-नीतिं, धर्म-गौरव-गीतिं, परस्पर-प्रीतिं, विविध-गुण-स्फीतिं, पाप-भीतिञ्च समालोकयितुं सर्वैरेव विशेषतो भारतीयैः वेदस्य अध्ययनम् अवश्यमेव कर्तव्यम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७२. रम्या रामायणी कथा

श्रीमद्रामायणी गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ।

यज्जगतीतलेऽस्मिन् भगवतो वेदादतिरिक्तं सर्वप्रथमं छन्दसां प्रणयनं महर्षिणो श्रीवाल्मीकिना विहितमिति। तेन महर्षिणा देवर्षेर्नारदस्य मुखारविन्दात् विनिर्गतं कथातत्त्वं निदानीकृत्य विधातृ-प्रेरणया धर्म-परायणस्य लोकाभिरामस्य श्रीरामस्य पवित्र-चरित्र-वर्णनात्मकं श्रीराम-कथा-वर्णन-परायणं रामायणमेव सर्वप्रथमं महाकाव्यं निर्माय समवाप्ता महती प्रतिष्ठा। अस्मिन् काव्योपयुक्ता सर्वा एव विशेषता यथास्थानं सन्निवेशिता विराजन्ते। लोकहितानां स्वाभाविकानां भावानां सम्यक्तया सरसतया च प्रकटनमेव काव्यमत एव वाल्मीकेः क्रौञ्च-द्वन्द्व-वियोग-समुत्पन्नः भावप्रवाहः काव्यतमतया परिगणितो श्रीमता आनन्द-वर्धनाचार्येण ध्वन्यालोके—

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥

कविकुलगुरुणा कालिदासेनापि प्रतिपादितं यथा—

"तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः ।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ॥"

वाल्मीकि-रामायणे करुण-रसस्य प्राधान्यमन्येषां रसानाञ्च तदङ्गत्वं सम्यक्तया वर्णितं दृश्यते। सर्वत्रैव वर्णितः सहृदय-हृदयावर्जको रसप्रवाहो भावप्रवाहश्च स्वसमीपागतान् सहृदय-हृदयान् कोविद-जनांश्च सुधा-निर्विशेषं सन्तोषयति। उपमोत्प्रेक्षादीनाम् अलङ्कृतीनां चात्र समयानुरूपः संस्थानानुरूपः सन्निवेशो विभ्राजते। एवमस्या आदिकाव्यस्य गुडजिह्विकान्यायेन सरसकाव्यकथा-वर्णनव्याजेन **"रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवदिति"** सन्मार्गोन्मुखीकरणमेव प्रयोजनं विद्यते एषैव सरणिः वाल्मीकिना च स्वकाव्ये धर्मप्रतीकस्य रामस्य विजयवर्णनेन अधर्मप्रतीकस्य अहंकारमूर्तेः रावणस्य च पराभवप्रदर्शनेन प्रदर्शिता निखिलेभ्यो जनेभ्यः। अतएव रामकथामृत-पाविता विशिष्ट-गुण-गण-गरिमालङ्कृता रुचिररुचिरा सरससरसा भावतरला वाल्मीकेरादिकविता सर्वत्र संस्कृतवाङ्मये प्रख्यातैव।

अन्यत्रादृष्टानां मौलिकानां मधुराणां प्रसङ्गानुरूपाणां कल्पनानां प्रचुरता प्रीणात्येव सरस्वती-प्रणयि-चेतांसि। एतदतिरिक्तं छन्दसां विनिवेशः भाषासौन्दर्य-सन्निवेशो प्रबन्ध-पटुता-प्रवेशो विविध-विषय-विभूषायाः काव्यकलायाः संन्निवेशश्च साधु राजतेऽत्र।

सर्वा भारतीया सभ्यता, संस्कृतिः, श्रेयःसरणिः, पावनी परम्परा च रामायणे प्रतिपदं प्रोता प्रतिभासते। आदर्शो पित्राज्ञापालको धर्मरक्षको रामसदृशः सुतः, भरत-लक्ष्मण-कल्पो तपस्वी भ्राता, दशरथप्रतिमः पिता, सुमित्रासदृशी जननी, उत्पत्तिपरिपूता सीतासदृशी सती साध्वी नारी, वशिष्ठसदृशो गुरुवरः,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हनुमत्सदृशोऽनुसेवकः, सुग्रीवसदृशः सुहृद्, विभीषणसदृशो भक्तो नान्यत्र कुत्रापि विश्वसाहित्ये दृष्टिगोचरताम् आश्रयन्ते । स्थालीपुलाक-न्यायेन निदर्शनद्वयं निदर्शयामि सुग्रीव-सान्निध्ये सीताभरणानां परिचये श्रीलक्ष्मणस्य इयमुक्तिः प्रदर्शयत्येव भारतीयमादर्शम्—

"केयूरे नाभिजानामि नैव जानामि चाङ्गदे ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

अपि च श्रीरामानुगमनार्थं वनवासोद्यतस्य श्रीलक्ष्मणस्य कृते जनन्या सुमित्राया अयमादेशो लोकेऽनुपमं वर्तते—

"रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥"

एवं च नास्ति रामायणसदृशं किमपि कमनीयं काव्यं जगति सज्जनानन्द-दायिन्या अस्या रामायणकथायाः चन्द्रिकासादृश्यं तत्पानाभिलाषिणाञ्च लोकानु-रञ्जनानां सज्जनानाञ्च चकोरसाम्यं सम्यगेव संदर्शितं केनापि कविना—

"कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम् ।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव सज्जनाः ॥

एताभिर्विशेषताभिः विशेषितायाः सकललोकतुष्टिदायाः सदूषणाया अपि निर्दोषाया सखराया अपि कोमलाया लोकाभिरामाया श्रीरामकथायाः स्थितिः प्रलयपर्यन्तं पावयिष्यत्येव जनावलीमिति व्याहृत्य पवित्रिता केनापि कविना स्ववाणी—

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥

एवं च सदाचारमयं भारतीय-संस्कृति-निदर्शनपरं सद्भिराचरणीयं सुधामयं लोकाभिरामं लोकपावनं रामचरितं यत्र गीतम्; तस्य महिमा केन सुधिया वर्णितुं शक्यत इति निधाय सत्यमुक्तं केनापि धीमता—

सरसापि कवेर्वाणी हरिनामाङ्किता यदि ।
सादरं गृह्यते तज्ज्ञैः शुक्तिर्मुक्तान्विता यथा ॥

७३. महाभारतम्

कृत-पुराण-पटल-प्रकाशेन मोचित-भव-पाशेन भगवता वेदव्यासेन विरचितं महाभारतं भारतवसुन्धराम् अन्वर्थां विदधत्सकलामेव वसुमतीं स्वभासा विभासयद् विभ्राजते । प्राक्तन-भारतीय-संस्कृति शौर्यौदार्य-दया-दाक्षिण्यादि-गुण-ग्राम-विभूपितां सर्वथा विभ्रत् कृत-प्रतिविम्ब-समर्पणं दर्पणमिव देदीप्यते महाभारतम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निखिल-धर्मोपदेश-विराजितेऽप्यत्र समेषामेव रसानां सम्यक्तया समास्वादः सामाजिकजनान् कृतार्थान् वितनुते । भगवत्या श्रुतेरनधिकारित्वात् स्त्रीशूद्राणां कल्याणार्थं विरचितं सौकुमार्यादेव सुकुमार-शेमुषीकान् जनानपि समाकर्षत् समस्तमेव वेदार्थं बिभर्ति । अतएव साङ्गवेदार्थोपबृंहणस्य सद्धर्म-प्रवर्तकस्य च भारतस्य पञ्चमवेदता शास्त्रेषु प्रथिता वर्तते, "भारतं पञ्चमो वेदः" इति।

आर्यसंस्कृतेः सर्वस्वेऽस्मिन् सर्वमेव जीवनसर्वस्वं पुरुषार्थचतुष्टयं समुद्भासते । निखिलोऽपि धर्मोपदेशो वर्णाश्रमव्यवस्था विविधोपाख्यानानि राजनीतिसारो युद्धकलाकौशलञ्च महाभारते पौनःपुन्येन अभिलक्ष्यते । अतएवोक्तं च—

"धर्मे त्वर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ?
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥"

अनेकानेक-कथासरित्-समुपबृंहिते भारते कौरव-पाण्डव-कथा-मन्दाकिन्येव सविशेषं वर्णिता। तत्रापि धर्मनिरतानाम् अल्पसंख्यकानां स्वल्प-साधनानां पाण्डवानां विजयेन तदपेक्षया महाशक्ति-संभृतानां धर्मविमुखानां कौरवाणां पराजयेन च धर्मस्यैव श्रेष्ठतां ज्येष्ठताञ्च प्रतिपादयदिदं **"यतो धर्मस्ततो जयः"** इति सडिण्डिम-घोषम् उद्घोषयति ।

महार्णवमन्थनेन चतुर्दशरत्नानि समुपजातानीति शोश्रूयते, परन्तु महाभारत महोदधि-समालोडन-समुद्गतानि रत्नानि तु संख्यातीतानि नित्यनूतनानि समर्घानि विभूषणताम् उपयान्त्येव भगवत्याः सुरसरस्वत्या इति सुकृतिनो विदन्त्येव। यथोक्तं तत्रैव सर्वेष्वपि रत्नेषु सर्वमेव संसारं विकासयद्—

यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः ।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥

दर्शनसिद्ध-राद्धान्तैः सह कर्मयोग-माहात्म्यं प्रतिपादयत् सर्वातिशायिनीं सुषमां बिभ्रद् अज्ञानतमो भिन्दद् भगवद्गीताभिधं प्रत्नं रत्नं श्रेठतमं ज्येष्ठतमञ्च वर्तत इति जानन्त्येव विद्वांसः। विश्ववाङ्मये न किमपि ग्रन्थरत्नं तादृशं वर्तते, यदेतदीयतुलनां समारोढुं शक्नोति । महाभारत-तुहिनाद्रेः निर्गतानि मधुरमधुराणि रस-प्रवाह-पूर-पूरितानि परःशतानि महाकाव्य-नाटकाख्यायिकादि-स्रोतांसि गीर्वाणवाणी-साहित्य-भागं परिप्लावयन्ति ।

न केवलमर्थदिशा, अपितु शब्ददिशापि महत्कलेवरोपबृंहितं महाभारतं निखिलानपि ग्रन्थान् अतिशेते । अतएव च शब्दार्थदृष्ट्या सर्वातिशायिनो ग्रन्थ-रत्नस्य अस्य महाभारतमिति यथार्था संज्ञा संराजते। असार-संसार-सारस्य परम-पुरुषकारस्य पाप-विनाशकस्य हरिकीर्तनस्य विशेषतो वर्णना विराजतेऽत्र। यथोक्तम्—

"वेदे रामायणे चैव भारते च विशेषतः ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र कीर्त्यते ॥"

साक्षाद् भगवतो ज्ञानावतारस्य कृतपुराणोद्धारस्य विहित-वेद-विभागस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य कमनीयां कृतिमिमां विलोक्य को नाम विवेकविचार-विरहितो जनो निम्नाङ्कितपद्ये संदिहीत—

"अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणिः॥"

परम-महत्त्व-महितस्य साहित्यिक-सुषमया सह धर्मोपदेश-प्रवणस्य राजनीति-सदाचार-सर्वस्वस्य भारतस्य महिमा बहुधा सर्वत्र वर्णिता दरीदृश्यते। अन्ते च प्रतिपादिता भारतगायत्री तु धर्मनिष्ठानां श्रद्धासंभृतानां विदुषां कण्ठं हारलतेव भूषयन्ती श्रवण-माहात्म्येन श्रावकान् तारयन्ती जिह्वारङ्गे नरीनृत्यते। भारतीय-धर्मशास्त्रे संस्कृतवाङ्मये बहूनि भारत-महात्म्य-पराणि पद्यानि प्रतीतिपथम् अवतरन्ति। तत्र श्लोकद्वयं निदर्शनीक्रियते—

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय।
पुण्याञ्च भारतकथां शृणुयाच्च तद्वत्
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥

७४. गीता सुगीता कर्त्तव्या

(दुग्धं गीतामृतं महत्)

इह सकल-कला-कलाप-कलितस्य भारतवर्षस्य पवित्रतमे भूभागे धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे पुरुषोत्तमेन भगवता श्रीकृष्णेन प्रगीता गीता कस्य श्रेयसे प्रेयसे न भवति। धर्माचरण-प्रवीणैः धर्म-तत्त्व-वेदिभिः, गम्भीर-चिन्तन-शीलैस्तत्त्वदर्शिभिः, सतत-कर्म-शीलैः कर्मयोगिभिः, प्राणि-शास्त्र-प्रवीणैः विपश्चिद्भिः, शास्त्रज्ञैर्मनीषिभिश्च समादृतेयं गीता सर्वलोकेषु समस्त-शास्त्रेषु च श्रेष्ठा प्रेष्ठा वन्दनीया पूजनीया च शोभते।

पुण्यक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे युद्धाय सज्जीभूय समुपस्थितयोः कौरव-पाण्डवयोः सेनयोरुभयोरन्तराले किंकर्त्तव्यता-विमूढस्य कर्त्तव्य-पथ-भ्रान्तस्य व्यामोहाकुलितान्तःकरणस्य कुन्तीपुत्रस्य अर्जुनस्य ज्ञानालोकेन मोहान्धकारं निरस्य सन्मार्ग-प्रवृत्तये वेदोपनिषदां सरहस्यं सारमादाय साक्षाद्भगवतैवोपदिष्टम् इदम् अध्यात्म-साधकं गीताज्ञानामृतम्। इदं हि ज्ञानामृतं शोकानल-संतप्तानां सुख-शान्ति-करम्, व्यामोह-रोगस्य महौषधम्, कर्त्तव्यमार्गात् परिभ्रान्तानां सन्मार्गम्, मोहितान्तः-करणानाम् उद्बोधनम्, संसार-सागर-निमग्नानां संतितीर्षूणां सन्तरणसेतुश्च अस्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय च प्रतिपादितेयं भारतमृत-सर्वस्वं गीता भगवता। उक्तं च यथा—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

अस्मिन्महामोहमये जगति मोहार्णवे परिपतितानां समुद्विग्नानां जनानां सन्तापहारकत्वम् उक्तं गीतायाः । दुःखमयं हि जगत् । दुःखनिवृत्तिश्च जीवनस्य लक्ष्यम् । अध्यात्म-शास्त्र-चिन्तनेन च दुःखनिवृत्तिर्भवति । गीतायाम् अध्यात्म-शास्त्र-विवेचनं सम्यक्तयोपलभ्यते । तच्च अध्यात्मशास्त्रं शोकसंतप्तान् जनान् सान्त्वयति, परमपदपथिकान् सन्मार्गं प्रदर्शयति, रमयति चोद्विग्नान् जनान्, शिक्षयति च सद्विवेकान् । अतएव अध्यात्मतत्त्व-प्रतिपादिकायाः सर्वज्ञानमय्याः गीतायाः श्रवणं मननमध्ययनं चावश्यं करणीयमिति ।

लोके हि प्रवृत्तिः निवृत्तिश्चेति द्वौ मार्गावुक्तौ । तत्र निवृत्ति-मार्ग-प्रतिपादनं गीतायाः लक्ष्यमिति शङ्कराचार्यस्य मतम् । श्रीरामानुजस्य मतेन गीता भक्तिमार्गं निर्दिशति । श्रीतिलक-महोदयानां मतमस्ति यद्गीतायाः लक्ष्यं प्रवृत्तिमार्गस्य कर्मयोगस्य प्रतिपादनमस्ति । वस्तुतस्तु गीतायां भक्ति-ज्ञान-कर्म-ध्यान-सन्यासादीनां सर्वेषां मार्गाणां समन्वयात्मकं विवेचनं विद्यते ।

गीतायां परब्रह्मणि परमात्मनि तादात्म्यैकत्वानुभवनं ज्ञानमुक्तम् । फलेष्वनासक्तः सन् स्वकर्माचरणं 'कर्मयोग' उच्यते । कर्मफलस्य परित्यागपूर्वकं निष्कामभावेन स्वकर्मानुष्ठानं श्रेयस्करम् उक्तम् ।

गीतायां भक्तियोगस्य सर्वयोगेषु श्रेष्ठत्वमुक्तम् । किन्तु गीतायाः भक्तिः भिन्ना सर्वाभ्यो भक्तिभ्यः । अत्र च परमात्मनः प्रसादनार्थं "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" इतिगीतोक्त्यनुसारेण सर्वान् धर्मान् सर्वाणि कर्मफलानि च परित्यज्य सर्वेषां कर्मणां परमगुरौ परमेश्वरे समर्पणं शरणागति-प्राप्तिश्च परमा भक्तिरुच्यते ।

एवं च यम-नियमादिभिः पावनीभूतस्य चित्तस्य परमात्मनः सेवायां समर्पणं ध्यानयोग उच्यते । अत्र च 'संन्यास' शब्दार्थः कर्मफलस्य परित्यागोऽस्ति । एवं च समस्त-कर्म-फलानि संन्यस्य स्वीयं कर्तृत्वाभिमानं परित्यज्य अनन्येन ध्यानेन ध्यायन्तः परमा भक्त्योपेताः "शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः" इति भक्ति-मार्ग-साधकस्य समत्व-योगस्य समदर्शितायाश्च आश्रयणेन सर्वधर्म-परित्याग-पूर्वकं भगवतः परमेश्वरस्य शरणागतितः परमं पदं लभन्ते मानवाः । यथा चोक्तम्—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
नवामि नचिराद् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

एवं च निष्कामकर्मयोगस्य महत्त्वं निर्दिशन्ती, भक्तिपीयूषस्य धारां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रवाहयन्ती, कर्त्तव्यमार्गम् उपदिशन्ती, जीवन-संदेश-दात्री चेयं गीता सामाजिकाचार-विचारमपि निर्दिशति । समाजस्य लोकस्य सुखकराणि कल्याणकराणि क्षेमकराणि च कर्त्तव्यानि कर्माणि चोपदिशन्त्या तया चातुर्वर्ण्यस्य पृथक् पृथक् कर्माणि निर्दिष्टानि । यथा च—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥"

एवं च सर्वेषां शास्त्राणां सारभूता, नवनीतकल्पा, रसदा, सुखदा, कर्त्तव्यपथप्रदर्शिका, स्वल्पकलेवरापि सुगीता गीता 'सर्वशास्त्रमयी' प्रतिपादिता । अतएव सर्वाणि शास्त्राण्यतिशेते गीता । अस्याः सम्यगध्ययने श्रवणे मनने च कृतेऽन्यशास्त्राणाम् अध्ययन-श्रवण-मननादिकस्य आवश्यकता नास्ति । यथा चोक्तम्—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

७५. पुराणानां वेदमूलत्वं तेषां महत्त्वं च

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' इति महाभारतोक्त्यनुसारम् इतिहासेन पुराणैश्च वेदानां यथार्थमर्थमवगन्तुं शक्यते । पुराणादीनाम् अध्ययनेन विना तु वेदानां यथार्थमर्थज्ञानं न भवितुमर्हति । अतएव पुराणानां वेदमूलकता स्वीक्रियते । वेदाश्च न केनापि मनुष्येण रचिताः, नापीश्वरेण विरचिताः सन्ति, किन्त्वीश्वरस्य निःश्वासरूपेण निःसृताः सन्ति ।

पुरा द्विजबालकाः उपनयन-संस्कारानन्तरं ब्रह्मचर्यपूर्वकं गुरुगृहे चिरकालम् उषित्वा वेदान् अभ्यसन्ति स्म । ततो वेदार्थमवगन्तुं शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-ज्योतिषच्छन्दसां षण्णां शास्त्राणाम् अध्ययनं कुर्वन्ति स्म । ततो महता परिश्रमेण वेदानामर्थोऽवगम्यते स्म । साधारणाः जनास्तु चिरकालं गुरुगृहम् उषित्वा सब्रह्मचर्यं कठिनं परिश्रमं कर्त्तुं न प्रभविष्यन्तीति निश्चित्य व्यास-वाल्मीकिप्रभृतयो महर्षयोऽलौकिकीं तपश्चर्यां विधाय वेदानां यथार्थं अर्थम् अवगम्य च तत्प्रचारायावश्यकतां च अनुभूय तादृशानां जनानां कृते वेदानां निगूढमर्थमवगन्तुं सरसायां सुबोधायां सुरुचिपूर्णायां च शैल्याम् इतिहासपुराणानि व्यरचयन् । विश्वस्य ज्ञानिनो विज्ञानिनश्चाद्य यावत् यत्किमप्यन्वेषणं कृतवन्तः, तत्सर्वं वेदे सूक्ष्मरूपेण विद्यत एव । तेषामेव वेदार्थानां सुगमतया संविस्तरं ज्ञानाय पुराणानमाविर्भावोऽभवत् । उक्तं च यथा—

"विस्ताराय च वेदानां स्वयं नारायणः प्रभुः ।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले ॥"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुराणानां मुख्यं प्रयोजनमस्ति वेदविहितानां तत्त्वानां जनसाधारणेषु प्रचारकरणम्। न केवलं भारत एव, किन्तु भारताद्बहिर्विविधेषु देशेष्वपि पुराणैः वैदिकविचारधारायाः प्रवाहविस्तारस्य सुयशो लब्धम्। पुराणानां कृपया सर्व-साधारणाः मनुष्या अपि स्वजीवनं संयमशीलं विधाय कल्याण-मार्ग-प्रवृत्तेरधिकारं प्राप्तवन्तः। विश्वस्मिन् कस्या अपि सभ्यजातेः पार्श्वे पुराणसदृशः सर्वाङ्गपूर्णो न कोऽपि ग्रन्थो विद्यते। पुराणेषु वेदार्थानां स्पष्टीकरणेन सह कथावैचित्र्यद्वारा गूढाद्गूढतमस्यापि तत्त्वस्य साधारणजनानां हृदयङ्गम-सम्पादन-वैशिष्टचम् अस्ति।

पुराणानां सामाजिकं महत्त्वमपि न्यूनं नास्ति। प्राक्तनस्य समाजस्य स्वरूपमस्माभिः पुराणैरेवोपलभ्यते। पौराणिकस्येतिहासस्य पुष्टिस्तु तत्र तत्रोपलब्धैः शिलालेखैः वैदेशिकानां यात्रावर्णनेन चेदानीं प्रचुरमात्रायां बोभूयते। ऐतिहासिकदृष्टचा च पुराणेषु तीर्थानां विशदं वर्णनं विद्यते, येन तत्तत्स्थानानां विस्तृतस्य भूगोलस्य सम्यग् ज्ञानं भवति।

वर्तमानकाले धर्मरक्षायाः, वर्णाश्रम-व्यवस्था-प्रचारस्य, भारतीयायाः संस्कृतेरुद्बोधस्य, भक्तेर्विकासस्य च यद्दर्शनं भवति, तस्य श्रेयः पुराणाना-मेव अस्ति। पुराणैरेव भारतीयादर्श-जीवनस्य, भारतीयायाः सभ्यतायाः, विद्यायाः वैभवस्य, भारतीयानां ज्ञानगरिम्णः, उत्कर्षस्य च वास्तविकं ज्ञानं भवति। पुराणानि च बद्धानां मुमुक्षूणां जीवन्मुक्तानाञ्च मानवानां सन्मार्ग-प्रदर्शकानि सन्ति।

संस्कृतसाहित्ये पुराणानां स्थानं महदुन्नतमस्ति। यतो वेदानन्तरं सर्वमान्यानि सर्वप्राचीननि च पुराणान्येव सन्ति। सृष्टचादौ ब्रह्माणमुत्पाद्य परमेश्वरः प्रथमं वेदज्ञानमेव तस्मै उपदिशति। ततश्च भगवतो वेदज्ञानमुपलभ्य सर्वलोकपितामहेन ब्रह्मणा विविध-शास्त्र-स्मरण-प्रसङ्गे सर्वप्रथमं पुराणान्येव स्मृतानि। यथा चोक्तं मत्स्यपुराणे—

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥"

अतः वेदवत्पुराणान्यपि नित्यान्यपौरुषेयाणि च सिध्यन्ति। अतएव पूज्यपादैः श्रीशङ्कराचार्यमहोदयैः बृहदारण्यकभाष्ये स्पष्टमुक्तम्—**"निःश्वसितमिव निःश्वसितं यथा अप्रयत्नेनैव पुरुषनिःश्वासो भवति एवं पुराणम्।"** महर्षिणा पतञ्जलिनाऽपि महाभाष्ये निगदितम्—**"वाकोवाक्यमितिहासः पुराणम्"** पुराणेषु यावत्सुगमं चतुर्वर्गस्य सिद्धेः साधनमुपलभ्यते न तावदन्यत्र क्वचन लभ्यते। पुराणानि सर्वश्रेणिमनुष्येभ्यः तदधिकारानुसारं कर्म कर्तुं सन्मार्ग-साधनस्योपायं प्रदर्शयन्ति। अभ्युदयस्य निःश्रेयसस्य च सिद्धये जीवः कथमग्रेसरो भवितुमर्हतीत्यस्य विषयस्य पुराणेषु विशदं विवेचनं विद्यते। पुराणेषु ज्ञान-विज्ञान-कर्म-वैराग्य - भक्ति-विश्वास-यज्ञ-दान-तपः-यम-नियम-संयम-सेवा-दया-दाक्षिण्य-वर्णाश्रमधर्म-पुरुषधर्म-नारीधर्म-सदाचारावतारादीनां कल्याणकारिणः सदुपदेशाः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरसया सरलया सुरुचिपूर्णयोपादेयया च भाषया प्रतिपादिताः सन्ति । एव पुराणानां महत्त्वं प्रतिपादयतोक्तम्—

"इतिहासपुराणानि पञ्चमो वेद उच्यते ।"

(अष्टादशपुराणपरिचय)

७६. पुराणं पञ्चलक्षणम्

पुराणानि विश्व-कल्याण-कारिण्याः भारतीय संस्कृतेर्मूलस्रोतसां वेदानां भाष्यभूतानि सन्तीति भारतीय-संस्कृतेः अनुशीलनार्थं पुराणानां पारायणं परमावश्यकमिति । वेदेषु यद्भारतीयाचार-विचाराणां स्वरूपं संक्षेपत उपलभ्यते, तत्पुराणेषु कथेतिहासद्वारातिविस्तृतम् उपलभ्यते । पुराणानां भाषा प्रसादगुण-गुम्फिता अतिमञ्जुला भावमयी च विद्यते । 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' इत्युक्त्वा पञ्चलक्षणलक्षितं पुराणमुच्यते । कानि च पञ्च लक्षणानि ?

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

इति पुराण-पञ्च-लक्षणानि प्रोक्तानि । सर्वेषु पुराणेष्वस्य पञ्चलक्षणस्य न्यूनाधिकरूपेण समावेशोऽस्ति । एषां पञ्चानां विषयाणां मध्ये कस्मिंश्चित्पुराणे कस्यचिद् एदेकस्याधिक्यं वर्तते तु कुत्रचित् कस्यचिद् अपरस्य अधिक्यम् अन्यत्र च तस्य संक्षेपत्वं वर्तते । पुराणलक्षणानुसारं पुराणेषु सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरितानाम् एषां पञ्चानां मुख्यतया वर्णनं विद्यते ।

(१) तेषु पञ्चविध-पुराण-लक्षणेषु पुनः कः सर्गः ? इति जिज्ञासायां श्रीमद्भागवते प्रोक्तम्—

"अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥"

साम्यावस्थापन्नस्य त्रिगुणात्मकस्य प्रधानतत्त्वस्य प्रकृतेः गुणक्षोभान्महत्तत्वं ततोऽहङ्कारः तत एकादशेन्द्रिय-पञ्चतन्मात्रा-पञ्चभूतानां सम्भवः सर्ग उच्यते ।

(२) यथा वर्षर्तौ पृथिव्याम् अज्ञातरूपेण स्थितानि बीजानि बहुविधलता-गुल्मतृणादिरूपेण स्वयं प्रादुर्भवन्ति, तथैव वर्तमानसृष्टेः पूर्वसृष्टौ समुत्पन्नानां जीवानाम् अवशिष्ट-वासनामयैः संस्कारैः पुनः सृष्टि-रचना-समयेऽनेके पदार्थाः तद्-भोक्तारो जीवाश्च समुत्पद्यन्ते । यथा चोक्तं श्रीमद्भागवते—

"पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम् ।।"

(३) ब्रह्मणः सकाशादुत्पन्नानां राज्ञां भूत-भविष्य-वर्तमान-कुल-परम्परा 'वंश' इत्युच्यते । यथा चोक्तं श्रीमद्भागवतपुराणे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।"

पुराणानि हिन्दूजातेरितिहासस्य मूलस्रोतांसि सन्ति । यद्यपि रामायणे महाभारते च प्रधानतयेतिहासस्यैव वर्णनं विद्यते, तथापि पुराणेष्वितिहासस्य विवेचनं सर्वोपकारक-मति-सुगमतया कृतमस्तीति बहवः समालोचकाः सोल्लासं समर्थयन्ति । अतिप्राचीनतमेयं हिन्दुजातिः सृष्टिकालादारभ्य अद्य यावत् स्वस्वरूपं सम्यक् संरक्षन्ती तथैव तिष्ठति । बहुभिराक्रमणैरपि अस्या मूलं न नष्टम् । यत्रान्यासां जातीनां वंशस्येतिहासो न सन्तोषजनकः, तत्र हिन्दुजातेरितिहासस्य वर्णनमादिकालादेव व्यवस्थितं मिलति । हिन्दुजातौ सूर्यवंश-चन्द्रवंश-भृगुवंश-वसिष्ठवंश-गौतमवंश-कश्यपवंशादयोऽनेके वंशाः सन्ति । तेषां सुव्यवस्थिता वंशपरम्परा-पुराणेष्वेवोपलभ्यते ।

(४) मनोः मनुपुत्राणां देवानामिन्द्रस्य महर्षीणामंशावताराणाञ्च घटनाया उल्लेखो मन्वन्तरमुच्यते । यथाह श्रीमद्भागवते—

"मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥"

यदि मन्वन्तरज्ञानं न स्यात्तर्हि भारतीयानामितिहासे महती अव्यवस्था समुपतिष्ठेत् । स्वयम्भुमनुसमये के ऋषयः के च राजान आसन् ? स्वारोचिषस्य मनोः के के सहायकाः आसन् ? उत्तमस्य मनोः काले कस्य पुराणस्य प्राधान्यमासीत् ? रैवतकमनुकाले कीदृशी व्यवस्था आसीत् ? इत्यादिप्रश्नानां यथार्थमुत्तरं पुराणैर्विना को दातुं शक्नुयात् ? मन्वन्तरज्ञानमनन्तरा कस्यापि महर्षेः राज्ञो वा कालस्य कथं यथार्थज्ञानं स्यात् ? एकस्मिन्कल्पे चतुर्दशमनवो भवन्ति, केन मनुना का स्मृतिः रचिता ? इत्यादिज्ञानं मन्वन्तरं विना न भवितुमर्हति ।

(५) विशिष्टवंशेषु समुत्पन्नानां विशिष्टानां पुरुषाणां चरित्रवर्णनं वंशानुचरितमुच्यते । यथा चोक्तं श्रीमद्भागवते—

वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ।"

अत्र च मृत्युलोक-प्रभवाणां पुण्यकर्मशालिनाम् ऋषीणां धर्मरक्षण-तत्पराणां राज्ञां च वंशजा वर्ण्यन्ते, सृष्टिश्रृङ्खलायाः सदाचारादि-विभागानाञ्च विस्तृत-वृत्तान्तमुपलभ्यते । मनुष्याणां समक्षे यदि घोरातिघोरा विपदुपतिष्ठते, तदा महान्तोऽपि धर्मविदः किंकर्त्तव्यविमूढाः भवन्ति, तथा च चेतसि बहुविधाः विचारा उत्पद्यन्ते । एवंविधविषमपरिस्थितौ स्वपूर्वजानां चरित्राणि स्मृत्वा पतनादात्मनो रक्षणाय वंशानुचरितस्य समावेशो वर्तते पुराणेषु ।

"पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम् ।"

(अष्टादशपुराणपरिचय)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७७. उपमा कालिदासस्य

शब्दार्थमय-शरीर-शोभिनी सहृदय-हृदय-राजिनी मधुररस-भाविनी भामिनीव कविताकामिनी रम्यालङ्कार-विन्यासं विना सामाजिक-चेतोहारिणी न जायत इति कृत्वा सर्वैरेव कविवरैः विविधालङ्कार-निवेशेन भूषिता सा । अलङ्कारगणेषु तेषु 'उपमैव' सर्वालङ्कार-वेश-विन्यासेन चतुरनटीव मोहयति सामाजिक-मनांसि, रञ्जयति च प्राच्यानां नवीनानाञ्च आचार्यवर्याणाम् आलोचकानां चेतांसि ।

कविकुलगुरुणा भगवत्या सरस्वत्या विलासेन श्रीकालिदासेन सर्वालङ्कार-जीवनवृत्तौ "उपमायां" स्वीयं परमं प्रावीण्यं प्रकटितम् । यद्यपि सर्वेष्वेव अलङ्कारेषु शब्दार्थनिष्ठेषु कालिदासेन स्वप्रातिभ-विलासं प्रमाणितं सर्वैरेव प्रसिद्धैरलङ्कारैः विभूषिता स्वीय-कविता-कामिनी, तदपि सकल-सुमन-समृद्धि विदधतोऽपि ऋतुराजस्य वसन्तस्य सहकार-प्रसूनपटल इव कविराजस्य उपमाविन्यासे विशेषः पक्षपातः सुस्पष्टम् एव प्रतीयते ।

रघुवंशस्य समारम्भे जगतो मातृपितृरूपयोः पार्वती-शंकरयोः वागर्थद्वन्द्वेन सह सादृश्य-समुपास्थापनं सर्वथा अतुलनीयं विद्वन्नमनीयं कलित-कमनीयं च विभ्राजते—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

नन्दिनी-सेवा-संसक्तेन भूपति-दिलीपेन पुरस्कृता प्रथित-सुलक्षणया सुदक्षिणया प्रत्युद्‍गता वशिष्ठाश्रम-नन्दिनी नन्दिनी दिवस-निशा-माध्यस्थ्यम् अवलम्बमाना साक्षात्सन्ध्येव शोभते—

"पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्‍गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥"

भगवन्तं शशाङ्क-शेखरम् अभिलषन्ती यौवनेऽपि तपस्यन्ती वयोवृद्ध-वहनीयं वल्कलं वहन्ती तपश्चरणाद् अपर्णेति नाम धारयन्ती गिरिनन्दिनी वटुवेषधारिणा शिवेन वर्ण्यमाना प्रकटयत्येव किमपि रामणीयकम्—

किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥

अभिज्ञानशाकुन्तलन्तु "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" (+) इति दिशानुसारं सर्वश्रेष्ठमेव नाटकं वर्तते । एतन्नायिकायाः पवित्र-चारित्राया

(+) माघस्य शिशुपालवधे चतुर्थसर्गे सप्तदशः श्लोकः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वनवास-वशाद् अनधिगत-मारविकरायाः शकुन्तलाया अनघं रूपम् उपमान-परम्परया प्रोद्भासितं भासते भव्य-भावना-भासितान्तःकरणेष्वित्थम्—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥"

एतादृशी स्वभाव-रमणीयानां कमनीयानां प्राकृतिकानाम् उपमानानां परम्परा दुर्लभैव वर्तते । न केवलं प्राकृतिकानां लौकिकानामेव पदार्थानाम्, अपितु स्वीय-शास्त्रीय-ज्ञानं व्यञ्जयता रसास्वादं निर्बाधं ददता तेन शास्त्रीयोपमानामपि अतीव-मञ्जुला सृष्टिः कृता । यथा रघुवंशे बालिवधानन्तरं कपिराज्ये सुग्रीवाधिपत्यस्य हन्धातोर्वधादेशस्य औपम्यं समादिशता प्रकटिता स्वीया व्याकृति-विद्वत्ता—

"स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकांक्षिते ।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥"

एवमेव वशिष्ठाश्रमम् उपगच्छतोः दिलीप-सुदक्षिणयोश्चित्रा-चन्द्रमसोः साम्यं साक्षादिव समागतं तद्द्वन्द्वं ज्योतिःशास्त्रज्ञानेन सह दर्शयति—

"काप्यमिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥"

कालिदासस्य प्रसिद्धासु उपमासु निम्नांङ्कितोपमा तु प्रसिद्धतमा, यद्वशादेव महाकवेरस्य "दीपशिखे" त्युपनाम घण्टामाघवद् समजनि—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

इत्थं पर्यालोचनेन प्रतिभाति यद् विश्ववाङ्मयेऽपि कालिदासवन्न कस्यापि कविवरस्य उपमालङ्कृति-निवेशे निपुणता निभाल्यतेऽतो युक्तैवेयं जनश्रुतिर्यद्—

"उपमा कालिदासस्य"

७८. भारवेरर्थगौरवम्

महाकवेर्भारवेः विषये तदीयां विशिष्टां विशेषतां वर्णयन्ती **"भारवेरर्थ-गौरवम्"** इतिसूक्तिः कालिदासस्योपमेव अर्थगाम्भीर्येऽस्य महत्त्वं प्रकाशयति । स्वीय-कीर्ति-कलेवरे किरातार्जुनीय-महाकाव्ये द्वितीयसर्गे गूढ-राजनीति-वर्णन-प्रसंगे युधिष्ठिर-मुखेन भीमसेनस्य प्रशंसां प्रकटयता कविना स्वीया मान्या काव्यपरि-भाषापि प्रतिपादिता—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥"

मन्ये परिभाषाम् इमामेव हृदयङ्गमां विधाय कविना विरचितं किराता-र्जुनीय-महाकाव्यम् । यतोहि घटे समुद्रस्थितिरिव स्वल्पपरिमाणैरेव शब्दैः अनेन महताम् अर्थानां प्रकटनं विहितम् । अतएव किरातस्य प्रथमसर्गत्रयं पाषाणत्रयमिति विपश्चिद्वर्गे प्रसिद्धिं भजते । टीकाकार-मूर्धन्येन सकल-शास्त्र-विशारदेन श्रीमल्लि-नाथेनापि तद्विवरणारम्भे **"नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेरिति"** प्रतिपादयता अयमेवार्थः पुष्टीकृतः । यथा रूक्षप्राये कठिनतमे नारिकेलफले परममधुरं स्वादुसलिलं संराजते, तथैव शब्द-काठिन्य-परेऽपि भारविग्रन्थे रसप्रवाहो विराजते ।

अल्पाक्षरेषु वहुलार्थस्य सन्निवेशरूपम् अर्थगौरवं परिणामे सुखसन्दोहमेव सूत इति हृदि विधाय गौरवपूर्णां निजकवितां परिणाम-सुखदाम् इत्थं स्तौति स्वयं भारविः—

"परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम् ।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ॥"

वाल्मीकि-व्यास-कालिदासादिभिः प्रवाहिता सरस्वती स्वाभाविकीं सुषमां धारयन्ती दृश्यते । परन्तु कविवरेण श्रीभारविना पाँडित्यप्रवणया विविधा-लङ्कृति-चमत्कृति-चमत्कृतया शैल्या कृत्रिम-निर्झरिणीव मनोहारिणी तदधि-कारिजनगम्या सा विहितेति विदन्त्येव विज्ञवराः । शब्द-चमत्कार-प्रताने वह्वीभिः विधाभिः कलाकौशल-सन्दोहं प्रकटयतोऽस्य महाकवेः एकाक्षरेणैव श्लोकनिर्मिति-रद्वितीयैव प्रतिभाति । इतः पूर्वं केनापि कविना नैतादृशी कुशलता कलिता—

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नोनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥"

एवमेव यमकादि-विन्यास-वैशिष्ट्यमपि अद्वितीयमेव । सहसा क्रियासम्पादनं सकलापदां निदानमिति प्रतिपादयन् भारविरचितः श्लोकोऽयं परां प्रख्याति-मालम्वते—

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥"

"शठे शाठ्यं समाचरेत्" इति नीतिरेषा समेषामेव राजनीति-नदीष्णानां विदुषां परमाभीष्टा वर्तते। एतामेव नीतिं द्रौपदीमुखेनेत्थं वर्णयति महाकविः साहित्य-सुषमया सार्धम्—

"व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥

केवलं शव्द-विन्यास-कौशलमेव भारवेर्भासत इति न मन्तव्यं किन्तु व्यर्थः शव्दाडम्वरो हेय एव । यतः पिष्ट-पेषणवद् अस्मिन् पुनरुक्त्यादि-दोष-कलङ्क-पङ्क-कलुषिते पल्वले मराल-मानसमिव सहृदय-मानसं न रमतेऽसौ विद्यतेऽभिप्रायः कविशिरोमणेरस्य । अपि च पञ्चमसर्गीयं पद्यमिदं कामपि रमणीयतां धरत्येव,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

येन मुग्धैः रसिक-शिरोमणिभिरस्य महाकवेः आतपत्रभारविः इति वैदुष्यसिद्धा प्रसिद्धा संज्ञा समुपायनीकृता—

"उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मा-
दुद्‌भूतः सरसिजसम्भवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता-
दाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥"

राजनीतिप्रवणे काव्येऽस्मिन् विविधालङ्‌कृतीनां काव्य-शास्त्रीय-मान्यतानां, वैदुष्यवैभवानां, काव्य-लक्षणाङ्ग-भूत-पर्वतादि-वर्णनानां समुचितः सन्निवेशः संधत्ते परमामेव शोभाम्। अनया रीत्या परम-प्रभावितं सहृदय-समाजं पण्डित-पटलञ्च विलोक्य श्रीमाघेन सर्वथानुकृतोऽयं महाकविः। तदनन्तरञ्च परिपाटीयं संस्कृत-साहित्य-क्षेत्रे प्रचलितैव। मध्ये मध्ये समागतानि मन्दाकिनी-मध्यम-गतानि तीर्थानीव सुभाषितानि हारलता-मध्य-सन्निवेशितानि रत्नानीव कामपि रम्यां सर्वथा-नवद्यां सुषमां विकासयन्ति। यथा—

"वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः"
"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः"
"गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः"

७९. माघे सन्ति त्रयो गुणाः

संस्कृतसाहित्ये पाडित्य-मय-शैल्याः चरमोत्कर्षो श्रीमाघे दृश्यते। कालिदासस्य उपमा-भागीरथी भारवेः अर्थगुरुता-यमुना दण्डिनो हर्षस्य वा पदलालिता सरस्वती तीर्थराज-सदृक्षे सकल-कला-दक्षे कविराजेऽत्र तीर्थराजे यथा विराजते। अतएव कवि-वैशिष्ट्य-बोधिनी सूक्तिरसौ **"माघे सन्ति त्रयो गुणाः"** इति गुणत्रयवास-भूमित्वमस्य बोधयति।

यद्यपि केषाञ्चिद् विदुषां मतमिदं यदेषा भणितिः कस्यापि माघभक्तस्योक्तिरेव। किन्तु वास्तवे विद्यतेऽत्रापि सत्यता। माघे कालिदासवद् उपमावैशिष्ट्यं माभूत्, किन्तु तस्य कमनीयोपमालङ्‌कृतिभिः अलङ्‌कृता कविताकामिनी विभ्राजत एव। एवमेव भारविवन्माघे केवलमात्रम् अर्थगौरवमेव मास्तु, परन्तु राजते तदीय-कवितासु कमनीयम् अर्थगौरवमपि। माघस्य शब्दशय्या तु प्रसिद्धतमा, नात्र मनागपि शब्दक्रम-विपर्ययो विधातुं शक्यते। अतएव मर्मज्ञस्य धर्मपालस्य भणितिरेषा सर्वथा सत्यतानुप्राणिता प्रकाशते संस्कृतवाङ्‌मये—

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वविध-शास्त्रीय-वैदुष्य-संभृतस्य माघस्य शब्द-शास्त्रीय-ज्ञानं सर्वान् कविवरान् अतिशेते । यतो माघापरपर्याये शिशुपालवधे नवसर्गातिक्रान्ते सति नवशब्दो न कोऽपि वर्तते । यथोक्तम्—

"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते ।"

भारवेः प्रवाहितां नवीनां कलामयीं काव्यसरणिं विकासयतानेनापि "शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते" इति स्वीया काव्यपरिभाषा प्रदत्ता । महाकवेर्माघस्यैका प्रशस्यतरा शास्त्रीयोपमा कीदृशी चमत्कारिणी सती राजते साहित्यक्षेत्रे—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥

स्वमहाकाव्यस्य समारम्भे नारदागमनप्रस्तावे विद्यमानोपमा मोहयन्तीव मनांसि । अग्रेऽपि स्थले स्थले समायाता उपमातती विलोक्यास्य महाकवेरुपमाप्रावीण्ये संशयलेशस्यापि नावकाशो विद्यते । माघस्योपमासु राजते श्लोकोऽयमद्वितीया यत्रस्थामुपमां समुपजीव्य माघस्य "घण्टामाघः" इत्यपरमभिधानं विद्वद्वर्गे प्रचलितमभूत्—

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहि-
मरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा-
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥

अर्थगौरवक्षेत्रे तु निखिलशास्त्रेषु माघप्रतिभाया वैशिष्ट्यम् अद्वितीयमेव । यथा राजनीति-सिद्धान्त-मूल-भूतानां सहायादीनां पञ्चानां बौद्धदर्शन-सर्वस्वानां रूपवेदनादिपञ्चानाञ्च अङ्गस्कन्धानां सादृश्यं समुपस्थायन् प्रसिद्धोऽयं श्लोकः—

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ॥

द्वितीयसर्गे श्रीकृष्णबलरामोद्धव-मन्त्रणापरे राजनयस्य पराकाष्ठा प्रतीयते । तत्र तु गरिमाणं धारयन्तो बहवः श्लोकाः संराजन्ते । यथा समस्तस्यैव गम्भीरतमस्य राजनयस्य सारसर्वस्वं दधत्पद्यमिदं "घटे सागर-संस्थितिः" इत्यस्य आभाणकस्य निदर्शनतां संधत्ते—

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः ।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्त्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ॥

दण्डिनो हर्षस्य वा पदलालित्यं प्रसिद्धमेव परन्तु माघस्यापि पदलालित्यं न न्यूनताम् आवहति । माघेन काव्यारम्भ एव स्वीया पदललितता प्रकटिता । किञ्च पदलालित्ये प्रसिद्धतरमेवेदं पद्यम्—

मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुमदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माघकवेर्पदलालित्यस्यैकमन्यदुदाहरणं दृश्यताम्——

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥

अत्रापि शब्दशय्यायां भासते भगवती भारती । अतएव च **"माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते"** इत्यादयो यथार्था सूक्तयः सञ्चरन्ति । इत्थं पर्यालोचनेन पदार्थोऽयं निश्चीयते यन्महाकविशेखरे श्रीमाघेऽलङ्कृति-निवेश-कुशलता, महतोऽर्थस्य स्वल्पशब्दैः प्रतिपादनक्षमता, समुचित-सादृश्य-शोभि-शब्द-सन्निवेश-विशिष्टता च विभासतेऽतएव यथार्थं वासौ सूक्तिः——

"माघे सन्ति त्रयो गुणाः"

८०. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

प्रदर्शित-वाग्देवता-विभूतिना श्रीभवभूतिना नाटकत्रयं निर्माय कविमण्डले स्वीयं विशिष्टं स्थानं विहितमिति विदन्त्येव सर्वे सुर-सरस्वती-समुपासका विद्वांसः । कालिदासादनन्तरं न केनापि कविना भवभूतिसदृशी वैदुषी प्रदर्शिता । मालतीमाधवम्-महावीरचरितम्-उत्तररामचरितमिति नाटकत्रयं वेदत्रयमिति ब्राह्मणो वदनाद् भवभूतिसदनाद् विनिर्गतम् । महाकविनामुना "एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा" इति प्राचीनां लक्षण-ग्रन्थकार-नीतिम् अनुसृत्य मालती-माधवे शृङ्गारो महावीरचरिते च वीरो रसः प्राधान्येनोपवर्णितः, किन्तु न केवलं शृङ्गार एव वीरो वा प्रधानताम् अङ्गीकर्तुम् अर्हतीति प्राचीन-सिद्धान्तोऽस्य हृदये प्रमाति । अत एव नवीनं सिद्धान्तं संस्थापयितुं स्वरचनया च तस्य याथार्थ्यं प्रदर्शयितुं कविना अनेन "उत्तररामचरितस्य" निर्मितिः विहिता । समवाप्ता च नवीने अस्मिन् प्रयासे अनेन सर्वथा साफल्यमिति सहृदय-हृदय-साक्षिकमेव ।

उत्तररामचरिते प्रथमाङ्क एव लोकप्रवादम् उपश्रुत्य लोकरञ्जनार्थं प्राणप्रियां वनसहचारिणीं सीतामपि परित्यक्तुं प्रतिज्ञावतो रामभद्रस्य निश्चयेन सहृदय-हृदयक्षेत्रे यस्य करुणबीजस्य वपनं भवति तदेव तृतीयाङ्के पुनर्जनस्थानं विलोकयतो रामस्य करुणविलापैः वासन्तिकी-वचन-विन्यासैः सीताया करुणभाषणैः देश-कालादि-सम्पत्त्या समङ्कुरितं पुष्पितं फलितञ्च विलोक्यते । कविराजस्यायं कथाविन्यासः कल्पनाया अनुपमो दृष्टान्त एव । यद्यपि संस्कृतसाहित्ये विविधेषु प्रकारेषु रामकथामन्दाकिनी विविधरूपैः प्रवहति, परन्तु नैषा कल्पना केनापि कविना प्रदर्शिता ।

एकतो पशुपक्षिवृक्षान् विलोक्य स्वविश्रम्भ-स्थानानि निरीक्ष्य भगवतो राम-भद्रस्य निरुद्धमपि कारुण्यं निर्बाधं प्रसरति । इतरतो द्वादशवर्षात्मिकां कालकलां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पतिपुत्रविरहेण निर्वाहयन्त्याः सीतायाः पुनः प्राणप्रियं नयनगोचरीकृत्य यथा-कथञ्चिन् निरुद्धापि करुणाकल्लोलिनी रामभद्रविलापैः प्रसरति । अपरतश्च सीता-परम-सख्या जनस्थान-वनदेवतया वासन्तिक्या रामभद्रं लोचनपथपथिकं कृत्वा सीताया वननिर्वासनकथां श्रुत्वा विह्वला सोपालम्भा सीतास्मरणात्मिका सरस्वती सम्यक्तया समुदेति । एवमस्यां त्रिवेण्यां स्नातं सहृदयहृदयं "रसो वै सः" "ब्रह्मास्वादसहोदरः" इति लक्षिते करुणरसे समधिगम्य वेद्यान्तरस्पर्श-शून्यतामेव अवलम्बते । रोमाञ्चादिसहितः पुनः पुर्नविरुद्धोऽपि बलाद् अविरलं प्रवहन् वाष्पप्रवाहो "**अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्**" इति तदुक्ति द्रढ़यति ।

"**अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्**
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणतं यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते ॥"

अस्मिन् श्लोके कविनामुना वासनाविरहिता या रतिः पूर्वोक्तरीत्या वर्णिता सैव करुणरसरूपेण परिणता सर्वानेव सहृदयान् स्वस्य पुनीते प्रवाहे परिप्लावयन्ती सर्वान् रसान् स्वानन्दोत्कर्षे अधरयन्ती दृश्यन्ते ।

सीतास्मरणजनिते शोकसागरे निमग्नस्य पुनः पुनः सीताकरस्पर्शेन धारित-जीवनालम्बस्य रामभद्रस्य स्वावस्थाप्रदर्शिका करुणोक्तिः निदर्शनीभूतेव वर्तते—

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा न तु भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं तु न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनुमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥

मध्ये मध्ये समुच्चारितानि सीतादेव्या वाक्यानि वस्तुतो वर्तन्ते तदनु-रूपाण्येव । स्वपुत्रकृतकं करिकलभकं पीडचमानं श्रुत्वा विरहावस्थां विस्मृत्य सहसैव विनिर्गतं "आर्यपुत्र ? परित्रायस्व परित्रायस्व" इत्यादीनि वाक्यानि तु प्रेम्णः पराकाष्ठां प्रदर्शयन्ति । यदा यदा वासन्तिकी सोपालम्भानि वाक्यानि रामभद्रं प्रति वदति, तदा तदा रामभद्रस्य स्वस्मृतिजनितं दुःखं संस्मृत्य तां निवारयन्ती सीता मूर्तिमती करुणा सविग्रहा कृपा वा प्रतिभाति । अत एवास्य विषये सूक्तिरेषा प्रसिद्धा वर्तते—'**कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते**' इति ।

कविना तु सर्वेषां रसानां करुणरसस्यैव रसराजत्वं स्वीकृत्य सर्वत्रा-विश्रान्तिरूपेण करुणरसस्य प्रवाहो निरुप्यते 'एक एव रसः, करुण एव सः, अन्ये च तद्विवर्तरूपाः' इति करुणरसस्यैव रमतां स्वीकृत्य सर्वेषु रसेषु तस्य प्राधान्यं स्वीक्रियते—

"**एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्,**
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ॥"

संस्कृतसाहित्येऽस्य महाकवेः प्रशंसापरा विविधाः सूक्तयः सञ्चरन्ति या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विविधप्रकारैरस्य कारुण्यमेव स्ववचोप्रसूनैः समर्चयन्त्य इव परिलक्ष्यन्ते । तत्रैको महाकविः भवभूतिवाचं शिखिरिसमुत्पन्नामेव मन्वन् तत्कारुण्ये सुताकृतकारुण्ये जनकस्य रोदनं समर्थयन् कथयति यत्—

"भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥"

८१. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

सहृदयहृदयं परमानन्दे निमज्जयन्ती कालिदास-माघ-श्रीहर्ष-पद्य-काव्यत्रयी त्रिपथगेव यथा संस्कृत-साहित्य-क्षेत्रे विराजते, तथैव गुणाढ्य-सुवन्धु-वाण-त्रयी गद्यमयी विभ्राजत इति विदन्त्येव सुरसरस्वती-सेवकाः सर्वे । त्रिपथगाया प्रवाहत्रय आकाशगङ्गेव अस्यां त्रय्यामपि गद्यप्राणस्य वाणस्य कृतिः सर्वभुवन-मोहिनी इत्यपि निर्विवादमेव ।

श्रीवाणस्य हर्षचरितम्-कादम्बरीति रचनाद्वयी कवि-शातकुम्भ-निकषे गद्ये विरचिता वर्तते । कश्चिदपि कविः स्वकल्पना-कौशलेन पद-विन्यास-वैशिष्टयेन रचनासौष्ठवेन च पद्यक्षेत्रे काव्यनिर्मितिं विधाय सहजतयैव प्रशंसां प्राप्नोति । विद्यमानापि तदशक्तिः पद्य-नियम-वशेन आच्छादनम् अवाप्नोति । किन्तु नियम-विरहित-रचना-वशात् स्वकौशलप्रदर्शने कस्यापि वाधकस्याभावाद् गद्यनिर्माणं कठिनमेव, अतएव च **"गद्यं कवीनां निकषं वदन्तीति"** प्राचीन-मार्मिक-विदुषां सूक्तिः संसरति । किन्तु वाणस्य तु तस्मिन्नपि गद्ये वर्तते सर्वातिशायिनी विशिष्टता । श्रीवाणभट्टेन स्वीय-प्राथमिक-रचनायां हर्षचरिताख्यायां कविकौशलस्य परिभाषैषा समुपन्यस्ता––

**"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ।"**

यदि इमामेव परिभाषाम् आश्रित्य विविध-कविकृतीनां पर्यालोचनं विधीयते, तर्हि पश्यन्तु भवन्तः केचित् कविकोविदाः कुत्रापि, अपरे कुत्रापि, इति रीत्या सर्वे तदैकदेशमात्र एव स्वीयां कुशलतां कल्पयन्ति । परन्तु बाणे तु सर्वा एव विशेषता एकत्रैव विराजमाना विलोचनपथे समायान्ति । सर्वप्रथमं कादम्बरी-विरचितं कथावस्तु सर्वथा अद्वितीयमेव, नहि जन्म-त्रय-प्राप्त-मनोरथं युगलमन्यत्र कुत्रापि दृश्यन्ते । मन्ये वाणभट्टेन निर्मितां नवीनामिमां रसपरम्परां निभाल्य नव्यैः साहित्यदर्पणादि-लक्षणग्रन्थकारैः करुण-विप्रलम्भाख्यस्य रसस्य मान्यता नव्यैव प्रतिपादिता ।

कादम्बरी-हर्षचरिताख्यायां रस-मन्दाकिन्यां मध्ये मध्ये समागतानि रस-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रवणानि हृद्यानि सर्वथानवद्यानि गद्यानि मनोमोहनान्येव । शब्द-शय्या-विकासिनी सुदृढ-बन्ध-कारिणी पाञ्चाली-रीतिस्तु राजतेऽत्र । बाणभट्टस्य मधुराणि श्लेषमय-प्रघट्टक-पराणि गद्यखण्डानि प्रसिद्धान्येव । बहुधा वर्णितेष्वपि प्रायः सर्वालङ्कारेषु श्लिष्टोपमा तु सर्वथा अद्वितीयैव । नहि बाण-रचना-मृगनाभेः अन्यत्र सौरभनिधेः अस्याः कस्तूरिकाया वसतिर्विलोक्यते । इत्थञ्च समष्टिरूपेणेत्थं वक्तुं पार्यते यत्कवीनामेव अत्रैकत्र विद्यमानं वैशिष्टयं विलोक्य श्रीबाणेन संकल्प्य प्रतिपादिता परिभाषैषा । स्वीयग्रन्थेषु च परिभाषाया अस्याः सर्वथानुपालनं विधाय सर्व-शेखरता स्वीया प्रमाणिता चम्पक-कुड्मल-कलिता निरन्तर-श्लेष-ललिता सुजाति-स्रज इव स्वीया कथा । अत एवानेन वर्णितमित्थम्—

"हरन्ति कं नोज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थै रुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥"

विश्ववाङ्मयेऽसाधारण-प्रतिभा-भासुरेण कवि-कोविद-मूर्धन्येन साहित्य-सर्वस्वेन गद्यप्राणेन श्रीबाणेन न किमपि क्षेत्रं परित्यक्तं यत् स्ववर्णना-कौशलेन न विभूषितम् । अनेन समेषामेव रसानां सम्यक्तया परिपाकं विदधता रसराजस्य शृङ्गारस्य संयोग-विप्रयोगेति-भेदद्वयस्य परम-मार्मिकं चित्रं समुपन्यस्तम् ।

जीवधारिणां प्राणिनां वर्णने न केवलं वनितावर्गस्यैव, परन्तु पुरुषाणां शूद्रकादीनामपि समुचितं वर्णनं कृतम् । यथा महाराजस्य तथैव तपोधनस्य यथा राजमहिष्यास्तथैव चाण्डाल-कन्याया अपि मूर्तिः साक्षादेव नयनगोचरेव प्रतिभाति। यथायं राजभवनानां तत्रत्यानां सर्वेषां वस्तूनाञ्च मनोमोहिनी छविम् उपस्थापयति, तथैव पवित्र-तपोधनानां तत्रत्यानां मृगादीनामपि रम्यां हृदयहारिणीं छटां प्रत्यक्षामेव तनुते ।

महाश्वेतादि-शृङ्गार-पेशलोक्तिभिः सह तदनिर्विशेषं नीति-नय-नदीष्णानां शुकनासादीनां समुपदेशमपि संश्रावयति । शूद्रकवर्णनम्, चाण्डाल-कन्या-वर्णनम्, पम्पा-वर्णनम्, शवर-सेनापति-वर्णनम्, उज्जयिनी-वर्णनम्, राजवर्णनम्, राजभवन-वर्णनम्, अच्छोद-वर्णनम् इत्यादीनि बहूनि तानि प्रसिद्धानि स्थलानि राजन्ते येषां लेशतोऽपि सादृश्यं न कुत्रापि विलोक्यते ।

अतः सर्वथा निश्चीयते तत्त्वमिदं यन्न किमपि तत्क्षेत्रं विद्यते यस्मिन् बाणेन प्रतिभया कुशलतया सञ्चरणं न कृतम् । तस्मादेव विपश्चिद्वर्गे संचरन्ती सूक्तिरसौ सर्वांशेन सत्यतामेव उपधारयन्ती संराजते यथार्थैव—

"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्"

++

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८२. नैषधं विद्वदौषधम्

इह वहुविध-साहित्य-छटा-विभ्राजिते साहित्य-जगति लोकोत्तर-प्रतिभा-सनाथितस्य कोविद-नमनीयस्य सरस्वत्याः हर्षोत्कर्षस्य श्रीहर्षस्य साम्यं वहन् न कोऽपि कोविदकविः कस्मिन्नपि साहित्ये दृष्टिपथमारोहति । तस्य प्रसिद्धा कृतिः "नैषधीयचरितम्" न केवलं महाकाव्यमेव, अपितु विविध-विषयाणां विश्वकोश इव विभाति । साङ्गस्य वेदस्य, निखिलानां दर्शनानां, पुराणानां, मन्त्र-तन्त्राणां, सामुद्रिक-शास्त्रस्य, शिल्पकलायाः, तुरग-रत्नादि-ज्ञानस्य, किम्वहुना समेषामेषां शास्त्राणाम् अपां रत्नाकर इव श्रीहर्षो निवासस्थलं विभ्राजते । अतएव एषां विशिष्टं विज्ञानं श्रीहर्षप्रणीते नैषधीयचरिते प्रतिविम्वितं प्रतिभासते ।

मन्ये नैषधीयचरितस्य दशमसर्गे कविसम्राजा अमुना स्वीयैव सर्वशास्त्रेषु संचरन्ती सरस्वती सरस्वतीमिषेण समुपवर्णिता । पण्डितंमन्यानां जनानाम् अभिमानभङ्गार्थं तेषां निर्वाधं रसास्वादस्य प्रतिरोधार्थं स्वीय-पाण्डित्य-प्रदर्शनार्थञ्च ग्रन्थेऽस्मिन् क्वचित् क्वचित् ग्रन्थीनां निवेशोऽपि व्यधायि । गुरुकृपया यासां श्लथीकरणेन सज्जनानामेव कृते रस-पीयूष-लहरी-समास्वादः सम्भवः । यथोक्तं तेनैव—

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु ।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखं व्यासज्जनं सज्जनः ॥

प्रौढ-पाण्डित्य-वशेन यदि परिपक्वता-हीन-वुद्धि-वैभवानां साधारणशेमुषीनामतएव वालमतीनां कृतेऽन्तःकरण-हरणम् अनेन न जायेत तर्हि नास्य कापि हानिर्यतः सुधियामेवात्र शास्त्रसम्मते काव्ये रसास्वादाधिकारं कविः कामयते—

"यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते ।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषाराधनरसैः ॥"

भगवत्या वागीश्वर्याः परमपावनस्य चिन्तामणि-मन्त्रस्य जपप्रसादात् समधिगत-वुद्धिवैभवस्य श्रीहर्षस्य काव्यौषधं सर्वथा विदुषाम् अहङ्कृति-रोगं शमयत्येव । चिन्तामणि-मन्त्र-चिन्तन-फले श्रीनैषधे चिन्तामणि-मन्त्र-स्वरूपं वहुव्याख्याव्याख्यातमपि सर्वथा दुर्वोधमेव । महाकवेरस्य पाण्डित्य-प्रदर्शनं, वाग्वैदग्ध्यं, भावाभिव्यक्तीकरणं, शब्दशय्या, वक्रोक्तिवैशारद्यं, शास्त्रीय-सिद्धान्त-प्रदर्शनं, सर्वथा अद्वितीयमेव, अतएव अयं सर्वानेव पूर्ववर्तिनः सहवर्त्तिनोऽनुवर्तिनश्च कवीन् अतिशेते । काव्य-शास्त्रीय-दिशा रसालङ्कृति-छन्दःशैलीषु वैदग्ध्यं वहतोऽस्य श्लेषदृष्ट्या त्रयोदशसर्गीया पञ्चनली सर्वथा अद्वितीयैव । अत्रैकस्य पञ्चार्थतापि दृश्यते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलङ्कृति-निचये भाव-विताने काव्य-कौशले छन्दोनिर्मितौ यस्याधिकारोऽसामान्यः तस्य श्रीहर्षस्य वैदुष्यन्तु विद्वद्वरेण्यानां समधिगम्यमेव । नहि तत्र साधारण-शेमुषीनां प्रवेशो भवितुमर्हति । श्रीहर्षेण विरचितं "अपवर्गे तृतीया" इति पाणिनि-सूत्र-सहकृतं चार्वाक-मत-वर्णनपरं पद्यमेकं निदर्शनीक्रियते—

"उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः ।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि ॥"

यद्यपि सर्वेष्वेव दर्शनेषु विशिष्टमस्य वैदुष्यं विभ्राजते तदपि अद्वैतसिद्धान्तेऽस्य मनो सविशेषं रमते । तथा च दुःखाभावरूपां मुक्तिं मन्वतो नैयायिकाग्रेसरस्य गोतमस्य गोतमता मुक्तेश्च शैलसमता सम्यक्तयेत्थं प्रदर्शिता—

"मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।
गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः ॥"

तथा च दमयन्ती-नलयोः सुधा-मय-कमनीय-कथा-पावितं सद्गुण-गणालङ्कृतं सुललित-पदोपशोभितं श्रुतिमधुरं सुखदं नैषधीयं काव्यं भवाब्धि-मध्य-निपतितानां भव-व्याधि-प्रपीडितानां विपश्चितां कृते चौषधमेवास्ति । तस्मादेव विपश्चिन्मण्डली **"कर्कोटस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च । ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्"** इत्युक्तिदिशा पुण्यश्लोकस्य नलस्य आनन्दमयं सुधातिशायि पुण्य-चरितामृतं निपीय भव-व्याधितः स्वानुन्मुच्य परमामोदम् आवहति । अत एवाहर्निशमाश्रयणीयं काव्यौषधमिदं विद्वद्भिरिति ।

एवमेव शास्त्रीय-सिद्धान्त-मणि-खचितस्य साहित्य-छटा-राजितस्य सुवर्णशोभितस्य नैषधीयचरितस्य गुरुकृपैकगभ्यत्वात्, पण्डितम्मन्यानां कृते महौषधतुल्यत्वात् सर्वत्र प्रसिद्धा सविशेषं सिद्धा रमणीयैषा सूक्तिर्यथार्थैव—

"नैषधं विद्वदौषधम्"

✦✦

८३. आदिकविर्वाल्मीकिः

इह हि विविध-भाषा-प्रवाह-पूरिते नाना-कमनीय-कवि-कोकिल-कूजिते कमनीय-कविता-कौशल-पूजिते जगतीतले परम-कारुणिकस्य मानवेषु सर्वप्रथमं छन्दसां प्रणेतुः महर्षेर्वाल्मीकेः महिमा कस्याविदितो वर्तते ? कं वा जनं न पुनाति पूतपूतं मधुरमधुरं रम्यरमणीयं कमनीयं च तस्य पुनीतचरितम् ? अतएव कविकुलगुरुणा कालिदासेन रघुवंशे सादरं समनुध्यात इत्थमादिकविः—

"तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः ।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ॥"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहृदयानाम् आनन्दवर्धनेन श्रीमदाचार्यानन्दवर्धनेनापि ध्वन्यालोके काव्यात्मतया प्रशंसितो निदर्शतया च प्रस्तुतीकृतो वाल्मीकेरेष कमनीयोऽर्थः—

"काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।"

भगवतो रामचन्द्रस्य समकालीनोऽयं महाकविः मुनिपुङ्गवो रामायणे "प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दनः" इति स्वीयं परिचयं ददाति । अयमेवार्थोऽध्यात्मरामायणेऽपि वर्णितः । स्कन्दपुराणानुसारं तस्येतिवृत्तम् इत्थं प्रतिभाति यद् प्राक्तने जन्मनि स्तम्भनामा ब्राह्मणोऽयमासीत्, तदनन्तरे जन्मनि व्याधो बभूव, तत्रैव श्रीशंखमुनेः सङ्गाद् राम-नाम-जपात् जन्मान्तरे अयम् अग्निशर्मा रत्नाकरनामा वा विप्रो बभूव । प्राक्तन-कर्म-वासना-वशाद् व्याधाचरणं विदधन् सप्तर्षि-कृत-विपरीत-राम-नाम-जप-परायणो जातः । तपःकाले वल्मीकावृतदेहत्वाद् वाल्मीकिरिति संज्ञां लेभे । इयमेव कथा वङ्गीये कृत्तिवासाख्ये रामायणेऽध्यात्म्यरामायणे, भविष्यपुराणे, आनन्दरामायणे च किञ्चिद् भेदेन वर्णिता विराजते । अतोऽस्य निम्नजातितां प्रख्यापयन्तो जना इतिहासानभिज्ञा एव ।

महर्षेर्वाल्मीकेः आश्रमपदं तमसायाः तट आसीत् । एकदा असौ महर्षिः माध्यह्निकं सवनम् अनुष्ठातुं तमसातटं जगाम । तत्र च सुखं विहरतः क्रौञ्चमिथुनादेकं व्याधेन निहतं दृष्ट्वा महर्षेः हृदयं करुण-करुणया अतितरां द्रुतं जातम् । तदा सहसैव तस्य वदनान्निर्गता सरसा समधुरा च छन्दोमयी वाणी—

"मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।"

आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः । तत्र भगवता चतुर्मुखेन परमेष्ठिना अनुगृहीतः स महर्षिः परमपावनं विश्वविख्यातं रामायणं नाम महाकाव्यमादिकाव्यं प्रणिनाय । एवं च रामायणमादिकाव्यं वाल्मीकिश्च आदिकविरिति लोके विश्रुतोऽभवत् । रामायणे च प्रायः सर्वेषामेव रसानां वर्णनं व्यधायि । यथोक्तम्—

"रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ।।"

किन्तु प्रथमात्पद्यादेव प्रतीयमानं करुणरसमेव प्रतिपादयता अनेन स्वीया काव्यसृष्टिः विहितेति **"रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूचितः···"** इत्यादिना प्रबन्धेन श्रीमदानन्दवर्धनाचार्येणेदं प्रतिपादितमेव ।

बलादाकृष्टेन अलङ्कार-भारेण नात्र दूषिता कविता कामिनी, किन्तु स्वाभाविकेन अलङ्कार-विन्यासेन शोभमान-सौन्दर्या सा हठात् आवर्जयत्येव सहृदय-हृदयानिति । शरद्वर्णनं वर्षावर्णन नदीवर्णनं शैलवर्णनमित्यादीनि काव्यापेक्षितानि तत्त्वानि सम्यक्तया समुपवर्णितानि दृश्यन्ते ।

कविवरस्यास्य रामकथां समुपजीव्य अनेकैः कविभिः काव्य-नाटक-चम्पूप्रभृति-निर्माणं विधाय पाविता स्वीया काव्यकला सुरसरस्वती प्रान्तीयभाषा च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न केवलं भारतीयैः एव विद्वद्भिः, अपितु विदेशवासिभिरपि कविभिः अस्यानुकृतिः विहितेति जानन्त्येव जनाः । तथा चेहलोके ब्रह्मास्वाद-सहोदरस्य रसप्रवाहस्य सङ्गमेन सह भगवतो रामस्य कथाश्रवणेन पुण्यसम्पत्या परपद-प्राप्ति-कामस्य वाल्मीकेः सिंहता समुचितैव । यथोक्तम्--

"वाल्मीकेः कविसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परं पदम् ॥"

जीवनोपयोगिनी सर्वानुकरणीया आदर्शशिक्षा अत्र बहुशो वर्णिता हरत्येव पाठकजनानां चेतांसि । मातृपितृसेवा, पतिभक्तिः, पतिव्रताधर्मः, पतिधर्मः, सेवक-धर्मः, भ्रातृधर्मः, किम्बहुना सर्वैव भारतीया संस्कृतिः सभ्यता च रामायणे प्रतिपदं प्रोता प्रतीयते ।

रामायणे प्रतिपादितं भौगोलिक-वर्णनं कवेरस्य बहुज्ञतां प्रकटयति । सप्तकाण्डात्मके काव्येऽस्मिन् सुन्दरकाण्डस्य सौषम्यन्तु सर्वथा हृद्यं निरवद्यमेव विभ्राजते--

"सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरः कपिः ।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ॥"

विरोधाभासालङ्कारालङ्कृता रामायण-प्रशंसापरा सूक्तिरसौ प्रसिद्धैव--

"सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥"

++

८४. व्यासः

प्रथित-प्रतिभा-विकासः, काव्य-कौशल-ह्रासः, वर्णितेतिहासः, विश्व-वन्दित-भासो भगवान् व्यासः कस्य श्रवणातिथितां न चक्रे । श्रीकृष्णद्वैपायनः, पाराशर्यः, वादरायणः, इतीमानि वर्तन्तेऽस्य नामान्तराणि । महाभारत-युद्धात् किञ्चित्पूर्व-कालीनेन सत्यवती-नन्दनेन पराशरसूनुना विभूषितेयं भारतीया वसुन्धरा ।

विश्वस्मिन् विश्वे न कोऽपि कविः वर्तते यस्य साहित्यं व्यास-साहित्यवत् प्राञ्जलं मधुरं विस्तृतञ्च वर्तते । अनेन अष्टादशपुराणानां महाभारतस्य च निर्माणं व्यधायि । महाभारत-सदृशं विपुल-कलेवरं राजनीतिमयं धर्म-परायणं ग्रन्थं विलोक्य श्रद्धया समेषामेव शिरांसि नतिम् आकलयन्ति । यद्यपि केचिज्जना एतावतां ग्रन्थानां निर्मातारम् एकमेव न विश्वसन्ति, तदपि भारतीय-परम्परा-नुसारम् एषां ग्रन्थानां ब्रह्मसूत्रस्य च रचयिता भगवतो ज्ञानावतारः श्रीव्यास एवास्ते ।

महर्षिणा आदिकविना या काव्यधारा प्रवाहिता तस्या रसेन सर्वेषामेव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जनानां मनोविनोदार्थं, धर्मोपदेशार्थं, सदाचरण-निरूपणार्थं, राजनय-वर्णनार्थं, परमपद-प्राप्त्यर्थञ्च श्रीमता व्यासेन श्लाघ्योऽयं प्रयत्नो विहितः। पुरा समस्तैवं भगवती श्रुतिः एकाकारैव आसीत्। कालक्रमेण च जाते जनानां वुद्धिह्रासे तदपेक्षया चतुर्धा विभागो विधाय सुमन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैलाख्येभ्यः शिष्येभ्यः तदुपदेशोऽनेन विहितः। अतएव च वेदविभागकरणाद् 'वेदव्यास' इति संज्ञा भगवतो द्वैपायनस्य लोके प्रचलिता। यथोक्तम्—

"वेदं विव्यास यस्मात्तु तस्माद् व्यास इति स्मृतः।"

अनन्तरञ्च परस्परविभिन्नवद् आभासमानासु श्रुतिषु मुह्यतां जनानां कृते परतत्त्वबोधार्थं ब्रह्मसूत्रं निर्मित्तम्। वेदान्तमार्गे ब्रह्मसूत्रस्य माहात्म्यं लौकिक-ग्रन्थेषु सर्वश्रेष्ठमेव विराजते। अत्र व्याख्याकरणादेव श्रीशङ्करादिभिः आचार्यपदवी समवाप्ता। शूद्र-स्त्री-द्विज-वन्धूनां श्रुतिगोचरा भगवती श्रुतिः न भवतीति करुणा-वरुणालयेन अमुना समेषामेव जनानां समुद्धारार्थं भारतप्रणयनं कृतम्। यथोक्तम्-

स्त्री-शूद्र-द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।

तदनन्तरं विविध-मनोरम-कथा-प्रसङ्ग-पावितानि विविध-धर्मोपदेश-राजितानि प्राच्येति-हास-भ्राजितानि साहित्य-छटा-शोभितानि पुराणानि प्रथितानि। अन्ते च पुराण-तिलकस्य श्रीमद्भागवतस्य रचनया धर्मानुसारिणां मनस्तोषं सपरितोषं कृत्वा शान्तिः अधिगता। सर्वेष्वेव ग्रन्थेषु महाभारतमेव कलेवरेण उपदेशेन वर्णनेन च श्रेष्ठं ज्येष्ठं प्रेष्ठं चास्ति। यथा चोक्तम्—

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ?
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥"

एभिरेव कारणैः महाभारतश्रवणस्य पुण्यप्रदता प्रतिपादिता। महाभारते न केवलं युद्धस्य किन्तु राजनीतेरपि भव्यं वर्णनम् अनुपममेव। अनुशासनपर्वणि समग्रैव भारतीया राजनीतिः प्रतिविम्वता वर्तते। मध्ये मध्ये समागतं साहित्य-दिशा सर्वेक्षणमपि मनोरञ्जयति। यथा च चन्द्रवर्णनं निदर्शनीक्रियते—

"ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना।
निस्तन्द्रेण हि चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता॥"

महाभारतान्तर्गता भगवद्गीता तु सर्वानिव प्रवन्धान् स्वप्रभया अतिशेते। यस्या गणनोपनिषत्सु विधीयते। यस्याः समक्षं सर्वेषामेव शास्त्राणां गतार्थता गण्यते—

"गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिर्गता॥"

पुराणप्रचये श्रीमद्भागवतं सर्वविध-वैशिष्ट्येन पुराणतिलकमिति स्वोपाधि चरितार्थयद् दृक्गोचरताम् उपयाति। विविध-वेदान्त-सिद्धान्तानां श्रीकृष्णचन्द्र-लीला-सुधाया रूपकमयाख्यानानां विविधच्छन्दसां श्रेष्ठ-संवादानाम् अलङ्कृतीनां ध्वनीनां चित्रकाव्यानां सुषमा च अत्रैकीभूतेव राजते। दशमस्कन्धे मधुर-मधुराणां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लीलानाम् उत्तरार्धे च वीरतामयानां राजनीतिनयानां 'श्रीकृष्ण-चरितानां पावनी मन्दाकिनी भव-मरुस्थल-भ्रान्तानां जनानां त्रिविध-सन्तापं हरन्ती पुण्यप्रचयं ददन्ती विराजते ।

अतएव गीता-सुधा-वर्षिणा आनन्दकन्देन भगवता श्रीमुकुन्देनापि "मुनीनामप्यहं व्यासः" इतिरीत्या श्रीव्यासस्य स्वस्वरूपता सुस्पष्टं प्रतिपादिता संशोभते । वैदिकसिद्धान्ते सर्वश्रेष्ठानां ब्रह्म-विष्णु-शिवेति-देव-ज्येष्ठानां गुणगणैः विराजितस्य भगवतो बादरायणस्य त्रिदेवात्मता-प्रतिपादकं पद्यमिदं प्रसिद्धमेव—

"अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अभाललोचनो शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥"

++

८५. कालिदासः

भगवत्याः सरस्वत्या हासेन कविता-कामिन्या विलासेन कवि-कला-कौशलस्य लास्येन विहित-संस्कृत-विकासेन विश्वविख्यात-वैदुष्य-प्रकाशेन श्रीकालिदासेन परिचयहीनः को नाम साहित्यप्रणयी जनो भवेत् । विश्वस्मिन् विश्वे न कोऽपि स प्रान्तो देशो वा विद्यते यत्रत्या जना कालिदासं न विदन्ति ।

सर्वविध-वसुन्धरा भारतवसुन्धरा कस्मिन् स्वीयोद्देशे कस्मिन् वत्सरे वा कालिदासं प्रसूय स्वान्वयं सार्थकं कृतवतीति विषये मौनमेवालम्बते सर्वथेतिवृत्तम् । केचिद् बङ्गदेशीयम् अपरे काश्मीरालङ्कारम्, इतरे मालवदेश-विभूषणमेव कालिदासं जगदुः। परन्तु सर्वत्र प्रायः उज्जयिनीवर्णनेन महाकालाधिष्ठिता उज्जयिनीनगर्येव तस्य निवासभूमिरिति निश्चीयते ।

सर्वविध-प्रतिभा-सनाथितेन कविना अनेन "रघुवंश-कुमारसम्भवे महाकाव्ये; ऋतुसंहार-मेघदूते खण्डकाव्ये; मालविकाग्निमित्रम्-विक्रमोर्वशीयम्-अभिज्ञान-शाकुन्तलमिति नाटकत्रयम्" विनिर्मितम् । रघुवंशस्य रचनाशैल्या वर्ण्य-विषय-क्रमेण च प्रतीयते यदस्य निर्मितिः कुमारसम्भवात् पश्चादेव कृता । अस्मिन् सप्तदश-सर्गात्मके कुमारसम्भवे महाकाव्ये भगवतः शिवस्य पुत्रोत्सवादि-कथा समुपवर्णिता। केषाञ्चित् विदुषां मतमिदं यद् अष्टमसर्गपर्यन्तमेव कृतमिदं महाकाव्यम् । कुमार-सम्भवापेक्षया विस्तृतं वर्ण्यविषयं समादाय सरति नयनपथं रघुवंश-महाकाव्यम् । अत्र दिलीपाद् आरभ्य अग्निवेश-पर्यन्ता रघुवंशीय-नृप-परम्परा सम्यक्तया प्रदर्शिता ।

ऋतुसंहारस्य पर्यालोचनया प्रतीयते यदियं कवेः सर्वप्रथमा कृतिः । "मेघे माघे गतं वयः" इति सूक्तेर्विषयीभूतं मेघदूतन्तु कविकलाया अद्वितीयं मनोहारि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुषमाधारि निदर्शनम् । 'अभिज्ञानशाकुन्तलस्य' कीर्ति-चन्द्रिकया तु धवलितमेव निखिलं जगत्, प्रीणिताश्च निखिला एव काव्य-रस-रसिका विद्वच्चकोराः, विकसितानि च सहृदय-हृदय-कैरव-कुलानि ।

काव्यक्षेत्रे च कविराजोऽयं काव्यात्मभूते रसे विशेषतः स्वाभिरुचिं सर्वेष्वपि रसेषु सञ्चारं विदधन्नपि रसराजे शृङ्गार एव तत्रापि वियोगे विशेषेण विधत्ते सञ्चारम् । मेघदूतस्य सन्देशः, रामस्य कारुण्यम्, शकुन्तलाया अवस्था, अजस्य विलापः, रतेः शोकोद्‌गारश्च भजतेऽत्र निदर्शनताम् ।

वसन्तवर्णने न केवलं मनुजेष्वेव, अपितु पशुपक्षिप्रभृतिषु प्राणिष्वपि प्रदर्शयत्येव शृङ्गारसाम्राज्यं कविसम्राडयम्—

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥

एवमेव—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥

इत्यादीनि पद्यरत्नानि नीतिसहितं मर्यादामयं लोकहितं सदाचार-समुपबृंहितं साहित्य-सर्वस्वं संदर्शयत्येव । युद्धादि-प्रसङ्गे वीर-बीभत्सादयोऽपि सर्वे रसा यथास्थानं समुपवेशिता पुष्णन्त्येव हृदयहारिणीं कामपि सुषमाम् । अतएव केवलं शृङ्गारी कविरसौ वर्तत इति केषाञ्चित् कथनं तथ्यहीनं प्रतिभासते—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥

इत्यत्र स्वाभिमानपरं नारी-महिमोद्‌बोधकं सीताभिहितं 'राजा' इति निर्देशनं निरपराध-परित्यक्ताया औचित्यमेव दर्शयति । उद्दीपनादिरूपेण प्रसङ्गानुकूले प्रकृतिवर्णने परम-निष्णातस्य कवीन्द्रस्य प्रावीण्यं यद्यपि सर्वेष्वेव अलङ्कृतिचयेषु परिलक्ष्यते, तदपि "उपमायान्तु" अस्याधिकारः सर्वान् अतिशेत इति वदन्ती **"उपमा कालिदासस्य"** इति सूक्तिः सर्वत्र संचरत्येव ।

"प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि" इत्यादिका स्वाभाविका दासा इवानुप्रासा, अक्लिष्टानि यमकानि, मनोहारिण्य उत्प्रेक्षाः, कमनीयाः सूक्तयः, विशिष्टाः संवादाश्च पोषयन्त्यस्य कविकुल-गुरुताम् । अतएव साहित्य-मार्ग-लोके ध्वन्यालोके सर्वानन्दवर्धनेन श्रीमदानन्दवर्धनेन **"कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा वा महाकावय इति गण्यन्ते"** इतिरीत्या प्रशंसितोऽसौ ।

यद्यपि प्रसिद्धानि रससिद्धानि सर्वाण्येव छन्दांसि साधिकारतया प्रयुक्तानि, तदपि रसास्वाद-विशेषज्ञैः समालोचक-शिरोमणिभिरस्य मन्दाक्रान्ता सविशेषं स्तूयते—

वशगा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते ।
सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगांगना ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्यादिभिः विविधाभिः विशेषताभिः विशेषितत्वादेव कवेरस्य सुषमासाम्यं नाद्यावधि केनापि कविनाधिजग्मे इति समुद्घोषयन्ती सूक्तिरियं सर्वथा समीचीनैव—

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥

८६. महाकविर्भारविः

आदिकवेः वाल्मीकेरारभ्य कालिदासपर्यन्तं नैसर्गिकरूपेण प्रवहन्त्या सुरसरस्वत्या रसावगाहनेन पाविता स्वाश्रयिणो जनाः । तदनन्तरं कृत्रिमसौन्दर्येण शब्दचातुर्येण विविधालङ्कृति-प्रयोगेण तां विभूषितां विधाय येन विद्वद्वेद्या विहिता सरस्वती, तं कविरविं श्रीभारविं को न जानीते । संस्कृतसाहित्ये हृदय-पक्षेण सह कला-पक्षस्य प्राधान्यं सर्वप्रथमम् अमुनैव कविना प्रदर्शितम् । अनेन प्रदर्शितामेव सरणिं समनुसृत्य माघ-भट्टि-श्रीहर्ष-प्रभृतिभिः विद्वद्वरेण्यैः कविचक्रवर्तिभिः स्वकाव्य-निर्मितिं विधाय यशोवित्तं समवाप्तम् । कालिदासादिवद् नात्र पुष्कलं कथावस्तु, किन्तु स्वल्पकायमेव काव्य-कौशलेन विमण्डितं नानालङ्कृति-राजितं तद्विराजते ।

भारवेः वैयक्तिक-जीवन-वृत्त-विषये साधिकारतया न किञ्चिदपि वक्तुं पार्यते । नानाविधाः किम्वदन्तीः समुपजीव्येदमेव वक्तुं शक्यते यदनेन प्रायः खैस्ताब्दस्य षष्ठशताब्द्या उत्तरार्धे स्वजनुषा पावितः सम्भवतो दक्षिणदेशः । अतएव केचिद् दण्डिना सह सम्बन्धमपि योजयन्ति । महाकवेरस्य केचिज्जना महाराजभोजेन सह सम्बन्धं संस्थापयन्ति ।

किन्तु किम्वदन्ती सुप्रसिद्धैषा विराजते यत्सर्वत्र विश्रुतिम् अधिगतस्यापि स्वस्य तिरस्कृतिपरं जनकं विलोक्य रुषान्वित-चेतसा अमुना तद्वधार्थं निश्चयो व्यधायि । परन्तु रहसि स्वोन्नतिपरां हितैषिणीं तद्वाणीं जननीं प्रति गदितां श्रुत्वा पश्चात्तापपरेण द्वादशवर्षात्मिका कालकला गोचारण-व्यापारम् अनुतिष्ठता श्वसुरगृहेऽतिवाहिता । तत्रैव च स्वकीर्त्ति-समाश्रयस्य किरातार्जुनीयाख्यस्य महाकाव्यस्य निर्मितिर्विहिता ।

अष्टादशसर्गात्मके महाकाव्येऽस्मिन् शिवसमाराधनार्थं तपस्यतः किरातवेषेण साक्षाद् भगवता शिवेन सह युध्यतोऽर्जुनस्य महाभारतीया कथा वर्णिता । श्रीशब्देन समारब्धस्य महाकाव्यस्यास्य प्रत्येक-सर्गान्त-श्लोके लक्ष्मीशब्दोऽनुप्रयुज्यते । लक्ष्म्यन्तस्य अस्यानुकरणं विदधता श्रीमाघेन **"श्र्यन्तस्य"** श्रीहर्षेण च **"आनन्दान्तस्य"** महाकाव्यस्य निर्माणं कृतम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्रीयदृष्ट्या अत्र नायको धीरोदात्तोऽर्जुनः प्रधानरसश्च वीरो विराजते । महाकाव्यानां परिभाषां पालयतानेन सूर्योदयास्त-पर्वत-नदी-जलक्रीडा-सुतक्रीडादीनां समुचितं कौशलपरं वर्णनं विहितम् । अत एवात्र कथा मन्थरगतिना प्रवहति ।

माघवदमुना शब्दार्थद्वयस्य, श्रीहर्षवद्वा प्रौढोक्ति-कल्पनायाः पदलालित्यस्य वा माहात्म्यं नाङ्गीकृतम् । परन्तु शब्दापेक्षयार्थस्यैव महत्त्वं समधिकं स्वीकृतम् । अतएव **"भारवेरर्थगौरवम्"** "नारिकेलफलसम्मतं वचो भारवेः" इति प्रसिद्धमेव ।

"स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।"

इति स्वयमेव अनेन प्रदर्शिते कवित्वनिकषे यदि कवेरस्य सुवर्णस्य काव्य-सुवर्णस्य परीक्षा विधीयते चेत्तर्हि तत्सर्वथा शुद्धमेव दृक्पथ-पान्थतां प्रयाति । सर्वेष्वेव शास्त्रेषु निर्बाधं प्रसरति शेमुषी कवेरस्येति किरातपर्यालोचनया सुस्पष्टमेव प्रतीतिपथमुपयाति । विविधालङ्काराणां समुचितस्थाने सन्निवेशं विदधता तेन च कविता-कामिनी-सौन्दर्यं संवर्धयता अनेन यद्यपि प्रायः समेषामेव प्रसिद्धालङ्काराणां प्रयोगो व्यधायि । तदपि श्लेषयमकोत्प्रेक्षादिषु परमं प्रावीण्यं प्रतीयते । साहित्यिकसमाजे प्रसिद्धं पद्यरत्नमिदं समुपहारीक्रियते—

"कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥"

चित्रकाव्येषु प्रहेलिकादि-विविधबन्धेषु स्वप्रतिभाया वैभवं विशेषतः प्रदर्शितं महाकविनामुना । तत्रत्यम् एकाक्षरपदमयं कूटं चित्रकाव्यमिदमेकं निदर्शनीक्रियते—

"स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययाययः ।
ललौ लीलां ललोऽलोलः शशीशशिशुशीः शशन् ॥"

"रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवदिति" काव्यप्रयोजनं हृदयङ्गमं विदधता अनेन मध्ये मध्ये समुदाहृतानां सूक्तीनां शोभया तत्रैव रमते साहित्य-प्रणयि-चेतः । तासु परमप्रसिद्धिम् उपगता विविध-कथा-कलिता साहित्यसर्वस्वा पद्यमयी सूक्तिरेषा सर्वत्र सुरभारती-सेवकानां जिह्वाग्रे नृत्यन्ती दृश्यत एव—

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः ॥"

सर्वेष्वेव प्रसिद्धेषु छन्दःसु काव्यकौशलं दर्शयतोऽपि कवेरस्य वंशस्थं विशेषतः प्रशंसास्पदम् । यथोक्तम्—

"वृतच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभाभारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ॥"

अद्यावधि ब्रह्मास्वाद-सहोदरे रसार्णवे सहृदय-हृदयं स्वक्रीडा-निरतं विदधतो नव्यधारां साहित्यक्षेत्रे प्रवाहयतः कविता-निर्मिति-कौशलं कलयतः नीति-नय-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नदीष्णतां प्रदर्शयतो विविधालङ्कारच्छटां वितन्वतः काव्यदोषान् परिहरतः श्रीभारवेः यथार्थैव प्रशंसेयं प्रतिभाति—

प्रकाशं सर्वतो दिव्यं विदधाना सताम्मुदे।
प्रबोधनपरा हृद्या भारवेरिव भारवेः॥"

८७. महाकविर्माघः

संस्कृतसाहित्ये भावपक्षेण सह कलापक्षस्य कवित्वेन सह वैदुष्यस्य हृदयेन सह मस्तिष्कस्य सामञ्जस्यं विधाय या कविता-धारा भारविणा प्रवाहिता, तस्या सुषमा श्रीमाघे दृक्गोचरताम् एति। महाकवेः कालिदासस्य भावना-भागीरथ्या कविरवेर्भारवेः कला-कलिन्द-नन्दिन्या भट्टेर्वैदुष्य-पूर्ण-सरस्वत्या सनाथितं तीर्थराजमिव कविराजं श्रीमाघं समासाद्य सहृदय-हृदयस्य रसावगाहनेन कृतार्थता नैसर्गिकी राजते। अतः एव साहित्यप्रणयिवर्गे संसरत्येव सूक्तिरेषा—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

इतरकविवत् नास्ति तिरोहितं कविवरस्य अस्य जीवनवृत्तम्। कविवरोऽयं खृस्ताब्दस्य सप्तमशताब्द्यां 'श्रीमाली' इतिनामके विप्रकुले जन्म लेभे। अस्य पितामहः श्रीसुप्रभदेवः श्रीवर्मलातस्य नृपतेः महामात्य आसीत्। अस्य पितुः नाम 'दत्तक' इत्यासीत्।

श्रीमाघ-कीर्ति-कल्प-लतिकायाः समाश्रयीभूतं शिशुपालवधाख्यम् एकमेव महाकाव्यं विराजते। महाभारतात् शिशुपालवधाख्यां कथां गृहीत्वा स्वकल्पना-कौशलेन वैदुष्येन विभूषितं विंशति-सर्गात्मकं महाकाव्यमिदं कवित्व-कौशलस्य चूडान्तं निदर्शनं गण्यते। भारवेरनुकरणतया तच्छैलीसाम्यं सर्वत्रैव प्रतिबिम्बितं प्रतिभासते। उभयोः काव्ययोः समारम्भः श्रीशब्देन वर्तते। किराते प्रतिसर्गान्ते लक्ष्मीशब्दवद् अत्रापि श्रीशब्दः प्रयुज्यते। महाकाव्येऽस्मिन् वनेचरवन्नारदस्य समागमनम्, राजनैतिकी मन्त्रणा, पर्वतवर्णनम्, ऋतुसौन्दर्यम्, सैन्यशोभा, युद्धप्रसङ्गः, चित्रकाव्यकौशलम्, उभयोर्बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भावं विशदतया व्यनक्ति।

अस्य प्रतिभा-सीमन्तिनी न केवलं साहित्य-सौध एव संराजते; अपितु तथैव विविध-शास्त्र-विपिनेष्वपि विहारं विधत्ते। प्रसङ्ग-पतितानि पद्य-तल्लजानि कवि-वरस्यास्य सर्वशास्त्रीयं विशिष्टवैदुष्यं वदन्ति। एतेन प्रतीयते यद्व्याकृतेः, राजनीतेः, सांख्य-योग-बौद्ध-नयानां, पुराणप्रचयस्य, सङ्गीतस्य, नाट्यशास्त्रस्य, चित्रकाव्यस्य आयुर्वेदविज्ञानस्य, कामशास्त्रस्य, अश्व-मातङ्गारि-लक्षणादेः किम्बहुना समेषामेव शास्त्राणां तलस्पर्शभाक् विद्वान्नसौ बभूव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥"

इत्येष श्लोकः कविश्रेष्ठस्य विद्वज्ज्येष्ठस्य सहृदय-श्रेष्ठस्य अस्य व्याकृतिना सह राजनये विचरतीं प्रतिभां प्रतिपादयति। एवमेव बौद्धदर्शनीयं वैदुष्यं वददिव विभ्राजते पद्यमिदं काव्यजगति—

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ॥

"शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते" इतिरूपेण सत्कवेर्या परिभाषा स्वयमेव प्रदत्ता। तस्याः सर्वथानुपालने लग्नचेतसा कविना अमुना विमण्डिता स्वीया काव्यसृष्टिः। शब्दालङ्कारवर्गे श्लेष-यमकानुप्रास-प्रदर्शनेन चित्रकाव्यस्य ऐकाक्षरी-श्लोकादि-निर्माणेन चास्य महिमा महीयते, अर्थालङ्कारेषु रूपकोपमोत्प्रेक्षादि-निर्मिति-कौशलम् अद्वितीयम् अनुपमञ्च। कल्पना-कौशल-पुरस्कृता साहित्यिक-सभाजिता प्रदत्तघण्टामाघोपनामोपमा निदर्शनीक्रियते—

"उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥"

शब्दालंकृति-चमत्कृति-विषयिणी कवितेयं प्रसिद्धैव—

"मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
चलितया विदधे किल मेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥"

सर्वेषामेव रसानां साधिकारं परिपोषं तेन च सहृदय-परितोषं विदधता अमुना प्रधान्येन वीरो रसस्तदङ्गतया च सर्वेऽन्ये रसाः यथास्थानं विन्यस्ताः। रैवतक-वर्णनम्, सूर्यास्तादिवर्णनम्, सागरवर्णनम्, इत्यादिस्थलानि प्रकृति-प्रियता अस्य प्रतिपादयन्ति।

यद्यपि प्रायः षोडशविधे छन्दोनिचये सरत्यस्य भारती, तदपि पञ्चम-सर्गीयायां वसन्त-तिलकाया एकादशसर्गीया मालिन्याः सौषम्यं सर्वातिशायि संशोभते। व्यये विहिते वर्धमानस्य भारतीकोशस्य महिमासौ प्रतिभाति यत्सर्वत्र नवनवां शब्द-राशिं वितन्वन्नसौ नवसर्गेषु विहितेषु कवीनाम् अन्येषां कृते शब्द-दारिद्र्यं विहितवान्—

"नवसर्गगते माघे नवसर्गो न विद्यते।"

भोजादिप्रशंसितं परमप्रसिद्धं पद्यमेकं निदर्शनीक्रियते—

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः।"

महाकवेरस्य सर्वथानवद्यं सर्व-विध-पाडित्यम् अवलोक्य डा० द्विवेदिनाप्युक्तम—

भारविः राजनीतिज्ञः कालिदासो महाकविः।
भट्टिः व्याकरणज्ञाता माघे सन्ति वहुज्ञताः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८८. गद्यकविर्बाणः

संस्कृत-साहित्य-जगत्यस्मिन् महाकविर्वाणः स्वीयाप्रतिम-प्रभया सर्वान् कवि-वरान् अतिशेते । गद्यक्षेत्रे कविवरस्यास्य प्रतिभा सर्वातिशायिनी वर्तत इति विदन्त्येव विज्ञाः । अन्यकविरिव महाकवेरस्य जीवनादिवृत्तं न तिरोहितं वर्तते, यतश्च महाकविना अनेन स्वयमेव स्वग्रन्थेषु बहुधा वर्णितं स्वजीवनवृत्तम् । वात्स्यायन-वंशावतंसेन कुवेरेति ख्यातपूर्वजेन भर्गुशिष्येण चित्रभानु-तनयेन वाणेन श्रीहर्ष-वर्धनस्य काले स्वजनुषा पावितेयं भारतभूः ।

वाल्यकाले मातापितृवियोगे स्वच्छन्दं विहरता देशाटनं कुर्वतानेन यो ज्ञान-राशिः समर्जितः, स एव कवित्व-पीयूष-पावितेऽस्य हृदये पल्लवितः पुष्पितश्च काद-म्वरी-हर्षचरितादि-रूपेण फलितः । न केवलं सुरसरस्वती-सेवकानामेव, अपितु विश्वस्मिन् विश्वे समेषामेषां साहित्य-प्रेमिणां मनांसि मोदयति । हर्षचरितम्-कादम्वरीति गद्यमयं चण्डीशतकमिति पद्यमयं प्रवन्धं वाण-वुद्धि-वैभव-प्रदर्शकं प्रकाशते ।

गद्ये यादृशोऽधिकारो वाणस्य तादृशः पद्ये न दृश्यतेऽतएव "पद्यवन्धे न तादृश" इति प्रसिद्धा कोविदोक्तिः । किन्तु नहि पद्यपथे सर्वथा स्खलद्गतिरेव वाण इति कल्पनीयः । यतश्चण्डी-शतकस्थ-पद्यानि सर्वथानवद्यानि परम-हृद्यानि हरन्त्येव साहित्य-सेवक-चेतांसि । निदर्शनमेकं प्रदीयते—

"विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे,
जाताशंके शशांके विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुवेरे ।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं,
निःशङ्कं खण्डयन्ती नः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥"

"हर्षचरितम्" सर्वप्रथमा बाणकृतिरिति तद्रचनाशैल्यैव सुस्पष्टं प्रतिभासते । नाना-रस-परिपाक-शोभिता विविधालङ्कृति-समलङ्कृता, अनेक-वर्ण्य-वस्तु-विभव-विभूषिता, समयोचितोपदेश-पीयूष-पाविता, काव्योचित-कमनीय-गुण-ग्रामम् आवहन्ती पाठक-मनो-चञ्चरीकान् स्वसौरभ-सम्पत्ति-वलादवशानि विहाय समाकर्षयन्ती **"कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते"** इत्यादि-प्रशंसा-शतैः विराजयन्ती कादम्बरी तु समलङ्कृत-साहित्य-सभाजित-गद्यस्य अनुपममेव निदर्शनम् ।

साहित्यप्रेयसां दैवदुर्विपाकाद् अस्य कविशिरोमणेः ग्रन्थद्वयमपि पूर्णताम् नागात् । कादम्वरी-विरह-वर्णनैकताने परित्यक्त-तदितर-चिन्तावितानै गतप्राणे श्रीवाणे विशिष्ट-बुद्धि-वैभवेन समधीत-साहित्य-नयेन तत्तनयेन श्रीपुलिन्दभट्टेन प्रपूरिता समस्तविद्याधरी सहृदय-हृदय-प्रीणनकरी रसप्रवाहझरी प्रदर्शित-काव्य-कौशलभरी कादम्वरी । किन्तु हर्षचरितन्तु अद्यावधि समाप्ति-सरणि नागात्, इति विलोक्य दुनोत्येव सुर-सरस्वती-सेवकान् ।

वाणेन स्ववर्णन-वैशिष्टयेन साहित्य-संसारस्य न कोऽपि भागः खिलीकृतो यत्र कस्याप्यन्यस्य शेमुषी संसरणं भवेत् । अत एव **"बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्"**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति प्रसिद्धैव लोकोक्तिः । बाण-रचनानन्तरं कस्यापि कवेः पदक्रमो न युक्ति-युक्तताम् अर्हति, किन्तु तेषां चापल्यमेव तान् कवितानिर्मितौ प्रेरयतीति वस्तु-स्थितिः प्रदर्शिता केनापि कविना––

हृदिलग्नेनं बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरंगाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

बाणस्यैतादृशमेव वैशिष्ट्यं विनिभाल्य संस्कृत-साहित्य-प्रणयि-सरोवरे समु-ल्लसन्त्यः सूक्ति-सरसीरुहाः स्वसौरभेन दशदिशःसु परिभ्रमता परितोषयन्त्येव विद्या-चण-चेतः-चञ्चरीकान् । तासु सर्वत्र प्रसिद्धासु वर्णिता विशेषता वस्तुस्थितिमेव व्यञ्जयन्ति । एकत्र तु वर्णितमित्थं यद् वीणा-वाद्य-विशारदा समस्त-संसार-पारदा भगवती शारदैव स्वापेक्षयाधिकं वैशिष्ट्यं समवाप्तुं बाणरूपेण पुनः समागता सकल-श्रेष्ठ-साहित्य-सुखं भारतभुवम् अपावयत्––

"जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह ॥"

कविरवयः केचन शब्दालङ्कारे, केचन चार्थालङ्कारे, कतिचन रसविपाके, इतरे काव्यार्थ-वैशिष्ट्ये स्वाधिकारं समुद्वहन्तः मत-मतङ्ग-मतिं धारयन्तः स्वापेक्षया अधरयन्ति इतरान् सामान्यान् कविब्रुवान् । परन्तु सर्वानिन स्व-पराक्रमेण पराभवतः काव्य-कान्तारे स्वच्छन्द-क्रीडां-कुर्वतो बाणस्य पञ्चास्यता प्रथितैव––

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्तदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

✦✦

८९. भवभूतिः

प्रदर्शित-विशिष्ट-वैदुष्य-विभूतेः श्रीभवभूतेः परिचय-हीनो न कोऽपि सत्सा-हित्यसेवी विद्यते । यतोऽस्य सर्वत्र प्रसरन्त्या कीर्ति-कौमुद्या धवलितं निःशेषमेव निखिलं जगत् । अस्य नाटकेषु समुल्लिखतस्य वृत्तस्य पर्यालोचनया प्रतीयते यदु-दुम्बर-कुलीय-विप्र-वंशावतंसेन महाकवि-श्रीभट्टगोपाल-पौत्रेण जतुकर्णी-श्रीनीलकण्ठ-सूनुना श्रीकण्ठापरान्वयेन अष्टमशताब्द्यां पद्मपुरं स्वजन्मना धन्यतां नीतम् । प्रायो विद्वांसो मन्यन्ते यदस्य नाम "श्रीकण्ठ" एवासीत्, परन्तु पार्वतीवन्दनात्मकस्य श्लोकस्य चमत्कृत्या चमत्कृतहृदयैः सहृदयैः भवभूति-पद-प्रयोगस्य प्रावीण्येन "भव-भूतिः" इत्येवास्य नामकरणं विहितम् । स श्लोकश्चेत्थं प्रसिद्ध एव––

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव ।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ ॥"

मालतीमाधवस्य तृतीयाङ्कस्य पुष्पिकायां समुल्लिखिताद् "उम्वेकाचार्यः" इति नाम्नोऽस्य पद-वाक्य-प्रमाणज्ञता प्रतीयते । अतएव भारतीया इतिवृत्त-विशारदा उभयोरैक्यमेव मन्यन्ते । किन्तु तत्त्वमेतत् निश्चितमेव वर्तते यदिमे साहित्य-शास्त्र-वद् वेद-वेदान्तोपनिषद्-व्याकरण-तर्क-मीमांसादिषु चूडान्तं निष्णाता आसन् । परन्तु साहित्य-प्रणयिनां सौभाग्यादेषां कविता-कामिनी पाण्डित्य-प्रदर्शन-परत्वान्न नीरसताम् उपगता । आसीदयं कविर्भगवतः शशिशेखरस्य महान् भक्तः । नाटकत्रयस्य प्रस्तावना-पर्यालोचनया ज्ञायते यदेषाम् अभिनयोऽपि महाकाल-नाथस्य सन्निधानेऽवन्तिकायां जातः ।

भवभूतेर्मालतीमाधवं-महावीरचरितम्-उत्तररामचरितञ्चेति रचनात्रयं समुपलभ्यते । आसु प्रथमं प्रकरणमितरद्वयञ्च नाटकं विद्यते । मालतीमाधवे प्रणयकथा, नाटकद्वये च श्रीरामकथा वर्णिता । केचिन्महावीरचरितं प्रथमां कृतिम् उत्तररामचरितञ्च अन्तिमां कृतिं मन्यन्ते । रसप्रवाहेन कविकौशलेन वस्तु-विन्यास-वैशिष्टयेन "उत्तररामचरितस्य" अन्तिम-कृतिता तु सर्वमान्यैव, परन्तु महावीरचरितस्य प्रारम्भिक-कृतित्वे न किमपि प्रामाण्यं प्रतिभाति ।

कलापक्षेण सह भावपक्षस्य कवित्वेन सह कोविदत्वस्य अनुपमं सम्मिश्रणं "उत्तररामचरिते" दृश्यते । अत एव **"उत्तरे रामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते"** इति प्राचीना सूक्तिः संराजत एव । अत्रापि तृतीयाङ्कस्य सर्वातिशायि महत्त्वं वर्तते । वस्तुतोऽस्य वर्णितस्य कथानकस्य समवगाहनेन पाषाण-हृदयस्यापि जनस्य नेत्रे सास्रे चेतश्चार्द्रं भवत्येव ।

आदिकविना वाल्मीकिना यत्करुणरसस्य प्रबन्धोपजीव्यता प्रदर्शिता तस्या चरमपरिपाक उत्तररामचरिते परिलक्ष्यते । वीरशृङ्गारवत् करुणस्य काव्याङ्गता कवेरभिमता । अतएव सिद्धान्तोऽयममुना तृतीयाङ्के प्रदर्शितः—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥

अस्य सिद्धान्तस्यैव परिपोषार्थं मन्येऽमुना उत्तररामचरितं विरचितम् । अत्र प्रवाहितया कारुण्य-कल्लोलिन्या **"अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्"** इति कविप्रतिपादनं सर्वथैव युक्तियुक्तं प्रतिभाति । यद्यपि प्राधान्येनास्य रुचिः करुण एव, तदपि लवादि-युद्ध-प्रसङ्गे वीरस्य, मालतीमाधवे शृङ्गारस्य, तत्र तत्रान्येषां रसानामपि परिपाकः प्रीणात्येव पाठकजनान् ।

नाट्यदृष्टया शैथिल्यं धारयन्त्यपि कविशैली भावदृष्टया सुश्लाघ्यैव वर्तते । प्रमुखालङ्कारेषु प्रमुखछन्दःसु च परां प्रवीणतां प्राप्तस्यास्य शिखरिणी विशेषतः संस्तूयते सहृदयैः—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी।
रुचिरा घनसंदर्भे या मयूरीव नृत्यति॥"

प्रकृति-प्रणयिनो भवभूतेः प्रकृतिचित्रं नयनपथे नृत्यं विधदिव प्रत्यक्षं दृश्यते। जनस्थानस्य सघननिकुञ्जेषु प्रवहन्त्या आपगायाः, तत्कुलस्थ-शाखावलम्बिनां पक्षिणां च मनोरमं दृश्यमेकं कविः समुपस्थापयतीत्थम्––

"इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरु-
त्प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्त्रोतसो निर्झरिण्यः॥"

अपि च वहुकालानन्तरं जनस्थानं समुपागतस्य रामभद्रस्य वनवर्णनमिदं स्वाभाविकमेव—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति॥

अत एवानेकैः कविकोविदैः प्रशंसास्य विधाय पाविता स्वीयावाणी––

"भवभूतेः सम्वन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥"

९०. श्रीहर्षः

भगवत्याः सरस्वत्या विग्रहधारी हर्षः श्रीहर्षो विश्व-विश्रुत-वैदुष्य-वैभवो विज्ञवरो वर्तते। स्वीयग्रन्थेषु प्रदत्त-परिचयस्य आधारेण प्रतीयते यद् श्रीहीरोऽस्य जनको जननी च श्रीमामल्लदेवी बभूव। कान्यकुब्जाधीश्वरस्य श्रीजयचन्द्रस्य सभापण्डितता सममण्डि कविवरेण अनेन। साहित्येऽद्वैतवेदान्ते च विद्यतेऽस्य महाप्रतिभावतो भारत्या अधिकारः। नैषधचरित-स्थैर्यविचारण-नवसाहसाङ्कचम्पू-खण्डनखण्डखाद्य-प्रभृतयो ग्रन्था अनेन निर्मिताः। एषु दार्शनिकक्षेत्रे खण्डनखण्ड-खाद्यं साहित्यक्षेत्रे च नैषधीयचरितं प्रतिभायाम् अद्वितीयं निदर्शनम्।

द्वाविंशतिसर्गात्मके नैषधीयचरिताख्ये महाकाव्ये महाकविना श्रीहर्षेण नलदमयन्ती विवाहादिकथा सरसतया विशदतया च वर्णिता। संस्कृतसाहित्ये महाकविना भारविणा या विविध-चमत्कार-चमत्कृता, कलाप्रधाना नाना-लङ्कारैकताना शैली प्रकटिता तस्या विकासो माघेन कृतश्चरमोत्कर्षन्तु श्रीहर्षो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नैषधे कृतवान् । अत एव कलापक्षप्राधान्यमाश्रयत्सु कविवरेषु मूर्धन्यो हर्षः साहित्यमार्मिकैः **"उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः"** इति प्रशंस्यते।

नैषधे पदे पदे पदलालित्यानुगता कल्पना-चमत्कृतिः समनुरञ्जयति साहित्यक-चेतांसि । कविताकामिन्याः कमनीये कलेवरेऽलङ्कृतिविन्यासेऽपि न कोऽपि कविस्तुलनामधिरोहति श्रीहर्षस्य । अर्थालङ्कारैः सह शब्दालङ्कारा: दासा इवानुप्रासा बलाद् आवर्जयन्ति साहित्य-प्रणियि-मनांसि । अत एव च **"नैषधे पद-लालित्यम्"** इति प्रसिद्धिः ।

कवेरस्य कल्पनाकोपः सर्वथा सर्वदा च परिपूर्णो लक्ष्यते यतः पदे पदे कल्पना-रत्नैर्मनांसि रञ्जयन् विविधविधां चमत्कृतिं प्रदर्शयन् कविरेष न मनागपि परिश्रान्तिमनुभवति । सर्वेषु शास्त्रसिद्धान्तेषु विशेषतो दार्शनिकक्षेत्रे कवेरस्य प्रौढं पाण्डित्यं पदे पदे प्रकर्षतीव प्राज्ञचेतांसि ।

नैषधे सप्तदशसर्गे कलि-वार्ता-प्रसङ्गे विविध-दार्शनिक-सिद्धान्तानां कविशैल्या वर्णनमस्य दार्शनिक-देशिकत्वं व्यनक्ति । स्वपाण्डित्य-प्रदर्शनाय क्वचित् क्वचिद् ग्रन्थग्रन्थिरपि कविनामुना समुपन्यस्ता । एवं कला-पक्ष-प्रधाने विविध-दर्शनैकताने प्रकटितालङ्कार-विताने वृत-कल्पना-माने नैषधस्य समाने **"नैषधं विद्वदौषधम्"** इत्यादिकं यथार्थमेव ।

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" इति कालिदास-प्रदत्त-परिभाषानुसारं दमयन्त्या वहुधा वर्ण्यमानं सुषमावितानं पुनः पुनः सहृदयान् आनन्दयत्येव । नहि तत्र पिष्टपेषणस्य पौनरुत्यक्स्य वा मनागपि लेशो वर्तते येन भवेदुद्वेजनम् । दार्शनिकदिनेशोऽयं साहित्यसर्वस्वे नैषधे दमयन्तीं दर्शयत्युपनिष-दुपमामेव । यद्यपि सर्वस्मिन्नेव दर्शनमार्गे साधिकारोऽयं विचरति तथापि विद्यतेऽद्वैतवादेऽस्य विशेषतो निष्ठा । अत एव अनेन तदितरदर्शनानां हास्यमिश्र-णेन सहायुक्तितापि सभ्यक्रीत्या प्रतिपादिता । दुःखाभावरूपां मुक्तिं मन्वतो नैयायिकाग्रेसरस्य गौतमस्य गोतमतां पश्यन्तु भवन्तः—

"मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।
गौतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः ॥

श्रीहर्षो मूलतः शृङ्गारी कविः वर्तते । नैषधेऽनेन संयोग-विप्रलम्भावु-भावपि पक्षौ प्रदर्शितौ परन्तु संयोगसदृशो विप्रयोगो न भासते । दमयन्ती-विरह-वर्णनावसरे चतुर्थसर्गे प्रदर्शिता विरहोक्तयोऽपि कल्पना वितानैकताना ऊहोक्तय एव प्रतिभान्ति । शृङ्गारातिरिक्तं वीरादयोऽपि रसा यथास्थानोपनिवेशिताः तदनुकूल-शब्दशय्या-सभाजिताः परम-श्लाघनीयताम् उपयाताः कविकुलादर्शतां समुपगताः ।

वरयात्रिकोपहासप्रसङ्गे हास्य-प्रवाहे समागतेन अश्लीलता-कर्दमेन क्लिष्टमेव भवति स्वच्छता-तुलित-मानसं सहृदय-मानसम् । प्रथमाङ्के हंसमाध्यमेन प्रवाहिता कारुण्यकल्लोलिनी निःसंदेहं परममार्मिका कविभिरनुकरणीया च वर्तते । ऋते पाषाण-हृदयाज्जनाद् बलादेव भवति सवाष्पं पठतां जनानामास्यम् । यथा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"मदर्थसंदेशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः प्रिये स कीदृग् भविता तव क्षणः ॥"

उत्प्रेक्षा-साङ्गरूपकोपमा-दीपकादि-समलङ्कृता परिरम्भ-क्रीडाचरण-शरणा काव्य-कौशल-प्रदर्शन-परायणा श्रीहर्ष-कविता-कामिनी सर्वथानवद्या परमहृद्या विराजते । विश्वस्येतिहासे न कोऽपि कविः साहित्येन सह दर्शनस्य विशिष्टो विपश्चिदग्रेसरः सरति दृग्पथम् ।

अन्ते च स्वयमेव कविकुल-दिवाकरेण वाग्देवताया हर्षेण श्रीहर्षेण स्वीयं परिचयं समुपस्थाप्य विरम्यते—

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्
यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम् ।
यत्काव्यं मधुवर्षिधर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥

६१. श्रीशङ्कराचार्यः

वैदिकेतर-बौद्धादि-वाद-वारिद-व्रजं विघटय्य वैदिक-धर्म-मय-स्वर्णिम-प्रभात-प्रभया विद्वद्व्रज-पुण्डरीक-पटलं प्रकाशयतो नितान्त-तान्त-स्वान्तानां दिग्भ्रान्तानामिव स्वसरणीय-सृति-भ्रष्टानां जनानां कृते प्राक्तन-पुण्य-पुरुष-प्रचारितां सरणिं समुपदिशतः कर्कश-तर्क-करनिकरैः दुस्तर्क-पङ्क-कलङ्कं धूलिसात् कुर्वतो दार्शनिक-दिनेशस्य श्रीशङ्कराचार्यस्याभिधानं विश्व-विश्रुत-वैदुष्य-वैभवं वर्तते । लोकातिशायि-महापुरुष-सुवो भारतभुवो दक्षिण-प्रान्तीय-कालटी-ग्रामम् अधिवसतो विशिष्ट-विदुषः शशिशेखर-समर्चन-संसक्त-चेतसो भक्ति-भागीरथी-भरितस्य श्रीशिवगुरोः श्रीशिवगुरोर्निकेतनं साक्षाच्छिवावतारेण लोकशङ्करेण शङ्करेण समलङ्कृतम् ।

असमय एव श्रीशिवगुरौ लेखलेखतामुपगते तदिच्छां परिपूरयन्त्या जनन्या पञ्चमवर्षे बालकस्य शङ्करस्य यज्ञोपवीतो विहितः । तदनुवेदविद्यां सकलासेव विभ्रता अष्टवर्षीयेन अनेन परा प्रसिद्धिः समवाप्ता । द्वादशे वर्षे च सकलशास्त्र-पारावारीणताम् उपगतेन अनेन बहुधा संप्रर्थितापि ममतामयी जननी निजैकमात्रं संततिरूपमिमं लोचनतारकमिव रक्षन्ती तद्विरहम् असहन्ती सन्यासाश्रयणाय न स्वीयां स्वीकृतिम् अस्मै ददौ ।

एकदा सरितामध्ये ग्राहग्रस्तस्यास्य परित्राणं सन्यासं गगनगिरा समुपश्रुत्य प्राणपरित्राणं वाञ्छती सन्यासाज्ञां विवशा दत्तवती । स्वीकृतसन्यासोऽसौ नर्मदातीरवासिनं यशोभरविकासिनं योगशास्त्र-प्रभा-भासिनं पतञ्जलिरूपं श्रीशुकदेव-शिष्यं विजिततिष्यं श्रीभगवद्गोविन्दपादाचार्यं गुरुं विधाय श्रुतिशासितम् अद्वैतमतं वर्षत्रयं यावदधीतवान् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततश्च गुरोराशिषं तदाज्ञया सह स्वीकृत्य वौद्धादि-मत-पाषण्ड-विलुप्त-प्रचारं परमपुनीतं श्रुतिनवनीतम् अद्वैतमतं समुपदिशन् विद्याधिनाथस्य श्रीविश्वनाथस्य पुरीं वाराणसीं समधिगत्य पुनर्वैदिकधर्मस्य प्रसारार्थं तदीयोपदेशं कर्तुमारेभे । तत्रैव चाष्टमूर्तेः भगवतश्चन्द्रशेखरस्य "भाष्यस्याद्वैतपरां यथार्थां व्याख्यां विरचयेति" समाज्ञां प्राप्य वदरिकाश्रमे मूर्तिप्रतिष्ठां कृत्वा तदुत्तर-भागस्थां व्यासगुहाम् अधिगतवान् । तत्रैव निवसतानेन ब्रह्मसूत्र-भगवद्गीतोपनिषत्सु प्रामाणिकीं व्याख्यां विधाय सनन्दनादिशिष्याः तदध्यापनेन कृतार्थाः कृताः ।

षोडशवर्षवयसा तरसानेन विहितं सरस्वत्या लास्यं श्रुति-सन्दोह-मधुर हास्यं भाष्यं विलोक्य को नाम मूढहृदयो जनोऽस्य भगवदवतारत्वे संदिहीत । उत्तरकाश्यां शास्त्रार्थोपायनप्रीतेन भगवता व्यासेन पुनः षोडशवर्षात्मकं कालं संप्राप्य तत्प्रचारार्थं भूयोऽपि तुहिनाद्रेरवततार । प्रयागे दार्शनिकदिवाकरेण मीमांसा-मताचार्येण वैदिक-धर्म-रक्षण-तत्परेण श्रीकुमारिलेन तदन्तिमावस्थायां मिलित्वा तदनुरोधेन माहिष्मतीम् अधिवसतो विश्रुतवैदुष्यस्य मीमांसामण्डनस्य मण्डनस्य गेहम् अधिगत्य तद्धर्मपत्नी रूपेण विराजमानां साक्षादेव शारदां शारदां माध्यस्थां विधाय परस्पर-शिष्यत्व-पणे-शास्त्रार्थे श्रीमण्डनमिश्रं विजितवान् ।

तदनु तदर्धाङ्गरूपया तद्धर्मपत्न्या पृष्टेषु कामशास्त्रीय-प्रश्नेषु ब्रह्मचर्यवशान् मौनम् आलम्ब्य षाण्मासिकम् अवधिं गृहीत्वा योगबलेन दिवङ्गतस्य श्रीमदमरुक-भूपतेः शरीरे प्रविश्य काम-कला-कौशलं कलयाञ्चक्रे । एतदवस्थेन श्रीशङ्करेण विरचितममरुशतकं सर्वानेव शृङ्गार-शास्त्रीय-मुक्तकान् अतिशेत इति विदन्त्येव विज्ञाः । अनन्तरञ्च शास्त्रार्थे तां विजित्य मण्डनमिश्रं शिष्यत्वेन स्वीकृत्य सुरेश्वराचार्येति तदभिधानं विधाय तेन सह वैदिक-मत-प्रचारार्थं भारतभुवो भ्रमणं चकार ।

क्रमेण च वहवो जनास्तच्छिष्यतया जीवनफलं लेभिरे । भगवतः शङ्करा-चार्यस्य शिष्येषु श्रीसुरेश्वर-पद्मपाद-हस्तामलक-त्रोटकाचार्या अतीव प्रसिद्धा ग्रन्थ-विस्वनसिद्धा श्रवणातिथितां धारयन्ति । समस्तमेव भारतं वैदिकेतर-मत-कलङ्क-पङ्क-दूषितं शोधयितुं स्वीयाम् आचार्यपदवीं कृतार्थयता अनेन सकलैव भारतवसुन्धरा दिग्विजय-यात्रया चमत्कृता । पुनरस्मिन् प्राचीनभारते भारते वैदिक-धर्ममयो दिवाकरो दिव्यप्रभया रराजे । तदितरमतानुयायिनां वाचंयमानां कौशिकानां गुहाश्रयणं न्याय्यमेव जातम् ।

भारतवर्षस्यैकता धर्मसूत्रेणैव शक्यसम्भवेति विचार्य पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिण-दिग्भागेषु पुरी-द्वारका-वदरिकाश्रम-शृङ्गेरि-क्षेत्रेषु गोवर्धन-शारदा-ज्योतिः-शृङ्गेरी समभिधानानां मठानां रचनां विधाय श्रीपद्मपाद-हस्तामलक-त्रोटक-सुरेश्वराचार्यान् शिष्यान् तदाधिपत्ये नियुक्तवान् । मठेष्वेषु प्रथमप्रणीतत्वाद् अधिकसमयनिवासात् प्रथमशिष्यश्रीसुरेश्वराधिष्ठानात् अविच्छिन्न-परम्परावशात् अद्यावधि शृङ्गेरीमठः शेखरायते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीशङ्कराचार्येण न केवलं वेदान्तग्रन्थानाम्, अपितु साधारण-जन-त्राणार्थम् अनेक-स्तोत्र-ग्रन्थानामपि प्रणयनं व्यधायि । प्रचण्डभानोश्च भानोर्दीधितिषु जलमिव प्रचण्ड-विचारकस्यास्य हृदये भक्ति-सलिलमपि संलीनम् आसीद् इत्यनेन स्पष्टं प्रतीतिपथताम् उपयाति । एवं भारतसमुद्धारार्थं विधाय काश्मीरक्षेत्रे शारदा-मन्दिरे सर्वज्ञपीठम् अधिरुह्य द्वात्रिंशवर्षे कैलासवासता समधिगता । एतत्पवित्र-चरित्रसंग्रहात्मकमिदं पद्यं प्रसिद्धमेव—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित् ।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् ॥

६२. लोकमान्यस्तिलकः

नश्वरे क्षणभङ्गुरेऽसारेऽपि संसारे ये जना यशःकायेन सर्वदा विराजमाना स्वाचरण-ज्योतिषा दिग्भ्रान्तेभ्यो मार्गनिर्देशं विदधन्ति, तेषामेव 'महापुरुष' इति यथार्था संज्ञा संराजते । तादृशेषु जनेषु लब्धप्रतिष्ठं राष्ट्र-भक्त-तिलकं श्रीबाल-गङ्गाधरतिलकं को नाम न जानाति ।

स्वीयं रत्नगिरिनाम सार्थकं विदधता रत्नगिरि-प्रदेशेन कोङ्कण-प्रान्तीयेन पावने विप्रकुले तिलकाख्यं स्वप्रभा-तर्जित-निखिल-रत्नं समुत्पाद्य कृतार्थीकृता भारतभूः । जुलाईमासस्य २३ तारिकायां १८५६ ईसवीयाब्दे समुत्पन्नेन गीर्वाण-वाणी-विदुषा पितृ-समधिगत-प्राक्तन-शास्त्रेणानेन विंशतिवर्षीयेन प्रथमश्रेण्यां 'बी. ए.' परीक्षां समुत्तीर्य मुम्बईपुर्यां वर्षत्रयानन्तरं वाक्कीलविद्या प्रारब्धा ।

अनन्तरं श्रीचिपलूणकर-शास्त्रि-साहाय्येन नवीनं विद्यापीठं संस्थाप्य 'फर्गूसनकालेज' इति नाम्ना प्रख्याते महाविद्यालये प्राध्यापकपदं समलङ्कृतम् ।

अनन्तरञ्च मराठीभाषायां "केसरी" नामकं आङ्ग्ल-भाषायाञ्च 'मराठा' नामकं समाचारपत्रं सञ्चालयन् देशभक्तिमयीं वीरतामयीं भावनां स्वीयौजस्वनी-भाषया निर्भयविचारधारया च प्रचारयन् पारतन्त्र्य-पीडितायां व्यपगतोत्साहायां जनतायां नव्यया जागृतिना सार्धं व्यतनुत ।

यवनकुलात् त्रस्ताया भारतभुवो हिन्दू-जनतायाश्च रक्षकं प्रबलवीरं महाराष्ट्र-धीरं श्रीशिववीरं स्मारयतानेन नव्य-साहस-सञ्चाराय गणपति-शिववीरोत्सवानां प्रचलनं पुनः कृतम् । वीरसुवं भारतभुवं क्रूरतया विनाशयतां जनवर्गं त्रासयतां गौराङ्गानां विरोधे केसरी केसरीव फेरुनिवहे त्रास-जनको जातः । मुम्बयी-विधान-सभाया सदस्येन पुण्यनगरस्थ-प्लेग-पीडा-महोत्पाते जनसमुदायं पीडयतो रैण्डनामकस्य हत्याकाले जाते महाविप्लवप्राये वातावरणे अफजलखान-हत्यावत् नेयं हत्या अनौचित्यम् आवहति, इति साधितं श्रीतिलक-महोदयेन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवंविधैः वहुभिर्वीरतामयैः निर्भयतानुप्राणितैः वस्तु-याथार्थ्य-वर्णनपरैर्लेखैः कुपितांग्लाधिकारिभिः कारावासे निवद्धोऽयं महात्मा । तत्रापि परोपकार-प्रवणैरेभिः आँग्लभाषाणां "ओरायन" इत्यभिधेयस्य विश्व-विश्रुत-वैदुष्यस्य-ग्रन्थस्य प्रणयनं कृतम् । यत्प्रभावितस्य प्रसिद्धविदुषो मोक्षमूलरस्य प्रार्थनया समर्यात्पूर्वमेव निर्मुक्ता इमे । वंगभङ्गादि-विरोधकाले समये समये देशभक्त-रत्नेन अमुना प्रवाहिता देशभक्तिसरिता । राष्ट्रीय-कांग्रेसेऽपि तिलकमहोदय उग्रदलस्याग्रेसरो वभूव ।

"स्वराज्योऽस्मदीयो जन्मसिद्धोऽधिकारो वर्तते" इतिमहामन्त्रोऽप्यमुनैव सर्वत्र प्रचारितः । अस्य मन्त्रस्य प्रभावेन भारतीय-जनतान्तःकरणेषु समुत्साह-शक्तिः सम्भृता यया प्रवलप्रतापैः कृतांग्लाधिकारितापैः भारतीयवीरैः कम्पितमिव राज्येन सहांग्ल-हृदय-जातम् ।

अनन्तरं परमक्रोधाविष्टैरेभिः शासककलङ्कैः राजद्रोहस्य जातिद्वेषस्य च मिथ्याभियोगं संचाल्य ब्रह्मदेशीय-माण्डलाकारावासे निक्षिप्तोऽयं नेतृपञ्चाननः । अवसरेऽस्मिन् प्रदत्तं भाषणं तथ्योद्घाटकं विचारोत्तेजकं सर्वथा संग्रहणीयञ्च वर्तते ।

तत्रापि विविधा यातनाः समुपेक्ष्य स्वाध्यायनिरतेन तिलकमहाभागेन "गीतारहस्यम्" इतिख्यातस्य ग्रन्थरत्नरचना विहिता । ग्रन्थेऽस्मिन् नवीनरीत्या भगवद्गीताया गीतायास्तादृशी व्याख्या प्रकटिता, यां निमाल्य कर्मयोगस्य माहात्म्यं सर्वमेव तत्त्वजातम् अतिशेते इति दृढ़ो निश्चयः प्रजायते ।

मृदुदलेनापि भारतीय-स्वशासन-समितेः संस्थापनानन्तरं मतभिन्नतां विस्मृत्य लक्ष्मणपुरीये कांग्रेसाधिवेशने श्रीतिलकमहोदयस्य नेतृत्वे कार्यं कुर्वति उग्रदले सहयोगो दत्तः । भारतीय-राजनीति-वियति "वाल-पाल-लाल" इति त्रयो महा-महसो विकासमभजन्त । तिलकादि-महानुभावैर् या त्याग-तपश्चर्या-वलयित-देशभक्ति-वीज-परम्परा वपिता तस्या एव फलमिदं विभ्राजते यद् भारतमिदं स्वराज्यभारतं भासते ।

इत्थं स्वभासा भारतं विभासयतो नेतृदिवाकरस्य श्रीतिलक-महाशयस्य अस्तंगमनवेला जुलाईमासस्य ३१ तारिका १९२० ईसवीया वर्तते । वम्वईमहा-नगरे चौपाटीस्थाने संस्थापिता श्रीतिलकप्रतिमा अद्यापि स्वराज्यमहामन्त्रं वितरन्ती राष्ट्रभक्तिं प्रदिशन्ती तेजोमयमिव वातावरणं सृजन्ती विभासते । अस्माकमपि पवित्रतममिदं कर्तव्यं वर्तते यत्तिलक-महाशयानां पवित्रं चरित्रं समधिगम्य सर्वदा सेवनीयासौ जननीव सम्मान्या जन्मभूमिरिति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६३. महामना मदनमोहनमालवीयः

भारतवसुन्धरा विद्यते वस्तुतोऽपि वसुन्धरैव या समये समये मानवरत्नं समुत्पाद्य न केवलं भारतमेव किन्तु निखिलं विश्वमपि तद्भासा विभासयति । एतादृशेषु महामानवेषु मूर्धन्यं महर्षिकल्पं सार्थकां 'महामना' इत्युपाधिं विभूषयन्तं मालवीय-कुल-कुमुद-कलाधिनाथं श्रीमदनमोहनमालवीयं को नाम जनो न जानाति । महाभागेनामुना १८६१ ईसवीयाब्दस्य दिसम्बरमासे २५ तारिकायां स्वजनुषा तीर्थराज-प्रयाग-मण्डलं पावितम् । श्रीव्रजनाथमालवीयस्य पुत्रताम् अधिगतेन अमुना प्रयागस्थे म्योर-सेन्ट्रल-महाविद्यालये तत्कालीना शिक्षा समधिगता । एतया शिक्षया सहैव ससम्मानं सुर-सरस्वती-सेवकेन अनेन सर्वशास्त्रेषु विशेषतः श्रीमद्भागवतेऽपि वैदुष्यमधिगतम् ।

तदनन्तरं वर्षत्रयात्मकं समयं माध्यमिक-विद्यालयेऽध्यापकतां निर्वाह्य दैनिक-हिन्दुस्तानाख्यस्य समाचारपत्रस्य "इण्डियन ओपिनियन" इत्यभिधेयस्य साप्ता-हिकपत्रस्य च सम्पादनं व्यधायि । वाक्कीलविद्यायां परमपाटवं दधता विविध-सामाजिककार्यकलापं विदधतामुना संयुक्तप्रान्तस्य धारासभाया निर्वाचने विजयश्रीः संवरिता ।

वैदेशिक-दास्य-शृङ्खला-पीडिताया भारतभुवो विमोचनाय सततमेव चेष्ट-मानाया राष्ट्रीय-कांग्रेस-संख्याया मार्गनिर्देशनमपि प्रभावशालिपद्धत्या विहितममुना महाभागेन । अस्या संस्थाया आध्यक्ष्यमपि द्विवारममण्डि । समयेऽस्मिन् मृदूग्रभिदा विभिन्नस्य गोखलेदलस्य तिलकदलस्य च सन्धिं विधाय पुनः प्राणवती कृता संस्थैषा ।

नववर्षं यावत् कौंसिलस्य सदस्यतां स्वीकृत्य पुनः रौलटविधानस्य विरोधे त्यागपत्रं प्रदाय प्रमाणिता तेन स्वीया देशभक्तिः पदालोलुपता न्यायप्रियता च । विधान-निर्मातृ-सभाया अधिवेशने पञ्चनदप्रान्ते कृतस्य अत्याचारग्रामस्य सेनापति-डायरस्योपरि दोषं प्रमाणयतोऽस्य निर्विरामं पञ्चहोराप्रमाणं भाषणं वक्तृत्व-कलावैशिष्ट्यं व्यनक्ति ।

एवमेवानेकानि राजकीयपदानि देश-भक्ति-भावना-पूरितान्तःकरणेन मालवीय-महोदयेन स्वकार्यकौशलेन सेवावैशिष्ट्येन विभूषितानि । तत्कालीनां शिक्षाप्रणालीं पाश्चात्यानुसारिणीं तद्दास्यभय-मनोवृत्ति-प्रसारिणीं विचार्य विद्यावसतौ वाराण्यस्याम् अनुगङ्गं विश्वविद्यालय-स्थापनाया विचारं कृतवान् ।

अनन्तरं १९१६ ईसवीयाब्दे विविधभूपतीनां श्रेष्ठिनाञ्च सहयोगेन स्ववैदुष्यबलेन हिन्दूजातेः गौरवं वर्धयतोऽद्वितीयस्य विश्वविद्यालयस्य स्थापनं विहितवान् । मूर्तमानेव मालवीयमहोदयस्य यशोविग्रहो यमद्यापि सहस्रशः छात्रान् निखिलविषयान् शिक्षयन् न केवलं भारतस्य किन्तु विश्वस्य तिलकायते ।

हिन्दूमहासभापि हिन्दू-जाति-दुर्दशा-दूयमान-चेतसा तदुन्नति-निरतेन लोकहितेन स्व-जाति-सेवा-परेण अध्यक्षपदेन तेन सभाजिता । अस्पृश्याभिधेयस्य महतोऽङ्गस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विच्छेदमाकल्य सपद्येव वम्बईनगरङ्गतेन तेन सन्धि विधाय महती जातिसेवा कृता। एवमेव महाभागेन श्रीमालवीयेन यावज्जीवं देशस्य भारतीय-संस्कृतेः शिक्षायाः सनातनधर्मस्य प्राक्तनरीतेश्च समुत्थाने महद् योगदानं विहितम् ।

सम्पादने, विचारे, भाषणे, कथावाचने, समुपदेशे, विधिविताने किम्वहुना सर्वेष्वेव क्षेत्रेषु सदाग्रेसरतैव महाशयस्यास्य सेवनकरी सञ्जाता। करुणावरुणालयस्य महामानवस्य शरीरं सकलमेव हृदयमयमास्ति इति प्रतिपादनं मनागप्यनौचित्यं न समावहति ।

अनेकशो वाधा-शत-समाकुलाः कारावास यात्रां विधाय नेत्रपदं सार्थकमादर्शतया कृतम् । न किमपि तादृक् क्षेत्रं लोचनगोचरताम् एति यस्य समुन्नत्यै श्रीमालवीय-महाभागैर्न चेष्टितम् । विश्वविद्यालये विराजमानं वशिष्ठादि-महर्षि-समानं छात्रहितैकतानम्, एकत्रीकृत-विद्वद्वितानं सर्वदा सावधानं शास्त्रप्रमाणं स्वतेजसा देदीप्यमानं श्रीमालवीयं विलोक्य वलादेव समायाति दर्शकस्य सम्मुखे साक्षादेव प्राचीनानां विश्रुतानां कुलपतीनां प्रतिमा । गुण-ग्राम-गरिष्ठो धर्म-मार्ग-निष्ठो विद्वद्वरिष्ठो वृद्धवशिष्ठोऽयं १९४६ ईसवीये वत्सरे स्मृतिमात्रशेषो विश्वविद्यालय-वरविग्रहो वभूव ।

**

६४. महात्मागान्धीं

इह विविध-भाव-वन्धुरे वहुविध-वैभव-विभाविते संसरणशीले संसारे मनु-दधीच-राम-कृष्ण-बुद्ध-प्रभृतयोऽनेके महापुरुषाः जन्म गृहीत्वा भारतं पावयामास। तेषु महापुरुषेषु भारत-स्वातन्त्र्य-संस्थापकानां धृताहिंसादि-महाव्रतानां सत्यपालन-रतानां युगप्रवर्तकानां प्रथितयशसां कर्मयोगिनां महात्मनां गान्धिमहोदयानां नाम श्रेयः प्रेयः गरीयश्च वर्तते ।

असौ च महात्मागान्धिः गुर्जरदेशे काठियावाड़ान्तर्गत-पोरवन्दरनाम्नि नगरे १८७१ ख्रीस्ताब्दे अक्तूबर-मासस्य द्वितीय-तारिकायां महामहिमशालिनः श्रीकर्मचन्द-गान्धि-महोदयस्य गृहे जन्म लेभे। तस्य माता 'पुत्तलीवाई' पतिधर्म-परायणा सत्यप्रिया चासीत्। सत्यनिष्ठो धर्मपरश्चास्य पिता कर्मचन्द-गान्धिमहोदयः 'राजकोट' नामकस्य राज्यस्य प्रधान-मन्त्रि-पदम् अलङ्करोतिस्म । पिता चास्य मोहनदासगान्धी इति नामाकरोत्। वाल्यकालादेव अयं वालकः सत्यप्रियो वदान्यो भगवद्भक्तो मातापित्रोश्च भक्त आसीत् ।

प्रारम्भिकीं शिक्षां समाप्यासौ मोहनदासः आंग्लमहाविद्यालयेऽध्ययनं प्रारव्धवान्। ततश्च प्रवेशिकापरीक्षां समुत्तीर्य उच्चशिक्षा-प्राप्त्यर्थम् असौ आंग्लदेशं जगाम। गमनात्पूर्वं मातुराग्रहेण असौ मांस-मद्यादि-वर्जनस्य व्रतं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहीतवान् । तत्र गत्वापि स स्वीयां संस्कृतिं स्वीयमाचारं धर्मं च न परित्यक्तवान् । ततश्चांग्ल-देशात् 'बार एट ला' इत्युपाधिं गृहीत्वा भारतदेशम् आगत्य असौ राजकोटनगरे वाक्कीलतां कर्तुं प्रारभत । किन्तु देशभक्तौ तस्य महती निष्ठा आसीत् ।

एवं किञ्चित्कालानन्तरम् एकदा अफ्रीका-देश-वास्तव्यैर्व्यापारि-मण्डलैः एकस्मिन्नभियोगे स्वपक्ष-समर्थनाय आमन्त्रितोऽयं महात्मा दक्षिणाफ्रीकादेशं गतः । तदा तत्र भारतीयानां दारिद्र्य-दीनां पराधीनां च दशां दृष्ट्वा दयार्द्रद्रवितो भूत्वा स तत्प्रतीकाराय अहिंसात्मकं 'सत्याग्रह' नामकम् आन्दोलनं प्रारब्धवान् । ततः चिरकालं सत्याग्रहास्त्रेण संघर्षं विधाय पुनः भारतं प्रत्यागतः ।

तदनन्तरम् अफ्रीकादेशात् प्रत्यावर्त्य स महात्मा 'भारतीयानां परतन्त्रतैव सर्वेषां कष्टानां मूलकारणम्' इति निश्चित्य स्वतन्त्रता-प्राप्ति-निमित्तम् असहयोगान्दोलनं प्रारब्धवान् । अस्मिन्नान्दोलने श्रीराजेन्द्रप्रसाद-जवाहरलालनेहरू-पटेल-प्रभृतयो महापुरुषा अस्य सहायका अभूवन् । ततः शासनतन्त्रेणासौ कारावासदण्डेनादण्डयत । ततः कारावासान्मुक्तः स महात्मा भारतभुवो भ्रमणमकरोत् ।

देशस्यास्य भारतीयानां ग्रामीणानाञ्च दयनीयां दीनां हीनाञ्च दशां विलोक्य महात्मनो हृदयं व्यदीर्यत । ततस्तेषामुद्धाराय महात्मना तेन ग्रामोद्धारस्य हरिजनोद्धारस्य खादीप्रचारस्य च व्रतमङ्गीकृतम् । सप्तलक्षेषु ग्रामेषु खादी-वस्त्र-धारणस्य प्रचाराणि कृतानि । स्वयमपि खादीकौपीनं धृतम् । अछूतोद्धाराय च महानुद्योगो विहितस्तेन । हरिजनानां कृते 'हरिजनपृथक्निर्वाचन' प्रस्तावश्च स्वीकृतः ।

१९३० खीस्ताब्दतः १९३२ खीस्ताब्दं यावत् पुनरसहयोगान्दोलनं समारब्धम् । तन्मध्ये १९३१ ईसवीये वर्षे 'गोलमेज' सम्मेलने भागमपि जगृहे । १९३२ ईसवीये पुनरपि स कारागारं नीतश्च । कारागारादुन्मुक्तेन तेन महात्मना पुनः 'सत्याग्रह' नामकमान्दोलनं समारब्धम् । भारतं तदानीमाङ्गल-शासनेन विकलीकृतमासीत् । तदाऽसौ महात्मा 'भारतं परित्यजत' नामक-मान्दोलनं सञ्चालितवान् । वैदेशिकाः पुनरपि तं निगृहीतवन्तः । पुनश्च कारागारान्निवृत्तेन तेन स्वातन्त्र्ययुद्धाय सज्जीभूय महत्प्रयासोऽनुष्ठितः ।

अहिंसात्मके तस्मिन्युद्धे गान्धिमहोदयानां सत्याग्रहास्त्रस्याग्रे ब्रिटिशराज्यस्य सकलान्यस्त्रशस्त्राणि निष्फलानि जातानि । अन्ते च तस्य महता प्रयासेन १९४७ ईसवीये वर्षेऽगस्तमासस्य १५ तारिकायां भारतदेशे स्वतन्त्रतायाः पुनररुणोदयो जातः । वैदेशिका आंग्लशासकाः भारतं परित्यज्य गताः । स्वातन्त्र्ये श्वसितः भारतदेशः, समुल्लसिता सर्वत्र दोधूयमाना विजयवैजयन्ती, सर्वत्र महान् हर्षोल्लासो जातश्च ।

ततः कालगत्या १९४८ ईसवीये वर्षे जनवरीमासस्य ३० तारिकायां प्रार्थनासभां गच्छन्नसौ केनापि प्रमत्तबुद्धिना 'नाथूराम गोडसे' नामधेयेन मनुजेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यापादितो नश्वरशरीरं परित्यजत्य कथावशेषो जातः। श्रुत्वा च तन्निधन-समाचारं सकलमपि जगत् शोकाकुलं जातम्। भौतिकशरीरेण विरहितोऽपि स महात्मा यशःशरीरेणाद्यापि जीवति।

अयं हि विश्ववन्द्यो महात्मा 'राष्ट्रपिता' उच्यते। शान्तिसुधावर्षी सुधाकर इव, पीयूषधारां प्रवाहयन्निव, विश्वमैत्री-भावनां प्रतिष्ठापयन्निव, असहायानां सहाय इव सर्वत्र सर्वस्मिन्नपि देशेऽयं महात्मा पूजनीयो माननीयो वन्दनीयश्च जातः। अयं साक्षादहिंसाया अवतारः, सेवाया मूर्तिः, सत्यस्य द्वीपः, विश्वस्योद्धारकः, समाजस्य सुधारकः, धर्मस्य संस्थापकः, दरिद्राणां दीन-हीनानां वन्धुः, दयासिन्धुश्चासीत्। समये समये एतादृशा एव महात्मानः स्वजन्मभिः पावयन्ति भूभागानिति।

६५. श्रीजवाहरलालनेहरूः

इह चराचर-प्राणि-संकुले संसरणशीले संसारे समये समये अनेके महापुरुषाः समभूवन्। यैश्च स्वकीयैः आदर्शचरितैः अलौकिक-क्रियाकलापैश्च पावितं भूमण्डल-मिदम्। एतादृशेषु महापुरुषेषु विश्व-प्रथित-यशसो भारतस्य-सौभाग्य-प्रतिमूर्त्तेः पञ्चशील-प्रचारकस्य लोकनायकस्य प्रधानमन्त्रिणः श्रीजवाहरलालनेहरूमहोदयस्य नाम सुप्रथितं वर्तते। असौ महापुरुषः उत्तरप्रदेशे प्रयागनगरे १८८९ खीस्ताब्दे नवम्बरमासस्य चतुर्दशे दिनाङ्के पं० मोतीलालनेहरूमहोदयस्य गृहे जन्म लेभे। तस्य मातुः 'स्वरूपरानी' इति नामासीत्। पिता च श्रीमोतीलालनेहरूमहोदयः भारतवर्षस्य प्रसिद्धो योग्यतमश्च वाक्कील आसीत्। विजयलक्ष्मीपण्डिता चास्य भगिनी, कमला च धर्मपत्नी, इन्दिरा चैका तनुजा आसीत्।

श्रीजवाहरलालस्य प्रारम्भिकी शिक्षा गृहे एव आङ्लशिक्षकैः सम्पन्ना। अस्य पिता उच्च-शिक्षा-समर्जनाय जवाहरलालं इङ्गलैण्डदेशे प्रेषयामास। तत्र कैम्ब्रिजविश्वविद्यालयस्य ट्रिनिटीकालेजे शिक्षामधिगम्य स्नातकोपाधिं गृहीत्वा ततः लन्दननगरे समागत्य विधानशास्त्रमधीत्य 'वार एट ला' इत्युपाधिमधिगत्य १९१२ ईसवीये वर्षे स्वजन्मभूमिं भारतभूमिं प्रत्याजगाम। अत्रागत्य च पितुराज्ञया प्रयागस्य उच्चन्यायालये वाक्कील-व्यवसायं (वकालत) कर्त्तुमारब्धवान्।

अथ १९१६ खीस्ताब्दे कमलादेव्या सह तस्य विवाहो जातः। तस्मिन्नेव वर्षे तस्य श्रीमहात्मना गान्धिना सह सम्पर्कोऽपि जातः। ततः श्रीगान्धिना समारब्धेऽसहयोगान्दोलने रौलटविधानं विरोद्धुं सः तस्य सहायकोऽभूत्। १९२१ ईसवीये वर्षे श्रीगान्धिमहोदयेन समायोजितेऽसहयोगान्दोलने श्रीजवाहरलालः स्वपित्रा समं कारागारे निक्षिप्तः। अस्मिन्नेव वर्षेऽयं राष्ट्रीयमहासभायाः मन्त्रिपदम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लञ्चकार । तदाप्रभृति स सर्वथैव देश-सेवायां संलग्नोऽभूत् । ततः १६२८ ईसवीये वर्षे स पुनः राष्ट्रियमहासभाया मन्त्रिपदे प्रतिष्ठापितोऽभवत् ।

तदनन्तरं १६२६ ख्रैस्ताब्दे लवघुराधिवेशने श्रीजवाहरलालः प्रथमवारं राष्ट्रीयमहासभाया अध्यक्षपदलङ्कृतवान् । १६३० ईसवीये वर्षे जनवरीमासस्य २६ तारिकायां सर्वत्रापि देशे 'स्वतन्त्रतादिवसः' समायोजयामास । ततः भारतस्य पूर्णस्वतन्त्रतायै क्रान्ति कुर्वन् सः भूयोऽपि कारागारे निक्षिप्तोऽभवत् । ततः प्रभृति १६३६ ख्रैस्ताब्दं यावत् सः वारत्रयं राष्ट्रीयमहासभाया अध्यक्षपदम् अलञ्चकारेति।

तदनन्तरं १६३१ ईसवीये वर्षे तस्य पिता श्रीमोतीलालनेहरूमहोदयः स्वर्गं प्रस्थितः । १६३६ ख्रैस्ताब्दे च तस्य वल्लभा जाया श्रीमती कमलादेवी स्विटजरलैण्डप्रदेशे परलोकं गतवती तथा १६३८ ईसवीये वर्षे तस्य पूजनीया माताऽपि स्वर्लोकं प्रस्थिता । एवं स्वप्रियजनवियोगैरतिदुःखितोऽपि स देशसेवाया मनागपि विरतो नाभवत् ।

ततः १६४२ ख्रैस्ताब्दे श्रीमहात्मागान्धिमहोदयः 'भारतं परित्यजत' इत्यान्दोलनं सञ्चालितवान् । अस्मिन्नान्दोलने महात्मागान्धिमहोदयेन सह श्रीजवाहरलालोऽपि कारागारे निक्षिप्तो वैदेशिकैः शासकैरिति । ततः १६४५ ख्रैस्ताब्दे जूनमासे सः कारागाराद् उन्मुक्तिम् अलभत । पुनश्च कारागारादुन्मुक्तेन श्रीजवाहरलालेन स्वातन्त्र्ययुद्धाय सज्जीभूय महान् प्रयासोऽनुष्ठितः ।

इतश्च श्रीसुभाषचन्द्रः 'आजादहिन्द' सेनायाः संगठनं विधाय आङ्गलशासनात् भारतम् उन्मोक्तुं प्रायतिष्ट । वैदेशिकाः शासकाश्च भारतस्य स्वातन्त्र्य-युद्धं विफलीकर्त्तुं पूर्णशक्तिपूर्वकं प्रायतिष्ट । किन्तु भारतवर्षस्य सत्याग्रहास्त्रस्य अग्रे आङ्गलशासकस्य सर्वाणि अस्त्र-शस्त्राणि निष्फलानि जातानि । एवं १६४७ ईसवीये वर्षे अगस्तमासस्य १५ तारिकायां भारतवर्षः स्वातन्त्र्यमभजत् । आङ्गल-शासकाश्च भारतं परित्यज्य स्वदेशं प्रत्यावृत्ताः । तदा श्रीजवाहरलालः भारतस्य प्रधानमन्त्रिपदम् अलङ्कृतवान् ।

एवं राजनीतौ निष्णातः, उदारचरितः, विश्वस्योद्धारकः, त्यागादि-गुण-गणैरलङ्कृतो मानवकुलतिलको लोकनायकः श्रीजवाहरलालनेहरूमहोदयः भारतस्य जीवनमासीत् । ततः कालगतया १६६४ ईसवीये वर्षे मईमासस्य २७ तारिकायां ब्राह्मे मुहूर्त्ते स महापुरुषः भारतभुवं विहाय परलोकं सनाथितवान् । सत्यमुक्तम्—

हा हा हन्त ! नितान्तदीनमनुजस्याशेन्दुरस्तङ्गतः,
भग्नः शास्त्रमहीरुहः सुजनता ध्वस्ता निरस्तार्थिता ।
धर्मः कुब्जवपुः परां शुचिमिता गीर्वाणवाग्देवता,
श्रीमद्देशविभूषणे गुणयुते श्रीनेहरूस्वर्गते ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट १

सुभाषित-रत्नावली

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥१॥
द्राक्षा म्लानमुखी जाता शर्करा चाश्मतां गता ।
सुभाषितरसस्याग्रे सुधा भीता दिवं गता ॥२॥
अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात् ॥३॥
न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥४॥
मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्ति
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥५॥
पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥६॥
शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥७॥
समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरी प्रसाधना ।
हरलीलेव लोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥८॥
अतिदीर्घजीविदोषाद्भासेन यशोऽपहारितं हन्त ।
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः ॥९॥
जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् ।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्तत्र दण्डिनि ॥१०॥
त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥११॥
शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥१२॥
जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह ॥१३॥
रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरन्ति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुकविद्वितये मन्ये निखलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्तु तृतीयकः ॥१५॥
भवभूतेः सम्बन्धात् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥१६॥
सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥१७॥
दर्पं कविभुजंगानां गता श्रवणगोचरम् ।
विषविद्येव मायूरी मायूरी यन्निकृन्तति ॥१८॥
मुरारिपदभक्तिश्चेत्तदा माघे रतिं कुरु ।
मुरारिपदभक्तिश्चेत्तदा माघे रतिं कुरु ॥१९॥
बभूव वाल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥२०॥
कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम् ।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥२१॥
नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती ॥२२॥
नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥२३॥
कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥२४॥
उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥२५॥
माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥२६॥
धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥२७॥
यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय ॥२८॥
विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते ॥२९॥
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजंगानां केवल विषवर्धनम् ॥३०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यपि वहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र ? व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो नाभूत्सकलं शकलं सकृच्छकृत् ॥३१॥
गुरोर्गिरः पञ्चदिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च ।
अमी समाघ्रातवितर्कवादाः समागता कुक्कुटपादमिश्राः ॥३२॥
नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः ।
अन्ये वदरिकाकारा वहिरेव मनोहराः ॥३३॥
यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥३४॥
वुभूक्षितैर्व्याकिरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न छान्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः ॥३५॥
धनैर्निष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति
धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके
धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ॥३६॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्था सः पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥३७॥
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो वभाषे ।
न तेन दृष्टं कविना समस्तं दारिद्रचमेकं गुणकोटिहारि ॥३८॥
अर्थाः न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे ।
याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलम्बितेन ॥३९॥
लोभः प्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च ।
द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम् ॥४०॥
लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥४१॥
याचना हि पुरुषस्य महत्त्वं नाशयत्यखिलमेव तथा हि ।
सद्य एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन् ॥४२॥
परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥४३॥
भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो धनाः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥४४॥
सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालं
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥४५॥
वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ॥४६॥
निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥४७॥
यदि सन्ति गुणाः पुसां विकसन्त्येव ते स्वयम् ।
नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन निवार्यते ॥४८॥
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥४९॥
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥५०॥
आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥५१॥
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥५२॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥५३॥
सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः ।
अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥५४॥
न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥५५॥
आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिकाः ।
बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम् ॥५६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत रचनालाई सहयोगी

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥५७॥
गवाशनानां स शृणोति वाक्य-
महं मुनीनां वचनं शृणोमि ।
न चास्य दोषो न च मद्गुणो वा
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥५८॥
कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते सा कामधुक्कामितमेव दोग्धि ।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूते ॥५९॥
जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥६०॥
जातेति कन्या महती हि चिन्ता
कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः ।
दत्ता सुखं यास्यति वा न वेति
कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥६१॥
स्वयं महेशः श्वशुरो नगेशः सखा धनेशस्तनयो गणेशः ।
तथापि भिक्षाटनमेव शंभोर्वलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥६२॥
न भूतपूर्वो न च केन दृष्टो हेम्नः कुरंगो न कदापि वार्ता ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतवुद्धिः ॥६३॥
सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥६४॥
वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः ।
स एव दीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥६५॥
असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम् ।
काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः शम्भुसेवनम् ॥६६॥
लेखनी पुस्तकं रामा परहस्ते गता गता ।
कदाचित्पुनरायाता भ्रष्टा मुष्टा च चुम्बिता ॥६७॥
गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपलभ्यते ॥६८॥
गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।
वर्त्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः ॥६९॥
अतिदर्पे हता लंका ह्यतिमाने च कौरवाः ।
अतिदाने बलिर्बद्धः सर्वमत्यन्तगर्हितम् ॥७०॥
येन शुक्लीकृता हंसा शुकाश्च हरितीकृताः ।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ॥७१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥७२॥
गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥७३॥
पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥७४॥
वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः ।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥७५॥
सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता ।
तदा ह्यसौ तद्व्रतशक्तिपीडितो हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥७६॥
काके कार्ष्ण्यमलौकिकं धवलिमा हंसे निसर्गस्थितो
गाम्भीर्ये महदन्तरं वयसि यो भेदः स किं कथ्यते ।
एतावत्सु विशेषणेष्वपि सखे यत्रेदमालोक्यते
के काकाः खलु के च हंसशिशवो देशाय तस्मै नमः ॥७७॥
समुल्लसत्पङ्कजलोचनेन विनोदयन्ति तरूणानशेषान् ।
शुद्धाम्वरा गुप्तपयोधरश्रीः शरन्नवोढेव समाजगाम ॥७८॥
हसन्तीं वा हसन्तीं वा हसन्तीं वामलोचनाम् ।
हेमन्ते ये न सेवन्ते ते नूनं दैववञ्चिता ॥७९॥
वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को वा विज्ञातुमर्हति ॥८०॥
रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥८१॥
नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥८२॥
कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणम्,
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानम्,
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥८३॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥८४॥
कुसुमस्तबकस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनाम् ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥८५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम् ।
शेषे धराभराक्रान्ते शेते नारायणः स्वयम् ॥८६॥
वहूनामप्यसाराणां समवायो दुरत्ययः ।
तृणैर्विधीयते रज्जुर्वध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥७७॥
अपारे खलु संसारे कविरेव प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥८८॥
भारविः राजनीतिज्ञः कालिदासो महाकविः ।
भट्टिः व्याकरणज्ञाता माघे सन्ति वहुज्ञताः ॥८९॥
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
काव्यामृतरसास्वादः संलापः सज्जनैः सह ॥९०॥
अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च ।
अजापुत्रं वलिं दद्यात् दैवो दुर्वलघातकः ॥९१॥
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥९२॥
मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम् ।
तन्मध्ये भूतसंचारो यद्वा तद्वा भविष्यति ॥९३॥
जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः ।
जनकः पञ्चमश्चैव जकाराः पञ्च दुर्लभाः ॥९४॥
मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनञ्जयः ।
सोऽपि कालवशं जाता कालस्य कुटिला गतिः ॥९५॥
घृतं न श्रूयते कर्णे दधि स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ।
मुग्धे दुग्धस्य का वार्ता तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥९६॥
आदौ वेश्या ततो दासी पश्चाद्भवति कुट्टिनी ।
सर्वोपायपरिक्षीणा वृद्धा नारी पतिव्रता ॥९७॥
असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम् ।
हरो हिमालये शेते हरिः शेते महोदधौ ॥९८॥
कान्पृच्छामः सुराः सर्वे निवसामो वयं भुवि ।
किं वा काव्यरसः स्वादुः किं वा स्वादीयसी सुधा ॥९९॥
जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥१००॥
सर्वे सुखिनः भवन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥१०१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट २

लोकोक्तयः

१. अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति = प्राण जाय पर वचन न जाई।
(The virtuous make good their promise)

२. अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति = आलस बुरी बला।

३. अतिदर्पे हता लंका = घमण्डी का सिर नीचा।
(Pride hath a fall)

४. अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति = मान घटे नित के घर आये।
(Familiarity breeds contempt)

५. अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् = अनजाने का वास खतरनाक।

६. अतिलोभो न कर्तव्यः लोभं नैव परित्यजेत् = अति का भला न लोभ।
(Avarice is the root of all evils)

७. अध्रुवात् ध्रुवं वरम् = नौ नकद न तेरह उधार।
(A bird in hand is worth two in the bush)

८. अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः = विद्वान् जाने बिन कही बात भी।
(The wise make out even what is implicit)

९. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति = जोड़ जोड़ मर जायेंगे माल जमाई खायेंगे।

१०. अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् = थोथा चना बाजे घना, अधजल गगरी छलकत जाय।
(An empty vassel sounds much)

११. अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति = बुरे का साथी कौन।
(None would like to be friend of a wicked person)

१२. अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् = घर में आया साँप बाम्बी पूजन क्यों जाये।

१३. अविवेकः परमापदां पदम् = अज्ञानता विपत्ति का घर।
(Indiscretion is the greatest cause of misery)

१४. अल्पविद्या भयंकरी = नीम हकीम खतरा-ए-जान।
(A little knowledge is a dangerous thing)

१५. आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे = सवाल दीगर जवाब दीगर।
(Questioned one thing and replied another)

१६. आमुखापाति कल्याणि कार्यसिद्धि हि शंसति = होनहार बिरवान के होत चीकने पात।
(Coming events cast their shadow before)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७. आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्=आहार व्यवहार में संकोच न करना।

१८. इतो अन्धकूपः ततो दन्तशूकः=इधर कुआँ उधर खाई।
(On the horns of dilemma)

१९. इतो भ्रष्टस्ततोऽपि भ्रष्टः=धोवी का कुत्ता न घर का न घाट का।
(Out of frying pan into the fire)

२०. इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः=अपने मुंह मियां मिठ्ठु वनना।
(Self praise is no recommendation)

२१. इदमरण्ये रुदितमिव=जंगल में रोना अपने दीदा खोना।
(A cry in the wilderness)

२२. उपकारः प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्यः=उपकार के वदले प्रत्युपकार करना।

२३. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः=परिश्रम सफलता की कुंजी है।
(Diligence is mother of good luck)

२४. उष्ट्राणां विवाहे तु गर्दभा गीतगायकाः=जैसा घर वैसा वर (ख्वाजे के गवाह मेढक)

२५. उप्यते यद् यद् वीजं तत्तदेव प्ररोहति=जैसी करनी वैसी भरनी; वोया पेड़ ववूल का आम कहाँ से खाय।
(As you sow so shall you reap)

२६. एकस्य हि विवादोऽत्र दृश्यते न तु प्राणिनः=एक हाथ से ताली नहीं वजती; अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।
(It takes two to make a row; one swallow does not make a supper)

२७. एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा=एक पंथ दो काज।
(To kill two birds with one stone)

२८. कञ्चुकमेव निन्दति पीनस्तनी नारी=नाच न जाने आँगन टेढ़ा।
(A bad workman quarrels with his tools)

२९. कण्टकेनैव कण्टकम्=जैसे को तैसा।
(One nail drives out another)

३०. कष्टः खलु पराश्रयः=पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।
(Dependence is indeed painful)

३१. कालस्य कुटिला: गतिः=समय की चाल टेढ़ी।

३२. किमिष्टमन्नं खरशूकराणाम्=भैंस के आगे बीन वजाना।
(To cast pearls before swine) a pig

३३. क्षते क्षारप्रक्षेपः=जले पर नमक छिड़कना।
(To add insult to injury)

३४. को न याति वशं लोके मुखपिण्डेन पूरितः=सभी लेन देन के साथी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(Wealth is a great attraction or friends are plenty when the purse is full)

३५. कुपुत्रेण कुलं नष्टम्=डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल ।
(A bad bescendant bestroys the line)

३६. को धर्मः कृपया बिना=दया धर्म का मूल ।
(No pity without mercy)

३७. खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु=लड़े लोह पाहन दोऊ बीच रूई जरि जाये ।
(The mischief of wicked reacts on the good)

३८. गण्डस्योपरि पिटकः सम्वृत्तः=एक तो करेला कड़वा दूसरे नीम चढ़ा ।

३९. गतस्य शोचनं नास्ति=अब पछताय होत क्या जब चिड़ियां चुग गयीं खेत ।
(Let bygones be bygones)

४०. गतः कालो न चायाति=गया वक्त फिर हाथ आता नहीं ।
(Time once past cannot be recalled)

४१. गवेषते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव=उपवन में भी ऊँट काँटा ही खोजता है ।
(The evil-minded has an eye for faults only)

४२. चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च=चार दिन की चाँदनी फिर अन्धेरी रात ।
(The very spring interrupts an autumn)

४३. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति=गरीबी में आटा गीला; ताड़ से गिरा खजूर पर लटका ।
(Misfortunes never come alone)

४४. जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः=बूंद-बूंद से घट भरे ।
(Little drops fill the pitcher; or many a little pickle makes a mickle)

४५. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः=जन्म लेने वाले की मृत्यु अवश्यम्भावी है ।
(Man is mortal)

४६. दारिद्रंयदोषो गुणराशिनाशी=गरीब की जोरू सब की भावी ।
(A light purse is a heavy curse)

४७. दुर्बलस्य बलं राजा=निर्बल के बल राम ।
(The king is the strength of the weak)

४८. दूरस्थाः पर्वताः रम्याः=दूर के ढोल सुहावने ।
(Distance lends enchantment to the view)

४९. न च दैवात् परं बलम्=निर्बल के बल राम ।
(The king is the strength of the weak)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५०. न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे=का वर्षा जब कृषि सुखानी।
(While the grass grows the horse starves)

५१. न मुनिः पुनरायातो न चासौ वर्धते गिरिः=न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।
(If the sky falls we shall catch larks or if desires were horses fools would ride them)

५२. न सुखं दुःखैर्विना लभ्यते=सेवा बिन मेवा नहीं।
(No pains no gains)

५३. नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते=आदत शिर के साथ।
(Profession is no proof)

५४. नवा वाणी मुखे मुखे=जितने मुंह उतनी वातें; पाचों उँगलियाँ बराबर नहीं।
(There are men and men)

५५. नवांगनानां नव एव पन्थाः=हर एक अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद बनाता है।
(New lords new laws)

५६. न विड़ालो भवेद् यत्र यत्र क्रीड़न्ति मूषकाः=मियाँ घर नहीं बीवी को डर नहीं।
(When the cat is away the mice will play)

५७. न खलु बधिराणां कुतूहलमातनोति कोकिला=बंदर क्या जाने अदरख का स्वाद।
(A blind man is no judge of colour)

५८. नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्=जड गयी सब गया।

५९. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते=अन्धो में काना राजा।
(Figure among cyphers)

६०. निसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्=ऊँची दुकान फीका पकवान।
(Great cry and little wool)

६१. निजसदननिविष्टः श्वा सिंहायते किम्=अपनी गली में कुत्ता भी शेर।
(Every cock fights best on its own dung hill)

६२. पण्डितोऽपि वरं शत्रुः न मूर्खो हितकारकः=नीम हकीम खतरा-ए-जान।
(A little knowledge is dangerous)

६३. पंकोऽपि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि=आसमान पर थूका अपने सिर।
(Slander bursts the slanderer)

६४. पावको लौहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते=गेहूं के साथ घुन भी पिसता है।
One is to suffer when associated with another)

६५. पयःपानं भुजंगानां केवल विषवर्धनम्=जो तू सींचे दूध से नीम न मीठा होय।
(Snake's venom increases by drinking milk)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६६. प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्=कीचड़ लगाकर धोने से कीचड़ का न छूना भला।
(Prevention is better than cure)

६७. पाणौ पयसा दग्धे तक्रं फूत्कृत्य पामरः पिबति=दूध का जला मठा फूंक कर पीता है।
(A burnt child dreads the fire)

६८. प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते=जहां नहीं लाभ वहां क्या काम।
(No gain no bargain)

६९. बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः=हीरे की परख जौहरी जाने।
(The mighty knows what might is and not the weak)

७०. बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा=ईश्वर चाहा होत है।
(God's Will be done)

७१. बन्धभ्रष्टः कपोतश्चितामुखे पतति=आकाश से गिरा खजूर में अटका।
(Out of frying pan into the fire)

७२. बह्वारम्भे लघुक्रिया=खोदा पहाड़ और निकली चुहिया।
(Much ado about nothing)

७३. भक्षितोऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः=जेहि के कारण मूड़ मुड़ावा, सो दुःख मेरे आगे आवा।
(Every commission of sin keeps away of the object)

७४. भाग्यं फलति सर्वत्र=भाग्य करे काज।

७५. महाजनो येन गतः स पन्थाः=बड़ों की राह भली।
(Follow the leader's footsteps)

७६. मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम्=एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा।

७७. मृगाः मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति=पानी से पानी मिले, मिले कीच से कीच।
(Birds of the same feather flock together)

७८. मौनं स्वीकारलक्षणम्=मौन ही स्वीकृति है।
(Silence is half consent)

७९. यथावृक्षस्तथा फलम्=जैस मुंह वैसी चपेट।
(Think a man according to his rank)

८०. यत्र चौरा न विद्यन्ते तत्र किं स्यान्निरीक्षकैः=मियां बीबी राजी तो क्या करेगा काजी।
(Where there is peace at home there is no need of judge)

८१. याचको याचकं दृष्ट्वा श्वा इव गुर्गुरायते=ब्राह्मण कुत्ता हाथी, ये न जाति के साथी।

८२. यत्नं विना रत्नं न लभ्यते=सेवा बिना मेवा नहीं।
(No pains no gains)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८३. ये गर्जन्ति मुहुर्मुहुर्जलधारा वर्षन्ति नैतादृशाः=जो गरजते हैं वे बरसते नहीं।
(Barking dogs seldom bite)

८४. यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव च॥ दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम।
(To sail on two boats makes one fall)

८५. वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्=नौ नगद न तेरह उधार।
(A bird in hand is worth two in the bush)

८६. विषकुम्भं पयोमुखम्=विपरस भरा कनक घट जैसा।
(Beneath the rose lies the serpent)

८७. विषस्य विषमौषधम्=जहर, जहर से जाता है।
(Like cures like)

८८. वीरभोग्या वसुन्धरा=जिसकी लाठी उसकी भैंस।
(Might is right)

८९. वृद्धा नारी तपस्विनी=बूढ़ी वेश्या तपस्विनी; सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज को।

९०. शठे शाठ्यं समाचरेत्=जैसे को तैसा।
(Tit for tat)

९१. शनैः पन्थाः शनैः कन्थाः शनैः पर्वतलङ्घनम्=सहज पके सो मीठा होय।

९२. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्=तन्दुरुस्ती हजार नियामत।
(Health is wealth)

९३. शुभस्य शीघ्रम्=तुरत दान महाकल्याण।
(A stitch in time saves nine)

९४. सर्वः खलु कान्तमात्मीयं पश्यति=अपनी लस्सी को कोई खट्टी नहीं कहता।
(Every potter praises his own pots)

९५. सङ्घे शक्तिः कलौ युगे=एकता ही बल है।
(Union is strength)

९६. स सुहृद् व्यसने यः स्याद्=काम पड़े पर जानिये को बैरी को मीत।
(A friend in need is a friend indeed)

९७. सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः=सब धन जाता देखिए तो आधा दीजे बाँट।
(Something is better than nothing)

९८. स्वभावो दुरतिक्रमः=आदत नहीं बदलती।
(You cannot go against your nature)

९९. संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति=संगति स्वभाव लोह जल में तैरे।
(A black sheep infects the whole flock. A man is known by the company he keeps)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१००. **हिताहितं वीक्ष्य निकाममाचरेद्**=उतने पैंर पसारिये जितनी चादर होय।
(Look before your leap; cut your coat according to your cloth)

१०१. **न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः**=बिना परिश्रम के देवता भी सहायता नहीं करते।
(God helps those who help themselves)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

०४।१२।२४
०५१.२.१६.
०५।१०।८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

891.24
DWI

5943

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
वाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu